CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्ष्मण तत्त्वविमर्श

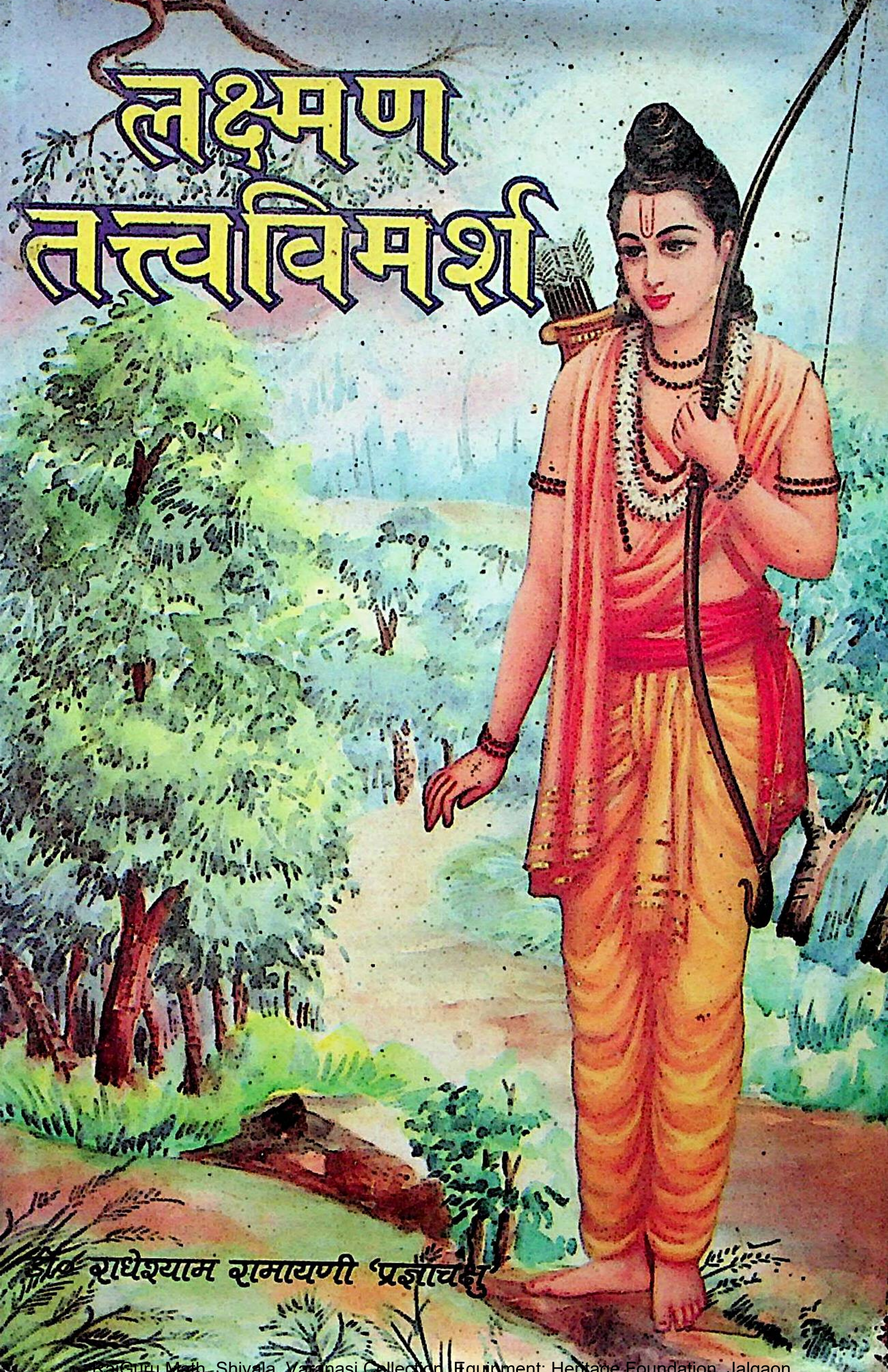

डॉ. राधेश्याम रामायणी 'प्रज्ञाचक्षु'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय में

इस ग्रन्थ में मानस के सन्दर्भ में लक्ष्मण चरित की विशेषता की समीक्षा एवं मूल्याङ्कन है जो मणिकाञ्चन योग तथा सोने में सुगन्ध की तरह है। प्रतिभासम्पन्न लेखक ने प्रथम अध्याय में अपना गहन अनुशीलन लक्ष्मण चरित के मूल स्रोत से प्रारम्भ करते हुए प्रागैतिहासिक काल की रामकथा से आरम्भ कर सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय वैदिक, पौराणिक, पालि, प्राकृत तथा लोकभाषा–साहित्य के ग्रन्थों का अनुशीलन कर उन्हें आत्मसात् करते हुए लक्ष्मणतत्त्व की व्यापक एवं भव्य उद्भावनाओं के साथ मौलिक कथा प्रस्तुत करके जगत् के लिये एक नवीन और प्रशस्त परिष्कृत मार्ग का निर्माण किया है। द्वितीय अध्याय में 'चरितसम्बन्धी परिकल्पना और उसका स्वरूप' के अन्तर्गत विद्वान् लेखक ने मानस की चरित्र योजना पर प्रकाश डालते हुए लक्ष्मण–चरित्र का वैशिष्ट्य निरूपित किया है जो इस ग्रन्थ की मौलिकता का परिचायक है। तृतीय अध्याय में लक्ष्मण शब्द की अर्थव्याप्ति तथा लक्ष्मण के पर्यायों का शास्त्रीय दृष्टि से विशद विवेचन किया है, जो अपने आप में एक अद्भुत परिशीलन है। चतुर्थ अध्याय में लक्ष्मण के दार्शनिक स्वरूप का निरूपण करते हुए पुरुषार्थचतुष्टय, लक्ष्मण का बीजतत्त्व तथा रामावतार में लक्ष्मण अवतार का प्रयोजन प्रदर्शित किया गया है। पञ्चम अध्याय में प्रज्ञाचक्षु जी ने लक्ष्मण–चरित्र के सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक पक्ष पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। षष्ठ अध्याय में तुलसी साहित्य के प्रमुख चरित्र और उनकी दृष्टि में लक्ष्मण का मूल्याङ्कन किया है। सप्तम अध्याय में, वर्त्तमान सामाजिक सन्दर्भ में लक्ष्मण–चरित्र का व्यापक मूल्याङ्कन किया गया है, जिसके अध्ययन से लेखक की कुशाग्रबुद्धि तथा व्यापक पाण्डित्य का परिचय प्राप्त होता है।

रामायणी जी की यह कृति उनके दिव्य व्यक्तित्व की ही परिचायक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

12·1

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्ष्मणतत्त्वविमर्श

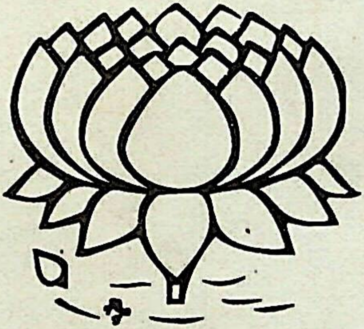

मानसकोविद
डॉ० राधेश्याम रामायणी "प्रज्ञाचक्षु"
एम० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यालङ्कार, साहित्यरत्न
हिन्दी प्रवक्ता
राजकीय क्वींस कालेज, वाराणसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशक :
मानस मन्थन केन्द्र
बी.५/५, अवधगर्वी,
वाराणसी–२२१ ००१
दूरभाष : ३१३९७४

लक्ष्मणतत्त्वविमर्श

© मानस मन्थन केन्द्र

प्रवक्ता :
डॉ० राधेश्याम रामायणी
'प्रज्ञाचक्षु'

द्वितीय संस्करण
१९९६ : सितम्बर

सम्पादन एवं संशोधन :
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

मूल्य :
डेढ़ सौ रुपये

मुद्रक :
साधना प्रेस
जे. १३/९३, ए–५,
काटन मिल कालोनी,
वाराणसी–२, फोन : ३३३०९४

LAKSHMANATATTVAVIMARSHA
Dr. Radheshyam Ramayani

Price :
Rs. 150.00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ग्रन्थकार के स्वर्गीय पिता–माता

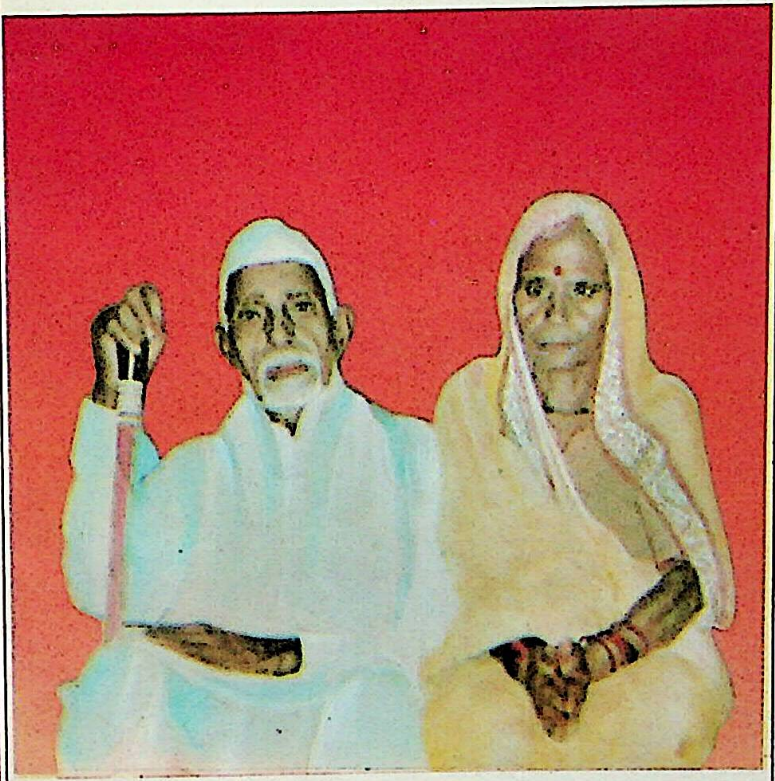

श्री भोलानाथ जी एवं श्रीमती मङ्गलादेवी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ समर्पण ॥

जननी श्रद्धारूप अरु, पूज्य पिता विश्वास।
ग्रन्थ समर्पित ताहि करि, हिय में होत हुलास॥

यह ग्रन्थ
श्रद्धास्वरूपा, ममतामयी जननी स्वर्गीया मंगला देवी
एवं
विश्वासस्वरूप, करुणानिधि पिता स्वर्गीय भोलानाथ जी
के करकमलों में
सादर समर्पित

—राधेश्याम "प्रज्ञाचक्षु"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरोवाक्

प्रिय की अभीष्टपूर्ति हेतु प्रत्यर्पणकामना के विना सहजतः विहित सर्वस्व–त्याग में नैसर्गिक प्रेम प्रतिबिम्बित होता है। श्रीरामकथा में भारतीय संस्कृति के मूलाधार रामचरित के उत्स बने इसी नैसर्गिक प्रेम की आभा के सर्वत्र दर्शन होते हैं। प्रकृति की विषमावस्था में भी समत्व के रूप में यह प्रतिष्ठित मिलता है। नैसर्गिक प्रेम में विरह की असह्यता निरन्तर बनी रहती है। अंश में अंशी से मिलन की तड़पन, व्याकुलता, सेवक का सेव्य के प्रति त्यागभाव, सेवाभाव=सेवक का सेव्य के प्रति अनन्य प्रेम, सेव्य का सेवक के प्रति अनुग्रहभाव एवं रक्षा की स्वीकारोक्ति—ये सब तत्त्व कालजयी संस्कृति के उत्कृष्टतम निदर्शन हैं। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम राज्य का परित्याग कर वन चले गये तो भरत एक पग आगे बढ़कर श्रीराम के अधिकारप्राप्त राज्य के प्रति मन में लेशमात्र भी गृध्नुता का भाव लाये विना दौड़ गये मनाने मर्यादापुरुषोत्तम को नंगे पाँव। प्रेम का यदि त्यागमार्ग से बाह्य प्रकाशन होता है तो अनन्य प्रेम उससे भी अग्रगामी होकर 'स्व' और 'मम' की भावना या वासना के सर्वथा विसर्जनात्मक रथ रूप में प्रेमी अथवा सेव्य के प्रति गतिशील बनता है। अनन्य प्रेम की उदात्त भावभूमि पर अवस्थित हैं रामायणीय पात्रों के अनुपम चरित। सम्पूर्ण एशियाई संस्कृति को प्रभावित कर रखा है रामचरित–चर्चा ने।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के अनन्तर भरत के त्याग को उत्कृष्टतर आँका है कवियों, कथाकारों और रचनाकारों ने। लोकभावना के प्रतिकूल होने पर भी न्यायत. प्राप्त राज्याधिकार का पूज्य के चरणों में समर्पण एवं पूज्य के आदेशानुसार त्यागमयी भावभूमि पर विराजमान होकर उसका संरक्षण ही भरत के उत्कृष्ट त्याग का कारण परिलक्षित होता है। इस त्याग में जननीचरित्र पर लगे कलङ्क का प्रक्षालन भी अभीष्ट लगता है। अतः इस त्याग के निर्विवादतः अहैतुक न होने पर भी 'स्व' और 'मम' भी भावना से विरहित त्याग की उच्चतम भावभूमि पर समासीन भरत के चरित को अद्वितीय माना गया है। इसका एक पोषक तत्त्व भरत का श्रीराम के साथ चिरविरह भी रहता आया है। भरत की इसी विरहावस्था ने लक्ष्मण के उत्कृष्टतम त्यागमय चरित को पराभूत–सा कर दिया लगता है। इसलिये भारतीय वाङ्मय में लक्ष्मण–चरित के वैशिष्ट्य को उजागर करने वाले स्वतन्त्र साहित्य की सृष्टि नगण्य–सी रही आयी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस दिशा में डॉ० राधेश्याम रामायणी प्रज्ञाचक्षु की अन्तर्दृष्टि से लक्ष्मण के त्यागतपोमय उदात्त चरित की सर्वोत्कृष्टता तिरोहित न हो सकी। वह श्रीराधेश्याम जी के अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर वाङ्मय परिधान धारण कर 'लक्ष्मणतत्त्वविमर्श' के रूप में आविर्भूत हुई और मूर्तिमती बन गयी। श्रीरामायणी जी ने लक्ष्मण के सम्पूर्ण चरित्र में राम की हितसाधना की ही प्रधानता बतायी है। इनकी दृष्टि से लक्ष्मण का चरित्र राम में समाहित एवम् अभिन्न दृष्टिगत होता है। वन में राम और सीता की सेवा में ही लक्ष्मण को संसार का समग्र सुख और वैभव मिल जाता है। सेव्य की अभीष्टपूर्ति हेतु प्रत्यर्पणकामना के विना सहजतः विहित सर्वस्वत्याग और सेवाभाव में लक्ष्मण की नैसर्गिक सततयुक्तता एवं पराभक्ति प्रकाशित होती है।

'लक्ष्मणतत्त्वविमर्श' नामक इस ग्रन्थ के कलेवरघटन में डॉ० रामायणी ने यथोपलब्ध उपजीव्य वाङ्मय के उपादान–सन्दोह का दोहन किया है। वैदिक एवं लौकिक संस्कृत तथा तुलसीवाङ्मय के अतिरिक्त रामकथा से सम्बद्ध वाल्मीकिरामायण, दशरथ जातक (पालि), अग्निपुराण, नृसिंहपुराण, पद्मपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण, अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, रघुवंश, प्रतिमानाटक, अभिषेकनाटक, महावीरचरित, उत्तररामचरित और कम्ब रामायण का मूल रूप से मन्थन करके यह नवनीत निकाला है। उक्त मूल ग्रन्थों के अतिरिक्त डॉ० रामायणी ने रामचरित पर विरचित आलोचनात्मक वाङ्मय का भी पर्याप्त परिशीलन किया है। स्वाध्याय के चिरन्तन अनुष्ठान से उनके इस ग्रन्थ ने एक भव्य गवेषणाप्रबन्ध का स्वरूप धारण कर लिया है।

डॉ० राधेश्याम रामायणी ने लक्ष्मणचरित के मूलस्रोत की गङ्गोत्री तक पहुँचने के लिये पथ की उच्चावचता एवं दुर्लङ्घ्यता की विषम स्थितियों पर धैर्यपूर्वक विजय प्राप्त की है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के प्रति अनन्य प्रेम के बीज की अभिव्यक्ति हेतु श्रीरामायणी ने पायस विभाजनपरक वाङ्मय में गम्भीर अवगाहन करने के साथ साथ रामोत्तर तापनीय उपनिषद् में प्रतिपादित ओंकार की चार मात्राओं का सादृश्य वर्णित किया है। उनकी जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय अवस्थाओं के वर्णन में लक्ष्मण को विश्वभावन या विराट् बताकर आध्यात्मिक व्याख्या की गयी है। तुलसीसाहित्य के प्रमुख चरित्र और उनकी दृष्टि में लक्ष्मण के मूल्याङ्कन हेतु एक पृथक् अध्याय ही रच दिया गया है। श्रीरामायणी जी ने 'वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में लक्ष्मण चरित का मूल्याङ्कन' नामक सप्तम अध्याय में लक्ष्मण चरित के सभी पक्षों पर सूक्ष्मेक्षिकया चिन्तन किया है। उसमें 'रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास की शीलयोजना एवं लक्ष्मण' तथा 'लक्ष्मण-चरित्र के विकास में तुलसी के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अधीत ग्रन्थों का प्रभाव' नामक शीर्षकों के अन्तर्गत परशुराम-प्रसङ्ग में लक्ष्मण के स्वभाव की उग्रता के सम्बन्ध में तुलसी द्वारा विहित चित्रण का हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव से गृहीत बताकर उक्त स्थल पर लक्ष्मण के शिष्टाचार की रक्षा का स्तुत्य प्रयास किया गया है। श्रीराम के पश्चात् लक्ष्मण ही एक ऐसा चर्च्य व्यक्तित्व है, जो रामायण में आदि से अन्त तक गतिशील बनकर शेषफणच्छायावत् बन कर सर्वत्र छाया रहता है। जिस प्रकार सहस्र-फणधारी शेष के विना सहस्रफणच्छत्रधारी शेषशायी भगवान् श्री विष्णु की क्षीरसागर शयन-झाँकी अनभिराम होती, उसी प्रकार लक्ष्मणचरितविरहित श्रीरामचरित भी निःश्रीकताधारी बन जाता। श्रीसुषमासंवलित चरित ही का नाम शील अथवा लक्ष्मण है। वह सेव्य के शोभासंवर्धन में हितसाधक बनता है, न्यूनता नहीं आने देता।

इस ग्रन्थ में भाषा एवं भावों का समुचित सामञ्जस्य बन पड़ा है। मुझे विश्वास है कि गहन, लोकरञ्जक तथा शिक्षाप्रद रामकथा वाङ्मय के परिशीलनलब्ध इस ग्रन्थ के प्रकाशन से विद्वज्जन निश्चयतः प्रमुदित तथा जिज्ञासुजन उपकृत होंगे।

इसके सार्वत्रिक प्रचार-प्रसार के लिये में स्वस्तिकामना करता हूँ।

सोमवती अमावस्या
अधिक आषाढ़ २०५३ वै.
वाग्योगचेतनापीठम्, शिवाला,
वाराणसी-२२१ ००१

— डॉ० भा० प्र० त्रिपाठी 'वागीश शास्त्री'
पूर्व निदेशक, अनुसन्धान संस्थान,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राक्कथन

बंदउ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता।।
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका।।
सेष सहस्त्रसीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन।।
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर।।

गोस्वामी तुलसीदास के सम्पूर्ण साहित्य का केन्द्रबिन्दु रामचरित है और रामचरित की रचना का आधार आदर्श तथा मर्यादा है। इस केन्द्रविन्दु और आधार की भूमिका पर रामकथा के पात्रों की चरित्र–रचना हुई है, जिसके विकास की विविध परम्पराएँ भारतीय साहित्य में लक्ष्य की जा सकती हैं। भारतीय वाङ्मय की चारों आर्ष परम्पराओं—वैदिक साहित्य की ऋषिपरम्परा, पौराणेतिहासिक साहित्य की व्यासपरम्परा, प्राचीन मध्यकालीन और आधुनिक आर्यभाषा–साहित्य की कविपरम्परा और लोक–साहित्य की मौखिक परम्परा में प्राप्त रामकथा के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका निरन्तर विकास हुआ है। इस दृष्टि से यह स्वयं सिद्ध है कि रामकथा के पात्रगत चरित्रों और विचारों की नूतन परिकल्पनाएँ तथा नवीन उद्भावनाएँ सदा से होती रही हैं। रामकथा को आधार बनाकर प्रस्तुत होने वाले प्रत्येक नये ग्रन्थ में मूलकथा की कतिपय अनिवार्य विशेषताओं, घटनाओं आदि के साथ उद्देश्य के अनुसार नये नये तत्त्व और उपादान जुड़ते रहे हैं। अस्तु, यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि रामकथा में निरन्तर विकास की धारा वस्तुतः कथागत विभिन्न पात्रों के चरित्र में परिवर्धन–सम्वर्धन की स्वीकृति से प्रवहमाण हुई है। इस प्रकार रामकथा के विकास का आधार उसके विभिन्न पात्रों की गतिविधियों, विचारों, प्रवृत्तियों और विशेषताओं में घटित विकास ही है। वास्तव में कथावस्तु और चरित्र परस्पर सम्बद्ध और पूरक हैं। किसी भी लोकप्रिय कथानक के पुनर्गठित काव्यरूप की मौलिकता उसमें नये चरित्रगत मूल्यों के सङ्घात तथा नियोजन की विशेषता से प्रमाणित होती है।

जहाँ तक तुलसी–साहित्य का प्रश्न है, उसमें रामकथा और चरित्र रचना की प्रायः समस्त पूर्ववर्तिनी परम्पराओं का आकलन हुआ है, साथ ही अनेक नूतन तथा भव्य प्रसङ्गों का समावेश और गरिमामण्डित चारित्रिक तत्त्वों का कल्प भी हुआ है। इन प्रसङ्गों और तत्त्वों के चयन तथा उपयोग की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिशा क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि पुराण, चरित काव्य और मध्यकालीन भक्तिपरक लीलाकाव्य की परम्परा के सातत्य में गोस्वामीजी ने अपनी महान् कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। उनके समस्त काव्यों में सन्दर्भित पौराणिक कथावस्तु का मध्यकालीनीकरण, दैवी चरित्रों का मानवीकरण और भक्तिदर्शन, अध्यात्म, नीति, वर्णाश्रमधर्म एवं आचारसम्बन्धी सिद्धान्तों का दृष्टान्तीकरण हुआ है। इसी रूपकविधान द्वारा भारतीय सांस्कृतिक सत्ता के अनुसार राम के साथ विभिन्न राष्ट्रीय चरित्रों का उद्घाटन तथा संयोजन किया गया है। वास्तव में गोस्वामीजी ने इसी जटिल प्रक्रिया द्वारा अपने काव्यगत चरित्रों का मानवीय धरातल पर सात्त्विक, राजस, तामस चरित्रों की रचना की है और उनके साथ लोकविश्रुत परम्परागत प्रवृत्तियों, विशेषताओं और क्रियाविधियों का कुशल संयोजन तथा निर्वाह भी किया है।

गोस्वामी जी के काव्यों में लक्ष्मण–चरित्र का संयोजन चरित्र–रचना–प्रक्रिया और दिशा से सम्बद्ध उपर्युक्त स्रोतों तथा उपस्थापनाओं के क्रम में हुआ है। राम के चरित–वृत्त में आने वाले समस्त पात्रों में लक्ष्मण की भूमिका अत्यन्त रोमाञ्चकारी और प्रेरणाप्रद है। रामचरितमानस के अनुसार वह राम के "सहोदर" ही नहीं, राम की कीर्त्तिपताका के दण्डस्वरूप हैं। वास्तव में लक्ष्मणरहित रामकथा की कल्पना ही असम्भव है। इस महत्त्व को ध्यान में रखकर गोस्वामीजी ने कथागत पात्र–प्रकार (टाइप), प्रवृत्तिगत उदात्त मानवीय गुणों की पुञ्जीभूत चेतना, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक तत्त्वनिरूपक, तथा सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक और वैयक्तिक स्तर पर आदर्शों के रक्षक के रूप में लक्ष्मण के विलक्षण व्यक्तित्व की अत्यन्त मौलिक कल्पना की है।

इस ग्रन्थ में अतीत काल से निरन्तर भारतीय साहित्य की विविध विधाओं में विविध उद्देश्यों से नियोजित और रामकथा की सुदीर्घ परम्परा में रचित लक्ष्मण–चरित के क्रमिक विकास के साक्ष्य पर, तुलसी–साहित्य विशेषतः रामचरितमानस के सन्दर्भ में लक्ष्मण पात्र, चरित्र और तत्व का अन्वेषण–विश्लेषण किया गया है। इस उद्देश्य को व्यावहारिक रूप देने तथा विवेचन को क्रमशः पूर्णता की ओर ले जाने के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकरणों का विभाजन सात अध्यायों में किया गया है।

प्रथम अध्याय में उन समस्त मूल स्रोतों की चर्चा की गयी है जिनमें लक्ष्मण–चरित्र उपलब्ध है। इसी दिशा में तुलसीपूर्व संस्कृत, पालि एवं अपभ्रंश साहित्य में उद्धृत लक्ष्मण चरित्र के मुख्य स्थलों की संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत की गयी है। साथ ही तुलसीदास के उन सभी ग्रन्थों का विवेचन किया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गया है जिनमें लक्ष्मण–चरित्र उपलब्ध है। तुलसी–उत्तर साहित्य से सम्बद्ध रामचन्द्रिका और साकेत के साहित्यिक विश्लेषण के सन्दर्भ में लक्ष्मण–तत्त्व का निरूपण करते हुए कथा के साम्य और असाम्य को भी स्पष्ट किया गया है।

द्वितीय अध्याय चरित्र से सम्बद्ध है, जिसमें चरित्रसम्बन्धी परिकल्पना और उसके स्वरूप पर विचार किया गया है एवं चरित्र की परिभाषा, स्वरूप, भेद, प्रभावक तत्त्वों का विश्लेषण करते हुए लक्ष्मण–चरित्र का वैशिष्ट्य प्रदर्शित किया गया है।

तृतीय अध्याय भाषावैज्ञानिक एवं वैयाकरणिक भाग है। इसमें 'लक्ष्मण' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ स्पष्ट किया गया है। 'लक्ष्मण' शब्द की आध्यात्मिक तथा दार्शनिक व्युत्पत्ति प्रस्तुत करते हुए लक्ष्मण के लिये प्रयुक्त पर्यायों की भी व्युत्पत्ति तथा व्याख्या की गयी है। साथ ही तुलसी द्वारा लक्ष्मण के लिये प्रयुक्त सभी विशेषणों तथा उपमानों का विश्लेषण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय पूर्णतः दार्शनिक है। इस अध्याय में लक्ष्मण के बीज तत्त्व और अवतारवाद के सम्बन्ध में लक्ष्मण का स्वरूप और प्रयोजन संस्कृत के अन्यान्य ग्रन्थों के आधार पर उद्धृत करके तुलसी के मतों की तुलनात्मक विवेचना प्रस्तुत की गयी है। तथा वेदतत्व और पुरुषार्थचतुष्टय के रूप में लक्ष्मण का मूल्याङ्कन किया गया है।

पञ्चम अध्याय लक्ष्मण–चरित्र के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक पक्षों की व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसमें लक्ष्मण के सामाजिक कर्तव्यों तथा तुलसी के धर्मादर्शवाद की व्याख्या करते हुए लक्ष्मण के धार्मिक स्वरूप का निरूपण किया गया है। रामचरितमानस में राजनीति का स्वरूप और उस राजनीति में लक्ष्मण के योगदान एवं दण्डनीति की विवेचना भी की गयी है।

षष्ठ अध्याय में तुलसी–साहित्य के प्रमुख चरित्र और उनकी दृष्टि में लक्ष्मण–चरित्र का मूल्याङ्कन प्रस्तुत किया गया है।

सप्तम अध्याय के अन्तर्गत तुलसी के समस्त पूर्ववर्ती ग्रन्थों में लक्ष्मण–चरित्र किस प्रकार विकसित हुआ है, उसकी झाँकी प्रस्तुत करते हुए तुलसीदास के लक्ष्मण–चरित्र पर किन ग्रन्थों का कितना प्रभाव है–इसे उद्घाटित किया गया है। तत्पश्चात् चरित्र की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है एवं आधुनिक परिवेश में लक्ष्मण–चरित्र के सामाजिक महत्त्व का निरूपण किया गया है।

श्रद्धाप्रसूनाञ्जलि–जिनकी महती अनुकम्पा ने वर्त्तमान ग्रन्थ–रचना की सम्पूर्ण अवधि में सतत अन्तःप्रेरणा बनकर मेरा पथप्रदर्शन किया, इस अवसर पर उनका श्रद्धया स्मरण करना मेरे लिये अपरिहार्य है। वे हैं मेरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीक्षागुरु मानसराजहंस पं० श्री विजयानन्दजी त्रिपाठी। उन पूज्य गुरुवर से दीक्षित हो कर, उन्हीं के तत्त्वावधान में रह कर मानस का शास्त्रीय अध्ययन करने के पश्चात् भारत के प्रायः सभी प्रमुख अञ्चलों में मैं व्यासमञ्च से मानसप्रवचन करता रहा, जिसके कारण मेरे लिये तुलसी–साहित्य का गवेषणात्मक अध्ययन आवश्यक हो गया था। इसलिये "मानस" के अन्तस्तल में प्रविष्ट हो कर मैं अपनी मानस दृष्टि से इस महाकाव्य के पात्रों का अन्वेषण–विश्लेषण करता रहा। इसी क्रम में मैं मानस के अन्य चरित्रों की अपेक्षा लक्ष्मण–चरित्र से विशेष प्रभावित हुआ। परिणामस्वरूप लक्ष्मण पर एक ग्रन्थ–प्रणयन का सङ्कल्प लेते हुए मैंने इस दिशा में कार्य करना आरम्भ किया, जिसका प्रत्यक्ष फल है वर्त्तमान ग्रन्थ।

परन्तु चर्मचक्षुओं के अभाव में यह कार्य कितना दुरूह है–यह भुक्तभोगी ही जान सकते हैं। अनेक असुविधाओं और सम्भावित त्रुटियों के बाद भी यदि इस तुच्छ प्रयास से विद्वज्जन सन्तुष्ट होते हैं तो निःसन्देह मैं चक्षुर्विहीनताजन्य पीड़ा से अपने को मुक्त समझूँगा और अपने इस प्रयास को सफल मानूँगा।

आभार प्रदर्शन– इस प्रयास में मुझे हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान् पूज्य गुरुवर स्व० डॉ० केशव प्रसाद सिहं से सदैव सहज स्नेहयुक्त दिशा–निर्देश प्राप्त होता रहा, अतएव मैं उनका चिरऋणी रहूँगा। साथ हीं गुरुवर स्व० आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य के स्तम्भभूत स्व० डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामकथा के विशेषज्ञ आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी, व्याकरण एवं भारतीय दर्शन के मनीषी, विद्यावारिधि डॉ० पं० श्रीपतिराम त्रिपाठी आदि विद्वान् समय समय पर अपने अमूल्य परामर्श से मेरा उत्साहवर्द्धन करते रहे, अतः मैं इन विद्वानों का सदा आभारी रहूँगा।

कृतज्ञता ज्ञापन– ग्रन्थ प्रकाशन के इस पवित्र अवसर पर मैं अपने उन मानसमनीषियों, मित्रों, सहयोगियों तथा परिवार के प्रिय सदस्यों के प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना परम कर्त्तव्य मानता हूँ कि जिनका सहयोग प्राप्त कर मैं दृष्टिहीनताजन्य बाधाओं से बाधित होने पर भी अपने सङ्कल्प को पूर्ण कर सका।

सर्वप्रथम मैं उन मनीषियों में सुप्रसिद्ध रामकथामर्मज्ञ, पूज्य श्रीमुरारि बापू के प्रति अतिशय श्रद्धावनत हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ का आद्यन्त अवलोकन कर, इस पर अपनी अमूल्य एवं सारगर्भित सम्मति देते हुए मुझे अनुगृहीत किया है।

इसके बाद मानसमर्मज्ञ आचार्यप्रवर परमपूज्य श्री रामकिङ्कर उपाध्याय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ग्रन्थकार के गुरुदेव

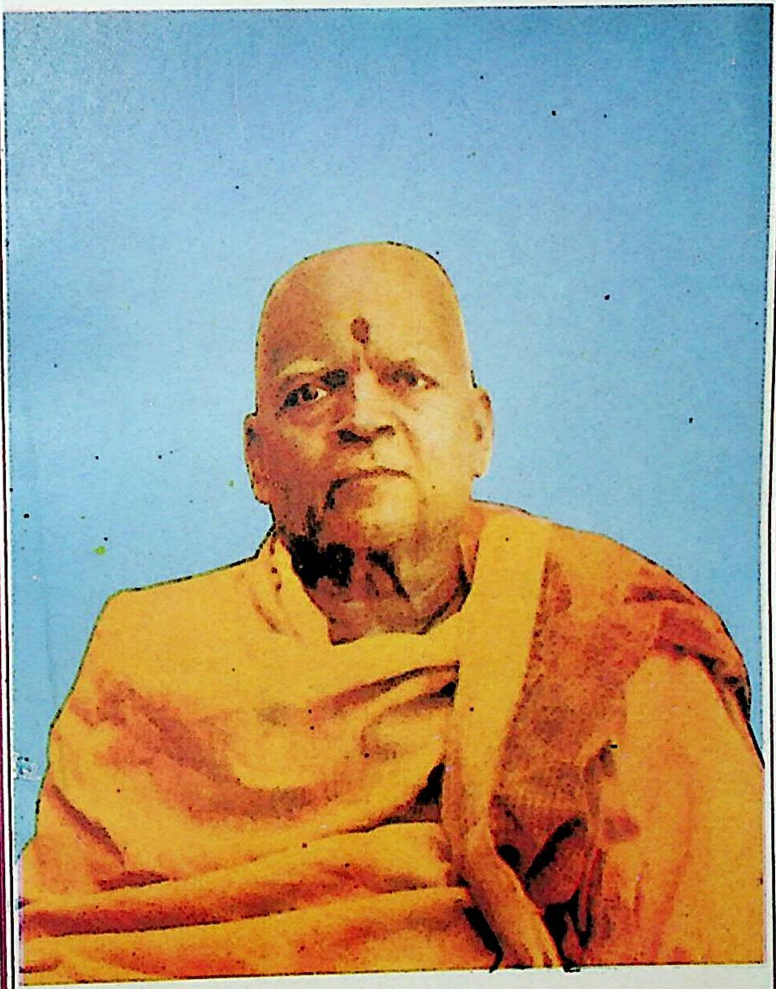

मानसराजहंस

स्व० पं० विजयानन्द जी त्रिपाठी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनकी अपार अनुकम्पा से मुझे ग्रन्थ–प्रणयन की प्रेरणा मिली।

श्री अवध लक्ष्मण किलाधीश परम पूज्य स्वामी श्री सीतारामशरण जी महाराज के चरणों में भावाञ्जलि समर्पित करते हुए अपना आभार व्यक्त करता हूँ जिनके सान्निध्य ने मुझको सौमित्रिचरित्र पर ग्रन्थ–सर्जन हेतु प्रोत्साहित किया।

विद्वद्वर डॉ० भगीरथ प्रसाद त्रिपाठी "वागीश शास्त्री" *(पूर्व निदेशक, अनुसन्धान संस्थान, सं०सं०वि०वि०, वाराणसी)* के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने समीक्षात्मक दृष्टि से इस ग्रन्थ के यथार्थ स्वरूप पर पुरोवाक् में प्रकाश डाला है।

एतत्पश्चात्, मैं मानसरत्न गुरुभ्राता आदरणीय डॉ. श्रीनाथ जी मिश्र तथा मानसमार्त्तण्ड र.न्त श्री शिवमङ्गलजी मिश्र, जो ग्रन्थ–रचना हेतु समय समय पर मुझे प्रोत्साहित करते रहे हैं, उभय महानुभावों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

श्री श्री दण्डिस्वामी विमलानन्द सरस्वती जी ने 'लक्ष्मण तत्त्व विमर्श' ग्रन्थ का सूक्ष्म अनुशीलन कर 'दो शब्द' से मुझे अनुकम्पा प्रदान की है। इस अनुकम्पा के कारण मैं उन का चिरऋणी हूँ।

मैं स्वयं को डॉ० रामतवक्या शर्मा, पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना (बिहार) का भी ऋणी मानता हूँ, जिन्होंने समीक्षात्मक दृष्टि से इस ग्रन्थ का निरीक्षण कर अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की है।

मित्रों में मैं आदरणीय श्री रणजित सामन्त राय के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर अत्यन्त मनोयोग से ग्रन्थ की सम्पूर्ण पाण्डुलिपि का अन्वेषण, विश्लेषण, संशोधन, सम्वर्द्धन कर ग्रन्थ को प्रकाशनयोग्य बनाया है।

आदरणीय डॉ० विश्वरञ्जन गोस्वामी शास्त्री, एम.ए. ने ग्रन्थ–प्रकाशन के पूर्व अपना बहुमूल्य समय देकर ग्रन्थ के अन्तर्गत संस्कृत श्लोकादि को मूल ग्रन्थों से मिलाकर शुद्धता प्रदान की है। अतएव, मैं उनके प्रति भी भूयोभूयः कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

डॉ. हरिदत्त दीक्षित के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जो प्रकाशन के कार्यों में समय समय पर अपना योगदान करते रहे हैं।

मानसरसिक, श्रीरामानुरागी, कलकत्तानिवासी, सेठ श्रीगोपालदास जी काबरा का मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे ग्रन्थ के प्रणयन हेतु सदा प्रोत्साहित किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विद्वत्प्रवर, दिल्लीनिवासी डॉ० शिवतोषदास का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने प्रकाशन के निमित्त मुझे अपना अमूल्य योगदान किया है।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली के प्रशंसनीय योगदान के कारण मैं इस ग्रन्थ के प्रकाशनकार्य में सफल हो सका। अतएव, भारत सरकार के केन्द्रीय निदेशालय के प्रति मैं अपना सविशेष आभार प्रकट करता हूँ।

मानसकिङ्कर प्रिय अनुज श्री गोपालदास जी रामायणी, मेरे आत्मज चिरञ्जीवी प्रिय प्रतीक रामायणी, आत्मजा सौभाग्यवती प्रिय कृति रामायणी तथा सहधर्मिणी सेवापरायणा श्रीमती साधना रामायणी के प्रति मैं असीम हार्दिक आशीर्वाद के साथ प्रभु से दीर्घायु तथा मङ्गलकामना करता हूँ।

आदरणीय श्री रामनारायण सिंह जी ने ग्रन्थ–प्रकाशन के समस्त कार्य में जो मुझे अपना योगदान किया है उसके लिये मैं सदा इनका आभारी रहूँगा।

इसी तरह ग्रन्थप्रकाशन के कार्यों में आदरणीय श्री कमलप्रकाश जी ने निष्कामभाव से समय–समय पर मेरी जो सहायता की है, इसके लिये इन्हें मैं हृदय से साधुवाद देता हूँ।

मानस मन्थन केन्द्र
बी, ५/५ अवधगर्वी,
वाराणसी–२२१ ००१
दूरभाष : ३१३९७४.

राधेश्याम रामायणी "प्रज्ञाचक्षु"
एम० ए०, पीएच० डी०,
हिन्दी–प्रवक्ता
राजकीय क्वींस कॉलेज, वाराणसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विलक्षण प्रतिभासम्पन्न
डॉ० रामायणी जी

स्वच्छ मुद्रण हेतु बौद्धभारती संस्थान की अपनी स्वतन्त्र मुद्रण व्यवस्था है। एक मित्र के विशेष आग्रह पर, हमने डॉ० रामायणी जी का 'लक्ष्मणतत्त्वविमर्श' ग्रन्थ अपने ही यहाँ मुद्रित करने का सङ्कल्प किया।

इस प्रसङ्ग में, हमने उक्त ग्रन्थ की टङ्कित प्रति देखी। उसके टङ्कण में पद–पद पर सावधानी दृष्टिगोचर हुई। बाद में, मुद्रण-संशोधन (प्रूफ-रीडिंग) के समय, डॉ० रामायणी के साथ बैठ कर ग्रन्थ का तीन बार अक्षरशः अध्ययन किया गया। उस अवसर पर, तुलसी–साहित्य में इन की विलक्षण प्रतिभा देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ा। इस ग्रन्थ में तुलसी-साहित्य से उद्धृत हजारों उद्धरणों को मूल ग्रन्थों से मिलाते समय, क्षण क्षण में अनुभव होने लगा कि डॉ० रामायणी को इतना विशाल एवं सम्पूर्ण तुलसी–साहित्य, प्रसङ्ग (काण्ड आदि) तथा दोहा–चौपाई आदि के क्रमाङ्क सहित, पूर्णतः कण्ठस्थ है और उस पर विशेषता यह है कि कहीं एक अक्षर का भी प्रमाद (भूल) नहीं।

इनकी इस विलक्षण एवं मनःप्रसादक प्रतिभा के साक्ष्य के आधार पर हम यह विश्वास करने को बाध्य हैं कि हमारी प्राचीन वैदिक एवं बौद्ध श्रुतिपरम्परा (कण्ठस्थ रखने की पाठ-विधि) पूर्णतः प्रामाणिक है; क्योंकि उस समय तो डॉ० रामायणी सदृश हजारों प्रतिभावान् एवं शुद्धान्तःकरण 'पण्डितों' की परम्परा ही रही होगी!

इसी विलक्षण प्रतिभा के सहारे डॉ० रामायणी द्वारा रचित इस 'लक्ष्मण–तत्त्वविमर्श' ग्रन्थ की प्रशस्ति में यदि संक्षेप में कहा जाय तो महाभारतकार महर्षि वेदव्यास के शब्दों को ही पुनः दुहराया जा सकता है कि—

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।

ऐसा कहने में यत् किञ्चित् भी अत्युक्ति नहीं है।

ग्रन्थ के विषय में इसी बात को और अधिक स्पष्ट करना चाहें तो गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में यों कह सकते हैं—

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे, अरथु अमित अति आखर थोरे॥

(रा० च० मा०, अ० का०, २९४)

तुलसीजयन्ती, १९९६
वाराणसी

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री
(अध्यक्ष, बौद्धभारती)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार की प्रशस्ति में :

दो शब्द

डॉ. राधेश्याम रामायणी 'प्रज्ञाचक्षु', प्रवक्ता (हिन्दी) राजकीय क्वीन्स कॉलेज, वाराणसी द्वारा प्रणीत ग्रन्थ 'लक्ष्मणतत्त्वविमर्श' सारस्वत साधना का एक सर्वाङ्गीण सुन्दर अलौकिक स्वरूप है। यह ग्रन्थ वैदिक, पौराणिक, पालि, प्राकृत और लोक साहित्य के सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय महासागर के सम्यक् मन्थन अवगाहन के पश्चात् सर्वश्रेष्ठ कौस्तुभमणि की भाँति अनूठा रत्न है।

इस ग्रन्थ में मानस के सन्दर्भ में लक्ष्मण चरित की विशिष्टता की समीक्षा एवं मूल्याङ्कन है जो मणिकाञ्चन योग तथा सोने में सुगन्ध की तरह है। प्रतिभासम्पन्न लेखन ने प्रथम अध्याय में लक्ष्मण चरित के मूल स्रोत से अपना गहन अनुशीलन प्रारम्भ करते हुए प्रागैतिहासिक काल की रामकथा से आरम्भ करके सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय वैदिक, पौराणिक, पालि, प्राकृत तथा लोकभाषा–साहित्य के ग्रन्थों का अनुशीलन कर उन्हें आत्मसात् करते हुए लक्ष्मणतत्त्व की व्यापक और नवीन उद्भावनाओं के साथ मौलिक कथा प्रस्तुत करके जगत् के लिये एक नवीन और प्रशस्त परिष्कृत मार्ग का निर्माण किया है। जिज्ञासुओं के लिये एक नया आलोक प्रदान किया है। द्वितीय अध्याय में चरितसम्बन्धी परिकल्पना और उसका स्वरूप के अन्तर्गत विद्वान् लेखक ने चरित्र की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या प्रस्तुत की है। मानस की चरित्र योजना पर प्रकाश डालते हुए लक्ष्मण–चरित्र का वैशिष्ट्य निरूपित किया है जो इस ग्रन्थ की मौलिकता का परिचायक है। तृतीय अध्याय में लक्ष्मण शब्द की अर्थ व्याप्ति तथा लक्ष्मण के पर्यायों का शास्त्रीय दृष्टि से विशद विवेचन किया है, जो अपने आप में एक अद्भुत परिशीलन है। चतुर्थ अध्याय में लक्ष्मण के दार्शनिक स्वरूप का निरूपण करते हुए पुरुषार्थ–चतुष्टय, लक्ष्मण का बीजतत्त्व तथा रामावतार में लक्ष्मण अवतार का प्रयोजन प्रदर्शित किया गया है। पञ्चम अध्याय में प्रज्ञाचक्षु जी ने लक्ष्मण–चरित्र के सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक पक्ष पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। षष्ठ अध्याय में तुलसी साहित्य के प्रमुख चरित्र और उनकी दृष्टि में लक्ष्मण का मूल्याङ्कन है। सप्तम अध्याय में, वर्त्तमान सामाजिक सन्दर्भ में लक्ष्मण–चरित्र का व्यापक मूल्याङ्कन किया गया है, जिसके अध्ययन से लेखक की कुशाग्रबुद्धि तथा व्यापक पाण्डित्य का परिचय प्राप्त होता हैं।

रामायणी जी की यह कृति उनके दिव्य व्यक्तित्व की ही परिचायक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन्होंने अपने आचरण से अनूठे मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित कर वर्तमान एवं भावी पीढ़ी के जिज्ञासुओं का मार्गदर्शन कराया है। रामायणी जी ने अपने तप, त्याग, विनय और शील से जिस उज्ज्वल चरित्र का निर्माण किया है, वह अनुकरणीय है और जीवन के परम लक्ष्य अमृतत्व की उपलब्धि करानेवाला है। यह समग्र ग्रन्थ रामायणीजी के आचरण की मधुर सुगन्ध से सुगन्धित भक्तजनों एवं आध्यात्मिक वृत्ति के लोगों को विमुग्ध करनेवाला है।

ये मानसमर्मज्ञ ही नहीं, ब्रह्मतत्त्व के भी अन्तर्द्रष्टा हैं तथा रामचरित्ररूपी कौस्तुभमणि को प्राप्त कर राममय हो चुके हैं। इनकी भीतर की आँखें खुल चुकी हैं। अपने अनेक जन्मों के सञ्चित प्रचुर पुण्य से रामरूपी पूर्णब्रह्म को जानकर रामत्व को प्राप्त कर चुके हैं। मानस की निम्न पंक्तियाँ रामायणी जी के व्यक्तित्व को उजागर करती है—

उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।
सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।।

जिसके अन्तर के विमल और विशिष्ट नेत्र खुल चुके हैं वे पुरुष अभिनन्दनीय और दर्शनीय हैं। मैं जब रामायणी जी के तप, त्याग और पुरुषार्थ को देखता और विचार करता हूँ तो आश्चर्यचकित हो जाता हूँ। भौतिक नेत्रज्योतिविहीन इस मनीषी ने संस्कृत, पालि, प्राकृत और लोकभाषा के सैकड़ों उत्कृष्ट ग्रन्थों का अध्ययन–अवलोकन करके उनमें लक्ष्मण–चरित्र की सामग्री का अन्वेषण किया है। पुस्तकों को दूसरे की सहायता से पढ़वाकर इन्हें अपने उपयोग के लिये सङ्कलित कराया। दूसरी ओर अपने मनन, चिन्तन द्वारा उपलब्ध विचारों को लिपिबद्ध कराकर यह अपूर्व ग्रन्थ आपके समक्ष प्रस्तुत किया है। रामायणी जी हिमालय के समान धीर, स्थिर तथा गम्भीर पुरुष हैं। भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में रामायणी जी विशाल, दिव्य और विराट् गौरव के मूर्त्तिमान् स्वरूप हैं। अखिल ब्रह्माण्डनायक परमपिता से मेरी प्रार्थना है कि इनके भौतिक शरीर को शतायु बनाकर मानवता के हित के लिये इन्हें अपनी कृपाविभूति प्रदान करें। इनके सन्दर्भ में दो शब्द लिखने की मेरी क्षमता कतई नहीं हैं। मैं अल्पज्ञ और बोधरहित सामान्य व्यक्ति हूँ। रामायणी जी शिवस्वरूप हैं। संसार में रहते हुए भी जीवन्मुक्त हैं। विद्यावारिधि के समक्ष मैं एक बिन्दुमात्र हूँ। इन्हीं तुच्छ शब्दों के साथ मैं रामायणी जी को साधुवाद देता हूँ।

राजगुरुमठ, शिवालाधाम
वाराणसी

— दण्डी स्वामी विमलानन्द सरस्वती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ग्रन्थकार का परिचय

वरुणा और अस्सी के सङ्गम पर बसी वाराणसी युगों से भारत की सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक राजधानी रही है। यह सदा से ही संस्कृत साहित्य का महत्त्वपूर्ण अध्ययन अध्यापन का केन्द्र रही है। माता शारदा के पुत्र डॉ० राधेश्याम रामायणी ने 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' के उद्घोष का स्मरण कर पिनाकपाणि भगवान् शङ्कर की नित्यलीलाभूमि इसी काशी में जो कबीर, गोस्वामी तुलसीदास तथा मधुसूदन सरस्वती की पवित्र साधनास्थली रही है, उन्हीं की मर्यादा का अनुसरण करते हुए हमारी सांस्कृतिक रक्षा का गुरुतर कार्य धैर्य के साथ सम्पन्न करने का दृढ़ सङ्कल्प किया है। आप अपनी उद्यमशीलता, अध्यवसाय तथा प्रभु की अहैतुकी अनुकम्पा से सरस्वतो के वरदपुत्र हो गये। आज डॉ० राधेश्याम रामायणी से भारत के समस्त मानसप्रेमी परिचित हैं।

तृतीय कक्षा पर्यन्त शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् द्वादश वर्ष की अवस्था में आप दृष्टिहीन हो गये। दृष्टिहीन होने के पश्चात् आपने ब्रेललिपि के माध्यम से सन् १९५५ ई० में उच्चतम योग्यता प्राप्त की। इसके बाद, १९५९ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से साहित्यरत्न तथा १९७० ई० में हिन्दी विद्यापीठ, देवघर, विहार की साहित्यालङ्कार की परीक्षा में सर्वाधिक अङ्क प्राप्त करने पर आपको स्वर्णपदक से अलङ्कृत किया गया एव इसी वर्ष आपने काशी विद्यापीठ से एम.ए. (हिन्दी) की परीक्षा में, प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होकर, द्वितीय स्थान प्राप्त किया है।

उत्तर प्रदेश के समस्त विश्वविद्यालयों के नेत्रहीन छात्रों में एम०ए० की परीक्षा में सर्वाधिक अङ्क प्राप्त करने पर सन् १९७० ई० मे नेत्रविहीन, कल्याणसङ्घ, गोरखपुर ने आपको पुरस्कृत किया। तत्पश्चात् १९७५ ई० में आप काशी विद्यापीठ के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० केशवप्रसादसिंह के निदेशन में शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत कर पीएच. डी. की उपाधि से विभूषित हुए। इस शोध–प्रबन्ध को स्व० डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी की अध्यक्षता मे हनुमान मन्दिर न्यास, कलकत्ता द्वारा प्रथम पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है। आपको बी. ए. तथा एम. ए. में केन्द्रीय छात्रवृत्तियाँ तथा पीएच. डी. में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से फेलोशिप प्राप्त भी होती रही।

विद्यार्जन के साथ ही साथ आपका अध्यापन–जीवन भी चलता रहा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ग्रन्थकार

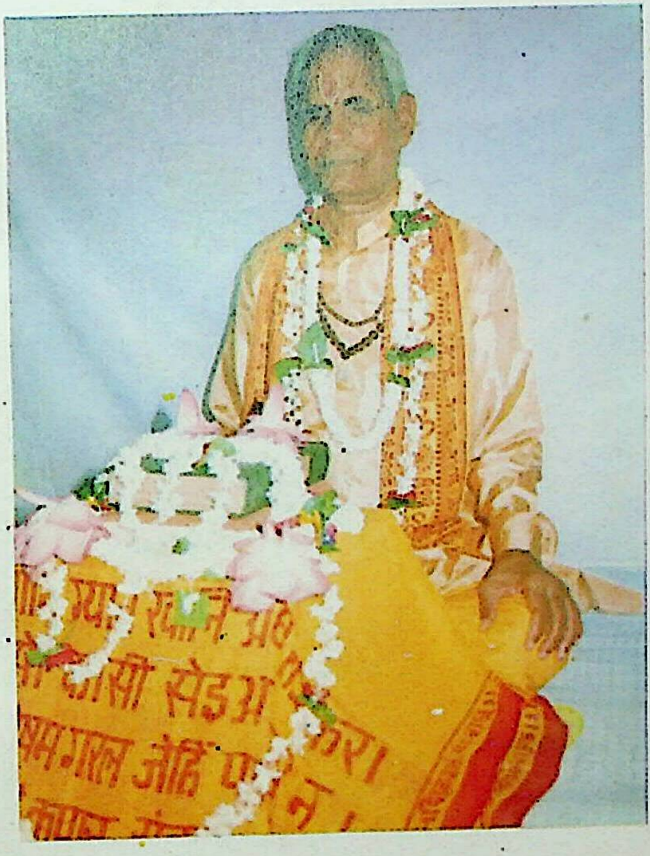

मानसकोविद डॉ० राधेश्याम रामायणी

(प्रज्ञाचक्षु)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आप दुर्गाकुण्ड स्थित तुलसीमानस अन्धविद्यालय में प्रधानाचार्य पद पर रहे। आपने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के नियमानुसार सीनियर फेलो के रूप में काशी विद्यापीठ, वाराणसी की एम०ए० अन्तिम वर्ष की कक्षा में भी अध्यापन किया है। विश्वज्योति महाविद्यालय, क्राइस्टनगर में प्राध्यापक पद पर रहकर आप श्रीरामचरितमानस के परिप्रेक्ष्य में "भारतीय संस्कृति, धर्म एवं दर्शन" विषयों पर शैक्षणिक कार्य करते रहे। सम्प्रति आप राजकीय क्वींस कॉलेज, वाराणसी में हिन्दी प्रवक्ता पद पर कार्यरत हैं।

डॉ. रामायणी के रामचरितमानस की ओर अध्ययन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन अतीव आश्चर्यजनक है। मानस की ओर प्रवृत्ति में एकमात्र मारुतिनन्दन की महती प्रेरणा से ही आपने मानसराजहंस पं० विजयानन्द जी त्रिपाठी के श्रीचरणों में अपने को पूर्णतया समर्पित कर तथा उनसे गुरुदीक्षा प्राप्त कर उन्हीं के तत्त्वावधान में रहकर मानस का शास्त्रीय अध्ययन किया है। वाराणसी के गढ़वासी टोला स्थित प्रसिद्ध 'सत्सङ्ग परिवार' के अन्तर्गत चलनेवाली मानस प्रतियोगिता के साधनाक्रम में नियमित रूप से सम्मिलित होकर आपने सम्पूर्ण रामचरितमानस कण्ठस्थ किया। जिसके प्रमाणस्वरूप आप १९५० ई० में उत्तरप्रदेश के भूतपूर्व गृहमन्त्री स्व० पं० कमलापति त्रिपाठी द्वारा आप 'मानसकोविद' की उपाधि से विभूषित हुए।

आज आप काशी ही नहीं, लगभग सम्पूर्ण भारतभूमि के मानसप्रेमियों के बीच लोकप्रिय एवं सुप्रतिष्ठित हैं। मानसमर्मज्ञ के रूप में आकाशवाणी, दूरदर्शन पर प्रायः आपके कार्यक्रम आयोजित होते रहते हैं। भगवत्प्रदत्त वर्त्तमान शरीर में भी आप भारत में समय समय पर यत्र तत्र प्राञ्जल, भावमूलक, गूढ़तत्त्वविश्लेषणयुक्त भगवान् श्रीराम के पावन चरित का प्रवचन करते रहते हैं।

इस ग्रन्थ के आद्यन्त अध्ययन से स्पष्टरूपेण प्रतीत होता है कि, समस्त मानसप्रेमी इससे अधिकाधिक लभान्वित होंगे।

परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्र के श्रीचरणकमलों में मेरी हार्दिक ऐकान्तिक प्रार्थना है कि वे आपको दीर्घायु प्रदान कर सदैव अपने कृपावारि से अभिषिक्त करते रहें।

— डॉ. विश्वरञ्जन गोस्वामी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सन्दर्भ–सङ्केत

अध्या०, अध्यात्म०	:	अध्यात्म रामायण
अ० रा०	:	अध्यात्म रामायण
अ० पु०	:	अग्निपुराण
अहि० सं०	:	अहिर्बुध्न्यसंहिता
ई० उ०	:	ईशावास्योपनिषद्
उत्तर०	:	उत्तररामचरित (भवभूति)
ऋ०	:	ऋग्वेद
कवि०, कविता०	:	कवितावली (तुलसीदास)
कुमार०	:	कुमारसम्भव
ग०पु०	:	गरुड़पुराण
गी०	:	गीतावली (तुलसीदास)
गीता०	:	श्रीमद्भगवद्गीता
छा० उ०	:	छान्दोग्योपनिषद्
जा० मं०	:	जानकीमङ्गल (तुलसीदास)
दो०	:	दोहावली (तुलसीदास)
ना० पु०	:	नारदपुराण
ना० पा० रा०	:	नारदपाञ्चरात्र
ना० भ० सू०	:	नारदभक्तिसूत्र
नृ० पु०	:	नृसिंहपुराण
प० पु०	:	पद्मपुराण
पा० सू० पा०	:	पाणिनि–सूत्रपाठ
बृ० उ०	:	बृहदारण्यकोपनिषद्
भ०र०	:	भक्तिरसायन
भा०, भागवत०	:	श्रीमद्भागवत
मनु०	:	मनुस्मृति
मानस	:	रामचरितमानस
माण्डू०	:	माण्डूक्योपनिषद्
मुण्डक०	:	मुण्डकोपनिषद्
यजु०	:	यजुर्वेद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रामाज्ञा०	:	रामाज्ञाप्रश्न (तुलसीदास)
रामलला	:	रामलला नहछू (तुलसीदास)
रा० च०	:	रामचन्द्रिका (केशवदास)
रघु०	:	रघुवंश
वा० रा०	:	वाल्मीकि रामायण
वा० पु०	:	वायुपुराण
वा० रा० कोश	:	वाल्मीकि रामायणकोश
वि० प०, विनय०	:	विनयपत्रिका (तुलसीदास)
वि० पु०	:	विष्णुपुराण
वि० चू०	:	विवेकचूड़ामणि
वै० सं०	:	वैराग्यसन्दीपनी
शां० भा०	:	शाङ्कर भाष्य
शां० भ० सू०	:	शाण्डिल्यभक्तिसूत्र
शिशु०	:	शिशुपालवध (माघ)
श्वे० उ०	:	श्वेताश्वतरोपनिषद्
सा० भा०	:	सायण भाष्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

लक्ष्मण–चरित्र का मूल स्रोत ३–४२

१– तुलसी–पूर्व साहित्य में लक्ष्मण–चरित्र ३

(क) आदि साहित्य ४

(ख) बौद्ध साहित्य ८

(ग) पुराण साहित्य ९

(घ) संस्कृत काव्य–साहित्य १३

(ङ) संस्कृत नाट्य–साहित्य १४

(च) जैन साहित्य २१

(छ) कम्ब रामायण २४

२. तुलसी साहित्य में लक्ष्मण–चरित्र ३०

३. तुलसी–परवर्ती साहित्य में लक्ष्मण–चरित्र ३६

द्वितीय अध्याय

चरित्रसम्बन्धी परिकल्पना और उसका स्वरूप ४५–६८

चरित्र की व्युत्पत्ति, परिभाषा एवं भेद ४५

चरित्र के प्रकार ४७

चरित्र के प्रभावक तत्त्व (वंशानुक्रमण और पर्यावरण) ४९

चरित्र और चरितकाव्य ५१

साहित्य में चरित्र का महत्त्व ५४

रामचरितमानस की चरित–योजना ५६

लक्ष्मण के चरित्र का वैशिष्ट्य ६२

तृतीय अध्याय

'लक्ष्मण' : शब्द और अर्थ व्युत्पत्ति ७१–९६

'लक्ष्मण' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ ७१

'लक्ष्मण' शब्द की आध्यात्मिक तथा दार्शनिक व्युत्पत्ति ७४

लक्ष्मण के पर्याय ७७

तुलसी साहित्य में प्रयुक्त लक्ष्मण के विशेषण ८५

तुलसी साहित्य में प्रयुक्त लक्ष्मण के उपमान ८९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चतुर्थ अध्याय

लक्ष्मण का दार्शनिक स्वरूप ९९—१४६

लक्ष्मण का बीजतत्व ९९
अवतारवाद के सन्दर्भ में लक्ष्मण का स्वरूप और प्रयोजन १०७
दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में लक्ष्मण का स्वरूप ११४
पुरुषार्थचतुष्टय और लक्ष्मण ११७
अर्थ ११८
धर्म ११८
काम ११९
मोक्ष १२०
ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का स्वरूप और लक्ष्मण १२१
लक्ष्मण—गीता १४०

पञ्चम अध्याय

लक्ष्मण—चरित का सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक पक्ष १४८—१८८

लोकादर्शवाद और लक्ष्मण १४९
तुलसी—समाज और लक्ष्मण १५२
लक्ष्मण का धार्मिक पक्ष १६४
रामचरितमानस में राजनीति का स्वरूप
तथा उसमें लक्ष्मण का योगदान १७२
मानसकालीन राजनीतिक परिस्थिति १७३
रामचरितमानस में राजनीति के प्रमुख साधन १८०
मानस की राजनीति में लक्ष्मण का योगदान १८१
रामचरितमानस में लक्ष्मण की दण्डनीति १८५

षष्ठ अध्याय

तुलसी—साहित्य के प्रमुख चरित्र और उनकी दृष्टि में लक्ष्मण का मूल्याङ्कन १९२—२४४

राम १९२
भरत १९६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दशरथ १९९
जनक २०१
हनुमान् २०३
विभीषण २०५
मेघनाद २०७
रावण २०९
कौसल्या २११
सुमित्रा २१३
कैकेयी २१५
सीता २१७
उर्मिला २२१
तुलसी साहित्य के प्रमुख चरित्र और उनकी दृष्टि में लक्ष्मण का मूल्याङ्कन २२४–२४४

सप्तम अध्याय

वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में लक्ष्मण–चरित्र का मूल्याङ्कन **२४७–२६६**

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास की शील–योजना एवं लक्ष्मण २४७
शील एवं चरित्र का अन्तर २५२
लक्ष्मण–चरित्र के विकास में तुलसीदास के अधीत ग्रन्थों का प्रभाव २५३
आधुनिक भारतीय समाज में लक्ष्मण–चरित्र की उपयोगिता २६०

उपसंहार **२६९–२७४**

परिशिष्ट **२७५–२८९**

क–सन्दर्भ सूची २७७–२८३
ख–सहायक ग्रन्थों की सूची २८४–२८९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्ष्मणतत्त्वविमर्श पर

सुप्रसिद्ध रामकथामर्मज्ञ

श्रद्धेय श्री मुरारि बापू की

भावप्रवण संस्तुति

॥ राम ॥

॥ लक्ष्मण तत्त्व-विमर्श ॥ जो आदरणीय डॉ. राधेश्याम रामायणीजी प्रज्ञाचक्षु का दर्शन है। उसका कुछ दर्शन किया। लगता है, जैसे लक्ष्मणजी सदा जागृत है वैसे, हमारे डॉ. रामायणीजी भी चर्मचक्षु के अभावमें प्रज्ञाचक्षुके प्रभावसे जागृत मालुम होते हैं।

मुझे लगता है- लक्ष्मण तत्त्व-विमर्श ग्रंथ न रहकर साधकों के लिये पंथ बन सकता है। यह पुस्तक नहीं है, बल्कि महाराजजी का मस्तक है। जो कमल पुष्प के रूपमें शिवरूप समाजको चढ़ाया जा रहा है। यह शिरःपुष्प पूजा सफल ही नहीं बल्कि सुफल हो ऐसी प्रभु प्रार्थना! मेरी प्रसन्नता और आशीर्वाद!

राम स्मिरनके साथ।

काशी
28-12-95

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीरामचरणानुग

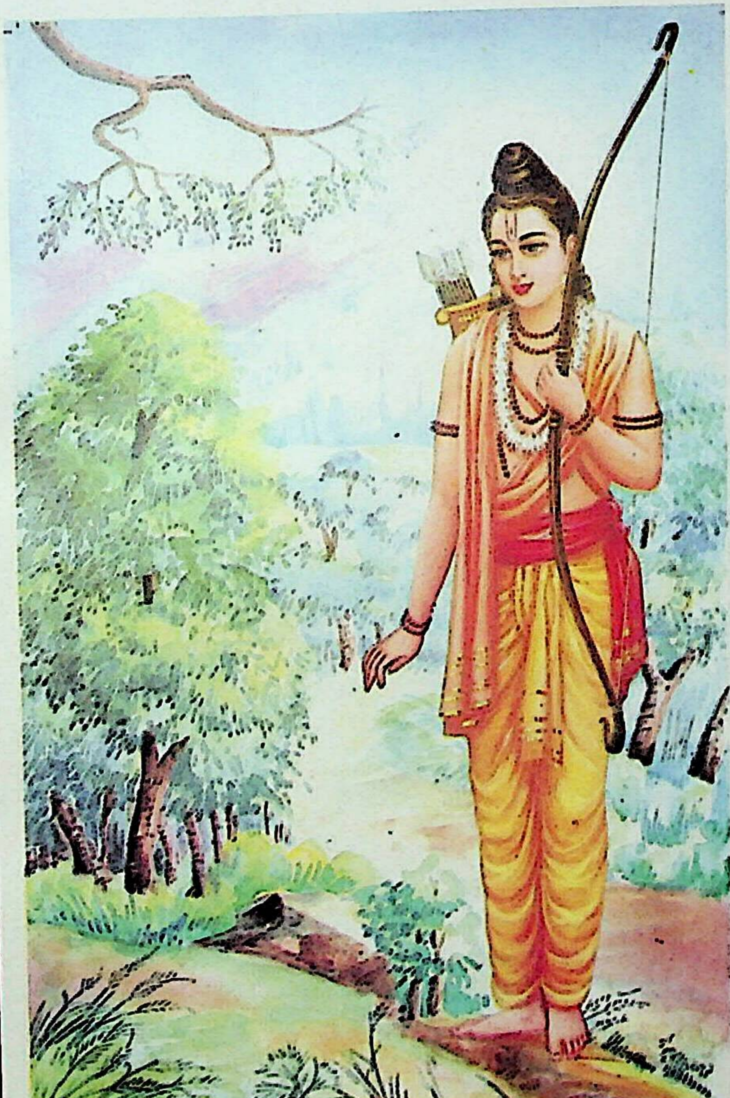

सुमित्रानन्दन लक्ष्मण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रथम अध्याय

लक्ष्मण-चरित्र का मूल स्त्रोत

- तुलसी-पूर्व साहित्य में लक्ष्मण-चरित्र
  - (क) आदि साहित्य
  - (ख) वौद्ध साहित्य
  - (ग) पुराण साहित्य
  - (घ) संस्कृत काव्य साहित्य
  - (ङ) संस्कृत नाट्य साहित्य
  - (च) जैन साहित्य
  - (छ) कम्ब रामायण
- तुलसी-साहित्य में लक्ष्मण-चरित्र
- तुलसी-परवर्ती साहित्य में लक्ष्मण-चरित्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रथम अध्याय

लक्ष्मण–चरित्र का मूल स्त्रोत

"स्त्रोत" शब्द हिन्दी भाषा में संस्कृत के "स्त्रोतस्" शब्द से गृहीत किया गया है जिसका अभिप्राय है उद्गम। लक्ष्मण–चरित्र का दिग्दर्शन लक्ष्मणायन से ही सम्भव है। लक्ष्मणायन तथा रामायण दोनों कथाएँ सहगामिनी हैं। दोनों ही निर्मल, पवित्र, पीयूषमयी धारा के सुरम्य तट के समान परस्पर पूरक रूप में उपलब्ध होती हैं। ये दोनों कथाएँ एक दूसरे की सौन्दर्य–सुषमा का वर्धन करती हैं। एक के दूसरी से विलग होते ही दूसरी रूपवती भिखारिन की भाँति श्रीहीन हो जाती है और दूसरी को पहली से पृथक् करते ही पहली रत्नहीन, श्रीहीन, सुषमाहीन हो जाती है। फिर भी लक्ष्मणायन रामायण में पुट–चक्र की भाँति उपयोगी और सबल है जिस पर समस्त राम कमलदल आधृत है और राम–कथा–कीर्ति–पराग उसी से सुवासित होता है।

रामकथा प्रागैतिहासिक है और इतिहास जानने के पुरातन साधन, यथा–उत्खनन में प्राप्त मुद्राएँ, लेख, वास्तुकला आदि इसमें उपयोगी नहीं हो सके। केवल साहित्यिक साधनों से ही हम लक्ष्मण के चरित्र का अन्वेषण एवं विश्लेषण कर सकते हैं। साहित्यिक ग्रन्थ में सर्वप्रथम जो प्रकाश्य है जिनमें लक्ष्मण–चरित वर्णित है वही लक्ष्मण–चरित्र के मूल स्त्रोत के रूप में स्वीकार्य है।

तुलसी–पूर्व साहित्य में लक्ष्मण–चरित्र

साहित्यिक पर्यवेक्षण एवं साहित्यिक इतिहास पर विहङ्गम दृष्टिपात करने पर प्रामाणिक लिपिबद्ध रामकथा सर्वप्रथम हमें महर्षि वाल्मीकि प्रणीत "रामायण" से प्राप्त होती है, अतः रामायण को ही लक्ष्मण–चरित्र के अनुशीलन का मूल स्त्रोत माना जा सकता है।

महर्षि वाल्मीकि के सम्मुख ये कथाएं याथातथ्य रूप में वर्तमान न थी। समाज में तात्कालिक लोकभाषा में प्रचलित इन कथाओं का वाल्मीकि ने अपनी बुद्धि से संशोधन एवं संवर्धन करके संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध कर इन्हें साहित्यिक रूप प्रदान किया। हमारे आदि ग्रन्थ वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् आदि भारतीय साहित्य में रामकथा वर्णित है; तथापि रामकथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का सर्जन कहाँ से हुआ? इस पर विद्वान् एकमत नहीं है। भिन्न–भिन्न विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं। यहाँ इस विषय के कुछ प्रमुख विद्वानों का मत द्रष्टव्य है।

डॉ. बेवर के मतानुसार बौद्ध ग्रन्थ "दसरथजातक" में जो रामकथा वर्णित है उसी के आधार पर महर्षि वाल्मीकि ने अपनें ढंग से रामायण में उसका सविस्तर वर्णन किया है।

चिन्तामणि विनायक वैद्य के मतानुसार ऋग्वेद के दसवें मण्डल में जिस राम का उल्लेख हुआ है वे दाशरथि राम ही थे।

"रामायण" अनुसन्धानकर्ता एवं विद्वत्प्रवर डॉ. एच० याकोबी ने अपने ग्रन्थ "दस रामायण" में रामायण की कथा के उद्गम पर विचार करते हुए यह मत प्रकट किया है कि अयोध्या की घटनाएं ऐतिहासिक हैं, जिनका आधार किसी निर्वासित इक्ष्वाकुवंशीय राजकुमार से है और दण्डकारण्य तथा रावणवध सम्बन्धी घटनाओं का मूल उद्गम वेदों में वर्णित देवताओं की कथाएँ हैं। इस प्रकार डॉ. याकोबी ने रामायण के वर्ण्य विषय को दो भागों में विभक्त करके इसके उद्गम को निर्धारित करने का प्रयास किया है।

(क) आदि साहित्य

एक पौराणिक जनश्रुति के अनुसार स्वायम्भुव मन्वन्तर से भी पूर्व सतयुग में भगवान् शंकर ने सर्वप्रथम महासती पार्वती को एक कथा सुनायी थी जिसका नाम "महारामायण" या अध्यात्मरामायण था और जिसका कलेवर तीन लाख पचास हजार श्लोकों का था (रामदास गौड़, हिन्दुत्व, पृष्ठ–१३७)। गोस्वामी तुलसीदास ने भी भगवान् शिव को ही रामकथा का आदि–प्रणेता स्वीकार किया है। सर्वप्रथम श्रीशङ्कर ने इसे बना कर अपने "मानस" में रखा और अनुकूल समय पाकर श्रीपार्वती जी को सुनाया।[1] यही नहीं, वक्ता और श्रोता के माध्यम से इस रामकथा के सञ्चरण का उल्लेख भी गोस्वामी जी ने अपने रामचरितमानस में कर दिया है।[1]

श्रुतिपरम्परा से "ज्ञान" के सञ्चरण का उल्लेख श्रीमद्भगवद्गीता एवं उपनिषदों में भी हुआ है। ब्रह्मविद्यारूपी योग की दीक्षा देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण, चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ में, अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन, मैंने इस अविनाशी योग को सर्वप्रथम विवस्वान् (सूर्य) से कहा था। उन्होंने इसे मनु से कहा और मनु ने उसी पुरातन योग को इक्ष्वाकु राजा से कहा था।[2] इस प्रकार परम्परागत इस योग को राजर्षियों ने जाना था जिसे महाभारत के समराङ्गण में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपना परम भक्त एवं सखा जानकर सुनाया था।[2]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन प्रमाणों के आधार पर विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि रामकथा श्रुतिपरम्परा से महर्षि वाल्मीकि को प्राप्त हुई और उन्होंने उसे साहित्यिक रूप देकर अमर बना दिया।

भगवान् शङ्कर के महारामायण का उल्लेख ऊपर किया गया है। महारामायण और वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अन्य प्राचीन ग्रन्थों के भी विद्यमान होने का उल्लेख मिलता है। उनमें नारदकृत "संवृत रामायण" अगस्त्यकृत "अगस्त्य रामायण", लोमशकृत "लोमश रामायण", सुतीक्ष्णकृत "मञ्जुल रामायण", अत्रिकृत "सौपथ रामायण", शरभङ्गकृत "सौहार्द रामायण" और कुछ अज्ञातनामा लेखकों की "रामायणमाला", "रामायण मणिरत्न", "शौर्य रामायण", "सुवर्चस रामायण", "देवरामायण", "श्रावण रामायण", "दुरन्त रामायण" तथा "रामायण चम्पू" का नाम उल्लेखनीय है (रामदास गौड़, हिन्दुत्व, पृष्ठ १३७–१४३)। ये सभी ग्रन्थ प्रायः इस समय अनुपलब्ध हैं। यदि ये लिपिबद्ध भी रहे हों तो भी इनके भावपक्ष तथा कलापक्ष इतने समृद्ध नहीं रहे होंगे जो जन–मानस को अपनी ओर आकृष्ट कर सकें। इसीलिये महर्षि वाल्मीकिकृत "रामायण" जैसा सम्मान वे नहीं प्राप्त कर सके और जन–मानस के बीच से लुप्तप्राय हो गये। अतः लक्ष्मण–चरित का मूल स्रोत महर्षि वाल्मीकि प्रणीत "रामायण" ही है जो महाकवि की आदि एवं अमर कृति है।

वाल्मीकि रामायण के पश्चात् अनेक ग्रन्थ संस्कृत और परवर्त्ती भारतीय भाषाओं में लिखे गये, जिनका आधार रामचरित कथा है और उनमें लक्ष्मण–चरित्र भी पाया जाता है। इस स्थल पर उन प्रमुख ग्रन्थों की सूची दे देना अनिवार्य है जिनमें रामकथा और लक्ष्मण–चरित उपलब्ध हैं। ऐसे ग्रन्थ हैं— आनन्दरामायण, महाभारत, अद्भुतरामायण, अध्यात्मरामायण, श्रीमद्भागवत, रघुवंश, उत्तररामचरित, महावीरचरित, प्रसन्नराघव, अभिषेक–नाटक, प्रतिमानाटक, हनुमन्नाटक, आश्चर्यचूड़ामणि, अनर्घराघव, कम्ब रामायण, पउमचरिउ, दसरथजातक। इन ग्रन्थों के रचयिता और रचनाकाल की जानकारी आलोच्य विषय को समझने के लिये अपेक्षित है।

वाल्मीकिरामायण— इस ग्रन्थ की रचना बुद्ध के जन्म से पहले हुई है। रामायण की रचना ५०० ई०पू० हुई थी ऐसा मानना न्यायसंगत है[३], किन्तु आज भी रामायण का तिथिसम्बन्धी प्रश्न अनिर्णीत है। त्रिपिटक के प्राचीन बौद्ध मूल सूत्र रामायण की कोई जानकारी नहीं प्रकट करते, परन्तु उनमें कुछ ऐसे गीतों के चिह्न मिलते हैं जिनमें रामकथा का गायन है। अपने ग्रन्थ "स्टडीज इन एपिक्स एण्ड पुरानाज् ऑफ इण्डिया" में विद्वत्प्रवर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ए.डी. पुलस्कर यह विचार रखते हैं कि प्राचीन गीतों के आधार पर यह सम्भव है कि वाल्मीकि द्वारा मौलिक रामायण ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में रचा गया है। फिर भी ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस कृति ने अपने वर्तमान विस्तार और कथावस्तु को द्वितीय शताब्दी के अन्त में ही प्राप्त किया होगा।[५] रामायण में मिथ्या कल्पनाएं अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा कम है, इसका कारण था कि गीत–पद्धति में आ रही रामकथा को एकता के सूत्र में बाँधकर वाल्मीकि ने महाकाव्य का रूप प्रदान कर दिया। यह एकता कोई ऐसी वस्तु नहीं थी जो केवल घटनाओं को सन्तुलित रूप से क्रमबद्ध करने मात्र से प्राप्त हो गयी हो। वाल्मीकि के हाथों से "गीतसामग्री में सर्जनात्मक परिवर्तन हुआ और वह निर्दोष कलात्मक कृति के रूप में खिल उठी। इस कविता की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो घटना कही जाती है वह केवल कोई चुटकुला नहीं, अपितु सर्जनात्मक प्रक्रिया की एक गम्भीर नीति–कथा है।"[६]

इस महाकाव्य में २४ हजार श्लोक हैं। कवि ने दाशरथि राम को काव्य का नायक चुना है। राम को इन्होंने मर्यादापुरुषोत्तम, महामानव तथा महाराजाधिराज के रूप में अपने काव्य–मन्दिर के मञ्चपीठ पर प्रतिष्ठित किया है। काव्य के नायक, क्षमा, दया, करुणा, उदारता, धीरता, वीरता, दक्षता आदि समस्त गुणों से सम्पन्न हैं। कवि ने इन्हें अपना आराध्य देव स्वीकार किया है और अपने आराध्य के सम्पूर्ण जीवनवृत्त को लेकर काव्य का रूप दिया है। अपने आराध्य के साथ साथ महाविष्णु के चतुर्थांश के अवतार लक्ष्मण के चरित्र का भी बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है। वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण का चरित्र पूर्णरूप से विकसित हुआ है जिसका बृहत् अध्ययन अन्य अध्यायों में समुचित रूप से किया जायगा। यहाँ उनके विषय में संक्षिप्त परिचय ही यथेष्ट होगा।

वाल्मीकि के अनुसार महाविष्णु के चतुर्थ अंश से लक्ष्मण का अवतार हुआ। लक्ष्मण का जन्म आश्लेषा नक्षत्र तथा कर्क लग्न में हुआ। उस समय सूर्य अपने उच्च स्थान में विराजमान थे तथा ये भाद्रपदा नामक तारा के समान कान्तिमान् थे। दाशरथि लक्ष्मण वेदों के विद्वान् और शूरवीर थे। ज्ञानवान् तथा समस्त सद्गुणों से सम्पन्न थे। लक्ष्मण राम के लिये बाहर आये हुए श्वास की तरह प्रिय थे। राम का भी लक्ष्मण से असीम प्रेम था। लक्ष्मण लक्ष्मीवर्धन थे।[७]

महाभारत– विश्वसाहित्य में महाभारत सबसे बृहत् महाकाव्य है। अपने एक लाख श्लोकों के साथ यह "इलियड" और "ओडिसी" के सम्मिलित रूप का आठ गुना है। यह प्रदर्शित करने के लिये कुछ आन्तरिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रमाण हैं कि मौलिक रूप से इस महाकाव्य में प्रायः चौबीस सहस्त्र ही श्लोक थे। इसके वर्तमान आकार का विकास चौथी शताब्दी (ईसा के पश्चात्) के आस पास पूर्ण हुआ ज्ञात होता है। परन्तु ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह प्रक्रिया प्रायः पिछली सात अथवा आठ शताब्दियों तक विस्तृत है। श्रुति–परम्परा के अनुसार इसके रचयिता व्यास थे।[४]

पं० बलदेव उपाध्याय महाभारत की रचना वाल्मीकिरामायण के बाद और बुद्ध के आविर्भाव से पूर्व अर्थात् लगभग ई०पू० ४०० में मानते हैं।[३]

महाभारत की कथा १८ सर्गों में वर्णित है। यह ग्रन्थ बहुत ही विशाल एवं भारतरत्न माना जाता है। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, दार्शनिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक आदि विषयों की इस ग्रन्थ में बहुत चर्चा की गयी है। इस ग्रन्थ के वनपर्व में मार्कण्डेय मुनि से युधिष्ठिर की जिज्ञासा पर मुनि ने अज से उत्पन्न दशरथ के पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के चरित्रों का वर्णन किया है। महाभारत में भी लक्ष्मण राम का अनुगमन करते हुए दिखलायी पड़ते हैं। वाल्मीकि के लक्ष्मण के समान ही महाभारत के लक्ष्मण सीताहरण के पश्चात् राम को सान्त्वना देते हैं। सुग्रीव, शूर्पणखा, मेघनाद आदि पात्रों के साथ लक्ष्मण का व्यवहार वाल्मीकि के अनुसार ही हुआ है। इस स्थल पर राम की कथा ७०४ श्लोकों में वर्णित है। महाभारत में प्राप्त ''कुम्भकर्ण–वध'' प्रसङ्ग शताब्दियों में विस्तृत सुविशाल एवं विविधतापूर्ण रामकथा–सागर की एक ऐसी लहर है जो सम्पूर्ण नवीन एवं भिन्न है। कुम्भकर्ण द्वारा सुग्रीव का अपहरण होता देखकर लक्ष्मण उस अतिकाय राक्षस पर वाणों का प्रहार करना प्रारम्भ कर देते हैं। परिणामतः उभय योद्धा परस्पर प्रलयङ्कर रण में व्यापृत हो जाते हैं जिसका अन्त होता है लक्ष्मण के दिव्यास्त्र से कुम्भकर्ण–वध के साथ। इस प्रकार महाभारत में स्वर्णलङ्का के तीन योद्धाओं—रावण, कुम्भकर्ण एवं मेघनाद में से दो लक्ष्मण द्वारा धराशायी होते हैं। वनपर्व के अतिरिक्त दो अन्य स्थलों पर भी रामकथा की चर्चा की गयी है—एक तो द्रोणपर्व में, दूसरी शान्तिपर्व में। पर इन दोनों स्थलों पर रामकथा के प्रसङ्ग समान हैं। द्रोणपर्व में पुत्र की मृत्यु से सञ्जय को शोक होता है। उन्हें सान्त्वना देने के लिये नारद ने सोलह राजाओं की कथा सुनायी है। ये राजा प्रतापी थे, किन्तु काल पूर्ण हो जाने पर उन सब की मृत्यु हो गयी और उनमें से कोई नहीं बचा। अतः मृत्यु अनिवार्य है, उसके लिये शोक व्यर्थ है। इन राजाओं की कथा को 'षोडश उपाख्यान' नाम से अभिहित किया गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस उपाख्यान के अन्तर्गत रामकथा का भी वर्णन है। इस कथा में राम का वनवास से लौटने और रामराज्य की महिमा का सविस्तर वर्णन है। शान्तिपर्व में युधिष्ठिर को षोडशोपाख्यान कृष्ण ने सुनाया है। इस स्थल की कथा का अंश न्यून है। महाभारत की कथा में "अरण्य पर्व" में ही लक्ष्मण–चरित्र को स्थान मिल पाया है।

(ख) बौद्ध साहित्य

त्रिपिटक के सुत्तपिटक के खुद्दकनिकाय में जातक संगृहीत हैं। इनमें महात्मा बुद्ध के पूर्वजन्म की कथाएँ दी गयी हैं। इन कथाओं के माध्यम से लोकप्रचलित कथाओं का भी समावेश हुआ है। बौद्ध मतावलम्बी महात्मा बुद्ध को राम का पुनरवतार मानते हैं।

दसरथजातक– रामकथासम्बन्धी मुख्य जातक तीन हैं– दसरथ–जातक, अनामकजातक और दसरथकथानक। इनमें दसरथजातक अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि इस पर विद्वानों ने अधिक चर्चा की है। दसरथजातक जिस जातकट्ठवण्णना में पाया जाता है, वह पाँचवीं शताब्दी की एक सिंहली भाषा की पुस्तक का पालिभाषा में अनुवाद है।

दसरथजातक के अनुसार बुद्धदेव राजा दशरथ वाराणसी में धर्मपूर्वक राज्य करते थे। उनकी ज्येष्ठ महिषी की तीन सन्तान थीं – दो पुत्र रामपण्डित और लक्ष्मण एवं एक पुत्री सीता (सीता देवी)। इस महिषी के मरने के पश्चात् राजा ने एक दूसरी रानी को ज्येष्ठा के पद पर नियुक्त किया। उससे भी एक पुत्र (भरत कुमार) उत्पन्न हुआ। राजा ने उसी अवसर पर उसको वर दिया। जब भरत की अवस्था सात वर्ष की थी, रानी ने वरस्वरूप अपने लिये राज्य मांगा, परन्तु राजा ने स्पष्टतः अस्वीकार कर दिया। परन्तु जब रानी पुनः पुनः इसके लिये अनुरोध करने लगी तब राजा ने उसके षड्यन्त्रों के भय से अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर कहा–

'यहाँ तुम्हारे रहने से अनर्थ होने की सम्भावना है, किसी अन्य राज्य या वन में जाकर रहो। मेरे मरने के बाद लौटकर राज्य पर अधिकार प्राप्त करो।' राजा ने ज्यौतिषियों से अपने मरने की अवधि जानकर कहा– "पुत्रो! बारह वर्ष बाद आकर छत्र को उठाना"। पिता की वन्दना कर दोनों भाई जाने ही वाले थे कि सीता देवी भी पिता से विदा लेकर उनके साथ हो ली, तीनों चले। तीनों के साथ और भी बहुत से लोग चल पड़े थे, उन सब को लौटाकर तीनों हिमालय पहुँच गये और वहाँ आश्रम बनाकर रहने लगे।

नौ वर्ष के बाद राजा दशरथ पुत्र–शोक से मर गये। रानी भरत को राजा बनाने में असफल रही, क्योंकि अमात्य और भरत भी इसका विरोध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते रहे। तब भरत चतुरङ्गिणी सेना लेकर राम को लाने के उद्देश्य से वन गये। उस समय राम अकेले ही थे। भरत उनसे पिता के देहान्त का सारा समाचार कहकर रोने लगे। रामपण्डित न तो शोक करते हैं, न रोते हैं–

"रामपण्डितो नेव सोचति न रोदिति।"

सायङ्काल लक्ष्मण और सीता लौटते हैं। पिता का मरण सुनकर दोनों रोने लगे। इस पर रामपण्डित ने उनको धैर्य देने के लिये अनित्यता का धर्मोपदेश किया। उसे सुनकर सबों का शोक मिट गया।

बाद में भरत के बहुत अनुरोध करने पर भी रामपण्डित ने यह कह कर वन में रहने का निश्चय प्रकट किया कि मेरे पिता ने मुझे बारह वर्ष पर्यन्त वन में रहने का आदेश दिया था। अभी मैं लौट कर उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकूँगा, अतः तीन वर्ष के बाद लौट आऊँगा।

जब भरत भी शासनाधिकार अस्वीकार कर देते हैं, तब रामपण्डित ने अपनी तृण–पादुकाएँ देकर कहा कि मेरे आने तक ये शासन करेंगी।

पादुकाएँ लेकर भरत, लक्ष्मण और सीता अन्य लोगों के साथ वाराणसी लौट आये।

भरत पादुकाओं को सिंहासनासीन करा कर पादुकाओं के आदेश से राज्यकार्य करने लगे। इन पादुकाओं की विलक्षण बात यह थी कि अन्याय होते ही ये पादुकाएँ एक दूसरे पर आघात करती थीं और न्याय होने पर वे शान्त रहती थीं।

तीन वर्ष व्यतीत होने पर रामपण्डित लौटकर १६ हजार वर्ष तक राज्य करने के बाद ही स्वर्ग चले जाते हैं।

बुद्धदेव ने कहा है कि पूर्वकाल में शुद्धोदन ही दशरथ थे महामाया (बुद्धमाता) राम की माता थी, यशोधरा (राहुल की माता) सीता थी, आनन्द भरत थे और मैं राम था।

(ग) पुराण साहित्य

महाभारत के पश्चात् वेदव्यास महर्षि ने पुराणों की रचना की। अधिकांश पुराणों में संक्षिप्त रूप से रामकथा कही गयी है। अग्निपुराण, पद्मपुराण और नृसिंहपुराण में वर्णित रामकथा के अन्तर्गत संक्षिप्तरूप से लक्ष्मण की चर्चा आती है।

अग्निपुराण– अग्निपुराण में राम–लक्ष्मण की उत्पत्ति की चर्चा वाल्मीकि रामायण और अध्यात्मरामायण के अनुसार ही वर्णित है। पुत्रेष्टि यज्ञ महाराज दशरथ द्वारा सम्पन्न होता है, जिसके पूर्ण होने पर शृङ्गी ऋषि द्वारा दशरथ को पायस प्राप्त होता है। इसी पायस का चतुर्थांश ग्रहण करने से लक्ष्मण की उत्पत्ति हुई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नृसिंहपुराण— नृसिंहपुराण में जो रामकथा दी हुई है उसमें भी पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन है। अग्निपुराण और नृसिंहपुराण की रामकथा में यह अन्तर मिलता है कि जहाँ अग्निपुराण में यज्ञ की पूर्णाहुति पर शृङ्गी ऋषि महाराज दशरथ को पायस देते हैं, वहीं नृसिंहपुराण में अग्नि स्वयं स्वर्णपात्र में हवि लेकर यज्ञ की पूर्णाहुति पर उपस्थित होते हैं और राजा को देते हैं। मुनियों ने उस हवि को लेकर मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर उसके दो भाग कर दिये और कौशल्या एवं कैकेयी को एक–एक भाग बाँट दिया। बाद में सुमित्रा के आने पर दोनों अपने–अपने भाग में से अल्पांश सुमित्रा को देती हैं। इस पुराण में ४७ अध्यायों में रामकथा कही गयी है। प्रायः सभी कथाएँ परस्पर समान हैं, किन्तु शूर्पणखा–प्रसङ्ग में एक नई बात यह कही गयी है कि लक्ष्मण के पास जाने से पूर्व शूर्पणखा राम से लक्ष्मण को देने के लिये एक पत्र माँगती है, जिसमें राम शूर्पणखा की नाक–कान काटने की बात लिख देते हैं।

पद्मपुराण— पद्मपुराण में भी पुत्रोत्पत्ति के लिये दशरथ से पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया गया है। इस पुराण की रामकथा में विशेष बात यह है कि अग्निकुण्ड से विष्णु के साथ लक्ष्मी सुवर्णपात्र में पायस लिये प्रकट होती हैं। लक्ष्मी के हाथ से सुवर्णपात्र लेकर विष्णु महाराज दशरथ को पायस देते हैं। इसी पायस का चतुर्थांश ग्रहण करने से लक्ष्मण की उत्पत्ति होती है।

लक्ष्मण के महाप्रयाण की कथा इसमें मुख्य रूप से वर्णित है। इस पुराण के लक्ष्मण का स्वरूप इस प्रकार है— सहस्रफन, करोड़ों चन्द्र सम शीतल, कौमुदीयुक्त दिव्यमाला धारण किये, दिव्यगन्धानुलिप्त हजारों नागकन्याओं से घिरे हुए, भूषणों से अलङ्कृत लक्ष्मण दिव्य विमान पर आरूढ़ हो प्रस्थान करते हैं।

श्रीमद्भागवत— श्रीमद्भागवत के रचयिता श्रीवेदव्यास हैं। इसे महापुराण की संज्ञा दी जाती है। अन्य पुराणों की भाँति इसका भी रचनाकाल विवादास्पद है। विद्वानों के मतानुसार यह ग्रन्थ भी महाभारत के पश्चात् पुराणकाल में ही रचा गया है। भागवत के श्लोकों में अद्भुत चमत्कार है जिस कारण वह सैकड़ों वर्षों से सहृदय पाठकों को अपनी शब्दमाधुरी तथा अर्थचातुरी से हठात् आकृष्ट करता आ रहा है। यह ग्रन्थ जीवन की कोमल तथा ललित भावनाओं का अक्षय स्रोत है। जीवन–सरिता को सरस मार्ग पर प्रवाहित करने वाले मानसरोवर है। श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्ध के दशम अध्याय में राम की कथा बहुत ही संक्षिप्त रूप में कही गयी है। उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुत्रेष्टि यज्ञ और चरु आदि की कोई भी चर्चा नहीं आयी है। जन्म के प्रसङ्ग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में केवल एक श्लोक राम को "साक्षात् ब्रह्ममयो हरिः" तथा देवताओं द्वारा प्रार्थित "अंशांशों से युक्त चार भाग से पुत्र के रूप में ब्रह्म ने जन्म लिया" कहा गया, अतः इसके अनुसार लक्ष्मण ब्रह्म के चतुर्थांश हैं। इसके पश्चात् इस ग्रन्थ में रामवनगमन का प्रसङ्ग आता है जो अत्यन्त संक्षिप्त है।

अध्यात्मरामायण— अध्यात्मरामायण के रचनाकाल के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ ज्ञान नहीं होता। संस्कृत साहित्य के इतिहास में भी इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों ने अपनी कोई सम्मति नहीं दी। उसी प्रकार अध्यात्मरामायण के प्रणेता के सम्बन्ध में भी निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। अधिकांश लोगों का विश्वास है कि इसके रचयिता शिवजी हैं। वाल्मीकिरामायण की भाँति अध्यात्मरामायण भी पूर्ण ख्यातिप्राप्त ग्रन्थ है। इसके अन्तर्गत साक्षात् ईश्वर को ही रामरूप में अवतरित कराया गया है। अध्यात्मरामायण के राम की कथा ऐश्वर्यगुणों से प्रधान तथा माधुर्यगुणों से गौण है। इसमें दर्शन की भी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। "राम हृदय" से इसका उपक्रम और "राम गीता" से इसका उपसंहार किया गया है।

पुत्रेष्टि यज्ञ से प्रकट चरु दशरथ को प्राप्त होता है जिससे क्षीरशायी विष्णु ही चार रूपों में अवतरित होते हैं। अर्थात् चरु के चतुर्थांश से लक्ष्मण शेष रूप में अवतरित होते हैं। वर्णनीय विशेषता यह है कि इस ग्रन्थ में लक्ष्मण और शत्रुघ्न यमज रूप से अवतरित होते हैं। इस ग्रन्थ में भी प्रारम्भ से ही लक्ष्मण की अनन्य प्रीति राम में निहित है। विश्वामित्र की कथा सामान्य रूप से कही गयी है। विशेष बात यह है कि अहल्योद्धार के पश्चात् ही गङ्गा पार करते समय इस ग्रन्थ में केवट आ जाता है, पद–प्रक्षालन किये विना राम लक्ष्मण को जनकपुर नहीं जाने देता। वनयात्रा के समय लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा को कौशल्या जी को सौंप देते हैं। पञ्चवटी में राम के निवास हेतु कुटी का निर्माण करते हैं। प्रवर्षण गिरि पर वे राम से प्रश्न करते हैं कि क्रियायोग द्वारा भगवद्– आराधन कैसे किया जा सकता है?

इसके पश्चात् विशेष महत्त्वपूर्ण कथा मेघनादवध की है, क्योंकि अध्यात्मरामायण के अनुसार रावण की अपेक्षा मेघनाद का वध अत्यन्त दुष्कर कार्य था। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत कथा प्रायः वाल्मीकि के अनुसार ही कही गयी है।

आनन्दरामायण— बहुचर्चित और आनन्दवर्धक "आनन्दरामायण" के रचयिता और रचनाकाल– दोनों अज्ञात हैं। संस्कृत साहित्य के इतिहास की प्रामाणिक पुस्तकों में भी इस पर चर्चा नहीं की गयी है। कुछ लोग सर्ग की समाप्ति पर "इति महानन्दरामायणे वाल्मीकीये" के अनुसार इसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाल्मीकिकृत मानते हैं, किन्तु लघु रामायण के अतिरिक्त वाल्मीकिकृत किसी रामायण का कोई अंश दृष्टिगोचर नहीं होता। दूसरा कारण यह है कि इसमें बहुत सी घटनाओं का उल्लेख इस ढंग से है जो वाल्मीकिरामायण से सर्वथा भिन्न है; जिनके आधार पर इसे वाल्मीकिकृत नहीं माना जा सकता। इस दिशा में विद्वानों को अन्वेषण करने की आवश्यकता है।

इस ग्रन्थ में भी लक्ष्मण की उत्पत्ति शेषनाग के अवतार के रूप में स्वीकार की गयी है और उन्हें शुभ लक्षणों से युक्त बताया गया है। भरत के मूर्च्छित होने पर लक्ष्मण मुद्गल ऋषि के आश्रम में जाकर उनके शिष्यों को विजित करके सञ्जीवनी बूटी ले आये जिससे भरत की प्राणरक्षा हुई।

वन–गमन के समय सीता और लक्ष्मण को वल्कलवस्त्र कैकेयी ने दिया। पञ्चवटी में लक्ष्मण के द्वारा शूर्पणखा का पुत्र साम्ब मारा गया। पुत्र–वियोग से शोकातुर शूर्पणखा प्रतिशोध एवं स्पृहा के वशीभूत होकर सीता–लक्ष्मण सहित राम को मारने के लिये मनोहर वेश धारण कर उनके पास जा पहुँची। राम और लक्ष्मण दोनों जब उसे पत्नी रूप में स्वीकार करने को सन्नद्ध नहीं हुए तो क्रुद्ध शूर्पणखा सीता को पकड़ने के लिये झपटी। तब राम ने शूर्पणखा को रोककर उसके हाथ में छुरे के समान एक तीक्ष्ण वाण देकर उसे यह कहते हुए पुनः लक्ष्मण के पास भेजा कि वाण देखते ही लक्ष्मण उसकी इच्छा पूरी कर देगा। रामनाम से अङ्कित उस वाण को देखते ही लक्ष्मण अपने अग्रज का अभिप्राय समझ गये और वाण को धनुष पर चढ़ाकर उस राक्षसी की ओर छोड़ दिया। वाण शूर्पणखा के नाक, कान, ओंठ तथा स्तनों को काटकर पुनः राम के तरकस में लौट गया। मेघनाद वध और युद्ध में अनेक राक्षसों का हनन कर लङ्काविजय में लक्ष्मण ने राम का पूर्ण सहयोग किया। सीता की पवित्रता सिद्ध करने के लिये सीता की आज्ञा से स्वयं लक्ष्मण चिता तैयार करते हैं।

तदनन्तर राम अयोध्या लौटकर तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़ते हैं, लक्ष्मण भी राम के साथ तीर्थयात्रा पर जाते हैं और सम्पूर्ण यात्रा में राम की सेवा करते हैं। इस रामायण के अन्त में "लक्ष्मण कवच" दिया है जिसमें लक्ष्मण की अनेक चारित्रिक विशेषताएँ प्रदर्शित की गयी हैं, जिसके आधार पर लक्ष्मण के चरित्र–विकास का निरूपण किया जा सकता है।

पुराणों के बाद संस्कृत के ललित साहित्य का युग आता है। संस्कृत साहित्य में रामकथा में परिवर्तन नहीं हुआ, अपितु रामचरित की काव्यात्मक अभिव्यक्ति हुई। प्रथम शताब्दी के पूर्व में, जब आदि काव्य अपना वर्तमान रूप प्राप्त कर चुका था, कालिदास ने रघुवंश की रचना की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थी। रघुवंश की रचना आदि काव्य की प्रसादगुणसम्पन्न रसशैली में की गयी है, जो आगे दीर्घकाल तक संस्कृत–साहित्य को प्रभावित करती रही है।[४] इसके बाद संस्कृत–साहित्य में रामचरित काव्यों की एक अटूट परम्परा चल पड़ी और काव्यों एवं नाटकों तक में रामचरित का वर्णन किया गया।

(घ) संस्कृत काव्य–साहित्य

'रघुवंश' महाकाव्य के रचनाकाल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों का भिन्न–भिन्न मत है। यह सत्य है कि इसके रचयिता कालिदास हैं, किन्तु इनके चतुर्दिक् जो कथाएँ विकसित हो गयी हैं वे इतनी असंस्कृत और अविश्वसनीय हैं कि उन पर कदाचित् ही ध्यान दिया जाना चाहिये। यद्यपि इनके काल–निर्धारण में गौरोन्स्की ने ''दी दिग्विजय ऑफ रघु'', हिलैब्राण्ट ने ''कालिदास'', पाठक ने ''जर्नल ऑफ दी बाम्बे रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, वाल्यूम १९'', बी. कीथ ने ''जर्नल ऑफ दी रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, १९०१'', विण्टरनित्ज ने ''हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर'', और थामस ने ''जर्नल ऑफ दी रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, १९१८'' में कालिदास पर विस्तारपूर्वक विचार किया है, किन्तु वे लोग भी निर्णयात्मक मत देने में असमर्थ रहे। इतना स्पष्ट है कि कालिदास लगभग १५० ई० पूर्व के बाद और ६६३ ई० पूर्व हुए थे। अधिकांश विद्वानों का मत है कि कालिदास गुप्तकाल में हुए थे और उस चन्द्रगुप्त द्वितीय (३४५–४१४ ई०) के शासनकाल के समय वर्तमान थे, जिसने ''विक्रमादित्य'' की उपाधि धारण की थी। आज उपलब्ध सामग्री के आधार पर यही सर्वाधिक तर्कसङ्गत अनुमान है। यद्यपि रघुवंश की रचना–तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों का निश्चित मत नहीं मिलता, तथापि यह सर्वमान्य है कि पुराणों के पश्चात् काव्यश्रेणी में रघुवंश का प्रथम स्थान है।

रघु के जन्म की पूर्वपीठिका से ही इस काव्य का प्रारम्भ होता है तथा दसवें सर्ग से लेकर १५वें सर्ग तक रामचरित का विस्तृत वर्णन है। इन सर्गों में विस्तृत एवं मार्मिक रूप से कालिदास ने राम के चरित्र का वर्णन किया है। दशम सर्ग में कालिदास ने हवि द्वारा विष्णु का अवतार चार भागों में कराया है। अर्थात् इस ग्रन्थ के अनुसार भी लक्ष्मण विष्णु के चतुर्थांश हैं। लक्ष्मण–जन्म के समय कवि कहता है कि मानो विद्या की अधिष्ठात्री देवी ने प्रबोध एवं विनय को जन्म दिया अर्थात् लक्ष्मण प्रबोध से और शत्रुघ्न विनय से उपमित किये गये हैं। इस महाकाव्य में भी लक्ष्मण और शत्रुघ्न के अनुज रूप में जन्म लेने की चर्चा है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत भी लक्ष्मण राम के अनन्य सेवक आज्ञापालक आदि के रूप में आते हैं और पूरी कथा अन्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ग्रन्थों के अनुसार समान्य रूप से कही गयी है। लक्ष्मण की अन्तिम कथा कालागमन के बाद होती है।

(ङ) संस्कृत नाट्य–साहित्य

वर्तमान शताब्दी के प्रथम दशक से ही, वाद–विवाद के बाद, विद्वान् लोग 'प्रतिमा' और 'अभिषेक' नाटकों को भास कवि की कृति मानने लगे हैं। किन्तु अपने ग्रन्थ "हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर" में एस. के. डे ने इस विवाद के पश्चात् भी इस मान्यता पर आपत्ति की और कोई निश्चयात्मक सम्मति देने में असमर्थ रहे। फिर भी भास के समय के सम्बन्ध में सर्वश्रेष्ठ अनुमान चतुर्थ शताब्दी है।[6] आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भास के काल को पाँचवी या चौथी सदी पूर्व माना है। कुछ ही भी हो, प्रतिमा और अभिषेक नाटक कविवर भास के हैं, भले ही वे मौलिक रूप में हमें प्राप्त न हों।

प्रतिमानाटक– "प्रतिमा नाटक" के अन्तर्गत राम के वनवास से लेकर रावण–वध तक का वर्णन किया गया है। प्राचीन काल में राजाओं के देवकुल होते थे, जिनमें मृत्यु के अनन्तर राजाओं की पत्थर की बड़ी मूर्तियाँ स्थापित की जाती थीं। इक्ष्वाकुवंश का भी ऐसा ही देवकुल था जिसमें मृत नरेशों की मूर्तियाँ स्थापित की जाती थीं। कैकेय देश से आते समय अयोध्या के समीप देवकुल में स्थापित दशरथ की प्रतिमा को देखकर भरत ने ही स्वयं इनकी मृत्यु का अनुमान कर लिया था, इसी कारण इसका नाम प्रतिमा नाटक पड़ा।

इस नाटक के प्रथम अङ्क में ही राम–राज्याभिषेक के समय लक्ष्मण का क्रोधमय रूप दिखलायी पड़ता है। वे राम से कहते हैं कि आप हाथ में धनुष–वाण धारण कर राजविघ्नकारी शत्रुओं का दमन कर दीजिये और यदि आप ऐसा न कर सकें तो मुझे आदेश दें कि मैं इस लोक को स्त्री से शून्य कर दूँगा; क्योंकि स्त्री के कारण ही आज आपकी ऐसी दशा हुई है। सप्तम अङ्क में जब राम लङ्का से लौटकर अयोध्या आते हैं तब राम के राज्याभिषेक के समय लक्ष्मण राम को बधाई देते हैं।

अभिषेकनाटक– "अभिषेक नाटक" के रचयिता भी कविवर भास ही हैं। उन्होंने इस नाटक के अन्तर्गत किष्किन्धाकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की रामकथा का वर्णन किया है। नाटक के आरम्भ में ही बालि का वध करने के पश्चात् बालि के प्रश्न का उत्तर देते हुए राम कहते हैं कि बड़े भ्राता की पत्नी के साथ छोटे भाई के संसर्ग का दोष नहीं माना जाता। इस पर बालि निरुत्तर हो जाता है। यह भास की उक्ति कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है–"न त्वेवं हि कदाचिज्ज्येष्ठस्य यवीयसो दाराभिमर्शनम्"। इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

घटना के पश्चात् सुग्रीव की प्रेरणा से वानरसमूह सीता का अन्वेषण कर राम के पास आता है और राम वानरसमूह के साथ लङ्का पर आक्रमण करते हैं। युद्धकाल में पराजित रावण सीता को धोखा देने के लिये विद्युज्जिह्व द्वारा राम-लक्ष्मण का कृत्रिम सिर मँगाकर सीता से कहता है कि "जिस पर तुम अभिमान करती हो वे दोनों मार दिये गये हैं, अतएव अब तुम मुझसे प्रेम करो।"।

इस ग्रन्थ में कवि ने एक अनोखी बात यह कही है कि मेघनाद का वध राम के द्वारा होता है। दूसरी विशेषता यह है कि सीता ने राम की विजय के लिये पातिव्रत धर्म की बाजी लगा दी।

भास के अनुसार नाटक के प्रथम अङ्क में सुग्रीव तथा बालि के प्रति नाटककार की जो दृष्टि तथा विचार मिलते हैं, वह अन्य ग्रन्थों से नवीन हैं।

बालि-सुग्रीव युद्ध के समय सुग्रीव को दिखलाते हुए लक्ष्मण राम से कहते हैं– "आप कृपया सुग्रीव को भी देखें, इसके नेत्र विकसित कमल के समान हैं। इसके हाथ में केयूर हैं। वानर होने के नाते यह अपने श्रेष्ठ भ्राता बालि का अपमान करके उसके साथ युद्ध कर रहा है। इसने सज्जनों के आचार का त्याग कर दिया है" (अभिषेक, पृष्ठ-१४)।

आहत बालि के पृथ्वी पर गिरने पर बालि के प्रति लक्ष्मण के विचार दर्शनीय हैं– "शरीर रुधिराक्त है, आँखें शिथिल तथा लाल हैं, कठोर तथा विशाल इसके हाथ हैं। अब यह यमलोक जाने की इच्छा लेकर वाणविद्ध हो कर शान्त वेग से अपने शरीर के साथ धीरे-धीरे पृथ्वी पर गिर रहा है।"

चतुर्थ अङ्क में विभीषण के आने पर राम के आदेश से लक्ष्मण ही उसे लेने जाते हैं तथा लक्ष्मण और विभीषण में वार्ता भी होती है। लक्ष्मण के कुशल-क्षेम पूछने पर विभीषण कहता है– "अरे, कुमार लक्ष्मण! कुमार, आज सकुशल हो रहा हूँ।" इसके पश्चात् वरुणदेव का पदार्पण होता है। यह इस नाटक की विशेष बात है।

इसी प्रकार की लक्ष्मण के चरित्रसम्बन्धी अन्य कई मौलिक बातें अभिषेकनाटक में पायी जाती हैं। कवि ने मौलिक धरातल पर अपनी कलात्मक दृष्टि से स्थान-स्थान पर नवीन उद्भावना व्यक्त की है। सीता के अग्नि-प्रवेश के समय हनुमान् और लक्ष्मण की वार्ता अन्य ग्रन्थों में नहीं पायी जाती। यह भी इस नाटक की विशेष बात है।

महावीरचरित– राजतरङ्गिणी में कल्हण ने महावीरचरित के रचयिता भवभूति को कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा का आश्रित माना है। इस राजा का राज्यकाल सातवीं शताब्दी की समाप्ति अथवा आठवीं का प्रथम चतुर्थांश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निश्चित किया जा सकता है। सामान्यतः माना जाता है कि भास के पश्चात् करुणरस को प्लावित करने वाले सर्वश्रेष्ठ कवि भवभूति आठवीं शताब्दी के मूर्धन्य हैं।

महावीरचरित के ६ अङ्क हैं। कवि ने राम को इस नाटक का नायक मानकर उनके चरित्र का मार्मिक चित्रण किया है। राम का चरित्र नितान्त उदात्त एवं वीरभावापन्न है। इस नाटक में वीररस की प्रधानता है। राम को आदर्श पुरुष के रूप में दिखाने के उद्देश्य से भवभूति ने राम के कितने ही दोषों को गुण रूप में प्रस्तुत किया है, जैसे— बालि रावण का सहायक बनकर राम से लड़ने आया था, इसलिये राम ने उसका वध किया।

प्रथम अङ्क में विश्वामित्र ने जनक से राम लक्ष्मण का परिचय देते हुए राम को प्रताप तथा लक्ष्मण को विक्रम से उपमित किया है।

इस नाटक में लक्ष्मण का चरित्र कई स्थलों पर विकसित हुआ है। रावण के अत्याचार देखकर वे राम को उसके वध के लिये प्रेरित करते हैं। ताड़का का वध करते हैं। सीता को निर्वासन के समय लक्ष्मण रामाज्ञा से वन में ले जाते हैं। "दशा विपाक" को प्राप्त हुए राम की परिस्थितियों का चित्रण मार्मिक ढंग से लक्ष्मण ही करते हैं। विरही राम को मानव रूप में चित्रित कराकर लक्ष्मण के द्वारा ही सान्त्वना दिलायी गयी है। लङ्का–विजय के बाद लक्ष्मण भरत को बहुत स्मरण करते हैं और भरत से मिलने के लिये वे व्याकुल हो उठते हैं।

इस प्रकार "महावीरचरित" में भवभूति ने प्रत्येक प्रसङ्ग में अपनी नवीनता प्रदर्शित की है और लक्ष्मण के चरित्र को पूर्णरूपेण विकसित होने का अवसर दिया है।

उत्तररामचरित— "उत्तररामचरित" में भवभूति ने रामायण के उत्तरार्द्ध को विकसित किया है। इस नाटक में राम के वन से प्रत्यागमन के बाद राजगद्दी से सीता–मिलन तक की सम्पूर्ण कथा कुछ काल्पनिक घटनाओं के साथ दिखलायी गयी है। सीता को वाल्मीकि के आश्रम तक छोड़ने का कार्य लक्ष्मण करते हैं। अतः इसमें लक्ष्मण का चरित्र अत्यन्त संक्षिप्त रूप में चित्रित किया गया है।

अनर्घराघव— कवि मुरारि ने 'अनर्घराघव" की रचना की। ये भवभूति के अनन्तर हुए थे। अनर्घराघव सात अङ्कों का नाटक है, जो आकार में भवभूति के "मालतीमाधव" से द्विगुण है। मुरारि के "अनर्घराघव" में पाँच हजार चालीस श्लोक हैं। सम्पूर्ण नाटक वीर एवं अद्भुत रस से युक्त गम्भीर और उदात्त भाव से सम्पन्न हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस नाटक में लक्ष्मण के चरित्र के विषय में लिखा है कि स्वयं दशरथ कहते हैं कि प्रकाश के विना चन्द्रोदय नहीं होता। इस प्रकार दशरथ राम में ही लक्ष्मण का अन्तर्भाव मानते हैं। ताड़का के वध की आज्ञा पाकर राम स्त्रीवध को शास्त्र से निषिद्ध कहते हैं, तब लक्ष्मण समझाते हैं कि ऋषियों की वाणी का शास्त्र भी अनुसरण करते हैं। अतएव आप को ऋषि की आज्ञा का पालन करना चाहिये।

कैकेयी ने अपने आज्ञापत्र के माध्यम से लक्ष्मण को आदेश दिया कि लक्ष्मण को भी राम के साथ वन जाना है। लक्ष्मण ने सहर्ष माँ की आज्ञा स्वीकार कर ली। पञ्चम अङ्क की सम्पूर्ण घटनाओं में लक्ष्मण का चरित्र विकसित हुआ है। रावण की धूर्तता, मारीच की छलना, सीता का अपहरण, जटायु की मृत्यु –आदि सभी घटनाओं में लक्ष्मण का चरित्र निखरा है।

सातवें अङ्क में पुष्पकारूढ़ श्रीराम और सीता को लक्ष्मण सभी अपरिचित स्थानों का परिचय कराते हैं। अन्त में गङ्गा–यमुना के पवित्र सङ्गम तीर्थराज प्रयाग को सङ्केत द्वारा बताकर लक्ष्मण अपना अभिनय पूर्ण करते हैं।

आश्चर्यचूड़ामणि– ह्रासोन्मुख काल के प्राचीनतम नाटकों में रामायण की कथा पर आधृत एक नाटक है आश्चर्यचूड़ामणि, जो नवम शताब्दी के केरल के नाटककार शक्तिभद्र की कृति है। लेखक ने भवभूति के महावीरचरित से राम और रावण के बीच एक सङ्घर्ष की कथा ग्रहण की है। इस नाटक में राम के अतिरिक्त अन्य पात्रों की अपेक्षा लक्ष्मण का वर्णन प्रचुर मात्रा में किया गया है। इस नाटक के समस्त कथानक में लक्ष्मण का चरित्र विशेष प्रकार से अभिव्यक्त है। यत्र–तत्र राम लक्ष्मण को समझाते हैं तथा लक्ष्मण द्वारा माता कैकेयी के प्रति उपालम्भ के वचनों से खिन्न होकर, राम कैकेयी के विषय में लक्ष्मण द्वारा किये गये सभी आरोपों का खण्डन करते हैं तथा उन्हें मातृभक्त होने का उपदेश देते हैं। यह है रामचरित्र के लोकोत्तर वैशिष्ट्य का उदाहरण जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

नाटक के प्रथम अङ्क में लक्ष्मण के ये वाक्य पठनीय हैं– "सभी जङ्गली पशुओं को धनुष की टङ्कार से दूर भगाता हूँ। वृक्षों के पत्तों से कुटी बनाता हूँ। फूलों की पङ्खुड़ियों से शय्या बनाता हूँ। बेतों से आसन का निर्माण करता हूँ और स्वभावत: मधु से गीले कमल के पराग से सम्पृक्त जल–कणों से पृथ्वी को सींचता हूँ।"

शूर्पणखा का सौन्दर्य देखकर मन की चञ्चलता को विवेक से समझाते हैं कि "यह आकृति जङ्गल के योग्य नहीं है; क्योंकि बड़ी–बड़ी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आँखोंवाले, टेढ़ी भौहों वाले, सुन्दर स्तन वाले और भ्रू–विक्षेपादि व्यापार विलास को करने वाले इस अद्भुत स्थान का उत्पत्तिस्थल या तो पृथ्वी है अथवा स्वर्ग।''

लक्ष्मण के चित्त में विकार उत्पन्न होता है और वे द्वन्द्वात्मक स्थिति में पड़ जाते हैं। जब विवेक प्रबल होता है तब अपने चित्त के विकार को लक्ष्य करके कहते हैं–''मैं राम का छोटा भाई हूँ अर्थात् आदर्शचरित राम का छोटा भाई हूँ। मुझे काम की परवशता शोभा नहीं देती। सुन्दर आकृतिवाली यह (शूर्पणखा) वसुन्धरा को स्वेच्छया सार्थक करती हो अथवा स्वर्ग को, इसके उत्पत्ति–स्थान के विषय में हमारा विकल्प शान्त हो। इस प्रकार का सङ्कल्प–विकल्प तो चञ्चल बुद्धिवाले पुरुषों को होता है।'' पुनः शूर्पणखा के आने पर और उसके प्रणय–निवेदन पर अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं– ''वल्कल मेरा वस्त्र है, वृक्ष ही मेरे घर हैं, जङ्गली कन्दमूल मेरे आहार हैं, कुश की लता मेरी शय्या है। हे बाले! अधिक क्या? जङ्गली पशुओं की तरह व्यवहार करने वाले हम तुम्हारे उपयुक्त नहीं हैं। हे सुन्दरि! कहाँ तपस्वी जन और कहाँ तपस्या का विरोधी काम! अर्थात् इन दोनों का स्वाभाविक विरोध है। अतः इन दोनों के प्रतीक हम दोनों का पारस्परिक साहचर्य सम्भव नहीं है।'' उसके अत्यधिक आग्रह पर राम–सेवा के पश्चात् अनुकूल स्थान पर मिलने का वचन देकर उससे अपना पिण्ड छुड़ाते हैं।

द्वितीय अङ्क में शूर्पणखा की कामना विफल होती है और वह लक्ष्मण को अपने बाहुपाश में आबद्ध कर आकाश में तिरोहित हो जाती है। किसी प्रकार बचकर लक्ष्मण राम के सामने आते हैं। राम के पूछने पर लज्जित होते हैं।

तृतीय अङ्क में लक्ष्मण ऋषिप्रदत्त कवच, आश्चर्य चूड़ामणि और अङ्गूठी लाते हैं। राम की आज्ञा से चूड़ामणि को सीता और कवच को लक्ष्मण धारण करते हैं और स्वयं राम अङ्गूठी पहन लेते हैं। कपट–मृग के आने पर उसे मारने के लिये लक्ष्मण ही प्रस्थान करना चाहते हैं, परन्तु राम की आज्ञा से उन्हें रुकना पड़ जाता है। राम के सहायतार्थ सीता लक्ष्मण को भी भेजना चाहती हैं, पर लक्ष्मण उन्हें अकेली छोड़कर जाना नहीं चाहते। लक्ष्मण के नकारात्मक उत्तर देने पर जानकी उनके प्रति कटु वचनों का प्रयोग करती है, जिससे आहत होकर वे अपने कान बन्द कर लेते हैं तथा तत्काल वहाँ से प्रस्थान करते हैं।

सीताहरण की बात इस नाटक में अन्यान्य ग्रन्थों से भिन्न है। लक्ष्मण के प्रस्थान के बाद व्याकुल अवस्था में सीता स्वयं वहाँ से चल पड़ती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। शूर्पणखा तो इसी ताक में थी, सीता का वेश धारण कर राम को मार्ग में ही रोक रखने के लिये उनके पास पहुँच जाती है। इधर रावण की आज्ञा से उसका सारथी लक्ष्मण का वेश बनाकर रथ चलाने लगता है और मार्ग में ही वास्तविक सीता से मिल जाता है तथा भरत पर सङ्कट आ पड़ने की बात उनसे कहता है एवं अयोध्या चलने का आग्रह करता है। सीता उसकी बात पर विश्वास कर रथ पर बैठ जाती हैं।

जब राम के सम्मुख लक्ष्मण के द्वारा कृत्रिम सीता का भेद खुलता है तब शूर्पणखा अत्यन्त भीत होती है। पर राम उसे अभय दान देते हैं और लक्ष्मण उसके द्वारा रावण के पास रण की चुनौती भेजते हैं।

सातवें अङ्क में रावण की मृत्यु के अनन्तर जब सीता राम के समीप आती हैं, तब राम लोकापवाद के भय से कहते हैं कि लक्ष्मण तुम जानकी को दूर चले जाने को कहो; क्योंकि सीता वर्तमान शरीर से अयोध्या नहीं चल सकतीं। इस पर सीता परीक्षा देने के लिये अग्नि–प्रवेश करती हैं। राम के आदेश से लक्ष्मण भी अग्नि–प्रवेश के समय वहाँ पहुँच जाते हैं। अग्निदेव सीता को लेकर प्रकट होते हैं। लक्ष्मण यह सब राम को बतलाते हैं जिससे वे प्रसन्न होते हैं। "चूड़ामणि" नाटक में ऐसी ही अनेक कथाएँ सन्निविष्ट हैं जिनके सन्दर्भ में लक्ष्मण का चरित्र उद्घाटित हुआ है।

प्रसन्नराघव— प्रसन्नराघव नाटक के रचयिता जयदेव हैं। ये "गीतगोविन्द" वाले जयदेव से भिन्न दूसरे जयदेव हैं।[३] नाटककार जयदेव का समय तेरहवीं शताब्दी है जिसे कृष्ण चैतन्य ने भी स्वीकार किया है।[४] "प्रसन्नराघव" नाटक में सात अङ्क हैं। नाटककार का बालकाण्ड ही अधिकांश कथा से अत्यधिक प्रेम जान पड़ता है; क्योंकि चार अङ्कों में बालकाण्ड का ही विस्तार किया गया है। इस ग्रन्थ में नाटक–तत्त्व की अपेक्षा कवित्व–तत्त्व की प्रधानता है। कवि में कोमल कवि कला की पूर्ण अभिव्यक्ति की क्षमता है। वाटिका–वृत्तान्त कवि की अपनी निजी और बहुत सफल कल्पना है। लक्ष्मण और परशुराम का संवाद भी बहुत ही स्वाभाविक और संवाद योजना की दृष्टि से सफल है।

इस नाटक का छठा अङ्क महत्त्वपूर्ण है, जिसमें सीताहरण के बाद राम का विलाप बहुत ही हृदयविदारक है। राम के मुख से प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन देखकर कवि के प्रकृति–प्रेम का आभास मिलता है।

इस नाटक में लक्ष्मण का चरित्र कई स्थलों पर चित्रित किया गया है। वाटिका में राम–सीता का मिलन एक ऐसा स्थल है जहाँ लक्ष्मण के चरित्र में पूर्ण उदात्तता परिलक्षित होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चतुर्थ अङ्क में परशुराम–लक्ष्मणसंवाद है जहाँ लक्ष्मण के चरित्र को विकसित होने का पूर्ण अवसर मिला है और साथ ही उसे सफलता भी मिली है। वन–गमन के अवसर पर कौशल्या के मुख से लक्ष्मण की कोमलता, सहजता, सरलता आदि की चर्चा राम के समक्ष हुई है। वन–मार्ग में राम जय, सीता विभूति और लक्ष्मण सुख–धाम की भाँति सुशोभित हो रहे हैं। लक्ष्मण की चारित्रिक विशेषता यहाँ भी परिलक्षित हो रही है। सीता–वियोग से राम जब दिग्भ्रमित होते हैं तब लक्ष्मण ही उन्हें सान्त्वना देते हैं। युद्धस्थल में रावण द्वारा चलायी हुई शक्ति को लक्ष्मण ही अपने वक्षःस्थल पर रोकते हैं। ''आनन्दरामायण'' में भी यही बात कही गयी है, किन्तु मानस में ''सम्मुख राम सहेऊ सोई सेला'' कहा गया है।

इस प्रकार ''प्रसन्नराघव'' में कवि ने विविध प्रसङ्गों में लक्ष्मण के चरित्र का बहुत ही मार्मिक एवं कलात्मक ढंग से निरूपण किया है। राम के चरणों में लक्ष्मण की अनन्य निष्ठा तथा राम के लिये लक्ष्मण का बलिदान एवं उसके प्रति राम का आत्मीय स्नेह द्रष्टव्य है।

उन्मत्तराघव– इस एकाङ्की नाटक के रचनाकाल के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य के किसी इतिहास ग्रन्थ में उल्लेख नहीं किया गया है। इस एकाङ्की नाटक के रचयिता का नाम कवि भास्कर है। वाल्मीकि की कथा को आधार बनाकर लिखे गये इस एकांकी में राम के उन्माद, प्रलाप, विरह आदि का वर्णन कवि ने वृहद् रूप से किया है। किन्तु राम का देवत्त्व तथा उदात्त चरित्र का निरूपण मर्यादित रूप से नहीं हुआ है। राम के साथ–साथ लक्ष्मण का चरित्र भी कवि ने नाटकीय धरातल पर स्थित होकर व्यक्त किया है, किन्तु चरित्र–विकास की दृष्टि से लक्ष्मण के चरित्र–विकास में भी कवि को सफलता नहीं मिली है। केवल विरही राम के साथ कथोपकथन के रूप में लक्ष्मण का चरित्र दृष्टिगोचर होता है। इस ग्रन्थ में लक्ष्मण का चरित्र गौण रखा गया है।

हनुमन्नाटक–नाट्यकला की दृष्टि से ''हनुमन्नाटक'' या ''महानाटक'' निम्नतर श्रेणी में आता है। इस नाटक के चार पाठ उपलब्ध हैं। बंगला–पाठ को, जो १० अङ्कों में और ७२० श्लोकों में है, मधुसूदन ने व्यवस्थित किया। इसका नाम महानाटक है। पश्चिम भारतीय पाठ का ग्यारहवीं या बारहवीं शताब्दी के दामोदर मिश्र ने सङ्कलन किया है, जो १४ अङ्कों और ५४८ श्लोकों में है और उसका नाम ''हनुमन्नाटक'' है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में यह किंवदन्ति है कि हनुमान् ने इसकी रचना की थी।

कुछ भी हो, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ''हनुमन्नाटक''

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का तुलसीकृत "मानस" पर बहुत प्रभाव है। मानस में इसके बहुत से श्लोकों का भावानुवाद मिलता है। धनुषयज्ञ प्रसङ्ग में ऐसे अनेक संवाद हैं जो उक्त नाटक से लेकर रामचरितमानस में संशोधन के साथ अनूदित कर रख दिये गये हैं।

इस नाटक में लक्ष्मण को अत्यन्त शूरवीर दरसाया गया है और उनके बल पर राम को अडिग विश्वास है। समय पाकर लक्ष्मण ने अपने बल का प्रदर्शन भी किया है। पञ्चवटी में सीता एवं राम की सेवा में तत्पर और सीता की रक्षा में पूर्ण सावधान दरसाया गया है। लक्ष्मण का चरित्र वहाँ अधिक विकसित हुआ है, जिस स्थल पर राम सीता के आभूषणों की लक्ष्मण से पुष्टि कराते हैं। सात तालों को अपनी शक्ति के बल पर लक्ष्मण सीधा करके उन्हें एक ही बाण से बेधने योग्य बना देते हैं।

लक्ष्मण, मूर्च्छितावस्था के बाद चेतना प्राप्त होने पर इतना कहते हैं कि इसका वास्तविक दुःख तो श्रीराम को हुआ होगा; मैं तो केवल मूर्च्छित था। यहाँ लक्ष्मण के भ्रातृत्व–प्रेम की उदात्तता दरशायी गयी है।

"मेघनाद वध" लक्ष्मण का साहसिक कार्य है जिसे विस्तार रूप से नाटक में दरसाया गया है। यहाँ भी उन्हें शेषावतार ही स्वीकार किया गया है।

(च) जैन साहित्य

बौद्ध साहित्य की भाँति जैन–साहित्य में भी राम–कथा प्रचुर मात्रा में मिलती है। जैनाचार्यों द्वारा रचित रामकथा अत्यन्त विस्तृत है। जैनधर्म में राम–कथा के पात्रों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उनकी गणना जैनधर्म त्रिषष्टिशलाकापुरुषों में की गयी है।

जैन साहित्य की अपनी मान्यताएँ हैं। इनके अनुसार राक्षस और वानर मनुष्य थे। ये विद्याधर वंश के थे। उन्हें कामरूपत्व और आकाशगामिनी विद्याएँ सिद्ध थी। रामचरितसम्बन्धी असम्भव वृत्तान्तों को सम्भव रूप में चित्रित करने का प्रयास जैन राम–साहित्य की एक अन्यतम विशेषता है। राम–कथाएं संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा अन्य भाषाओं में मिलती हैं।

पउमचरिउ–जैन साहित्य में विमलसूरि और गुणभद्राचार्य की दो भिन्न प्रकार की रामकथा क्रमशः श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। विमलसूरि–परम्परा की प्रसिद्ध रचना उन्हीं की "पउमचरिउ" है।

जैन कवि विमलसूरि ने सर्वप्रथम लोकप्रिय राम–कथा को प्राकृत में "पउमचरिउ" नामक अपनी कृति में ही ग्रहण किया, जिसके अवलोकन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से पता चलता है कि कवि का प्रयास राम–कथा को जैनी साँचे में ढालने का है। अपनी रचना से सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है–

पंचेव वासमया दुसमाये तीसबरस संजुता।
वीरे सिद्धिमुवगए तओ निबद्धं इमं चरियं।। (छन्द–१०३)

इसके अनुसार "पउमचरिउ" की रचना वीर निर्वाण संवत् ५३० अथवा विक्रमी संवत् ६०ई० में हुई थी। इसका संस्कृत रूपान्तरण रविषेणाचार्य ने पद्मचरित के नाम से ६६०ई० में प्रस्तुत किया, तथा दौलतराम ने सं० १८१८ में किया था। यद्यपि इसकी रचना के विषय में रचनाकार ने स्वयं ही कह दिया है। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर भी इसकी रचना–तिथि संवत् ६० ठहरती है। कुछ विद्वान् ऐसे भी है जिन्होंने इसकी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करके इसकी रचना–तिथि चौथी शताब्दी बतलायी है। याकोबी साहब द्वारा सम्पादित होकर यह ग्रन्थ भावनगर से सन् १९१४ ई० में प्रकाशित भी हो चुका है।

अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद किये जाने से यह सिद्ध होता है कि यह काव्य बहुत अधिक लोकप्रिय रहा होगा।

"पउमचरिउ" में दशरथ की चार रानियों–कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा और सुप्रभा– से चार पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का जन्म बताया गया है। लक्ष्मण स्वभाव से ही रामभक्त थे। अतः राम के वन–गमन के समय उनके मन में रामविरोधियों के प्रति भयङ्कर तूफान उठता है। प्रतिक्रियास्वरूप उनके संलापों में उनका वीरत्व एवं ओज प्रदर्शित होता है। राम के साथ वन जाते समय लक्ष्मण सिंहोदर को पराजित करते हैं और उसके द्वारा दी जाने वाली ३००कन्याओं को लौटने तक की प्रतीक्षा के लिये आज्ञा प्रदान करते हैं। वन में महीधर की कन्या वनमाला से विवाह करते हैं। महीधर यह जानकर लक्ष्मण के शौर्य और वीरता की प्रशंसा करता है। अरिदमन की ५ शक्तियों को सहकर सकुशल रहने वाले लक्ष्मण उसकी कन्या जितपद्मा के साथ विवाह करते हैं।

लक्ष्मण के शौर्य की प्रशंसा के अतिरिक्त कवि ने लक्ष्मण को शास्त्रीय सङ्गीत के ज्ञाता के रूप में भी चित्रित किया है। जङ्गल में शूर्पणखा के पुत्र शम्बूक का वध लक्ष्मण द्वारा होता है। राम की आज्ञा पाकर भी लक्ष्मण शूर्पणखा को उत्तम स्त्रियों के योग्य गुणों से हीन बताकर उससे विवाह करने में अपनी असहमति प्रकट करते हैं। प्रणयवञ्चिता शूर्पणखा अपने पति, खर से लक्ष्मण पर बलात्कार करने का आरोप लगाती है। परिणामस्वरूप खर उनपर हमला कर देता है और राम की आज्ञा लेकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अकेले लक्ष्मण उसकी मायावी सेना का संहार करते हैं। खर की मृत्यु के बाद त्रिशिरा को भी मृत्यु के पास पहुँचा देते हैं। त्रिशिरा की मृत्यु के बाद देवता आकाश से फूलों की वर्षा करते हैं।

इसी युद्ध के मध्य रावण सीता का हरण कर ले जाता है, किन्तु लक्ष्मण के युद्ध को देखकर उनकी प्रशंसा करता है। रावण को लक्ष्मण की शक्ति पर विश्वास हो जाता है और वह कह उठता है कि लक्ष्मण मुझे भी नष्ट कर देगा। रावण का दूत लक्ष्मण से रावण की प्रशंसा करता है तो लक्ष्मण की भुजाएं फड़क उठती हैं और वे उत्तेजित हो उठते हैं। हठात् उनके मुख से निकल जाता है कि मैं रावण क्या उसके सभी सहायक राजाओं का भी वध करने का सामर्थ्य रखता हूँ।

"पउमचरिउ" के तृतीय भाग (छंद २–१०) में राम की आज्ञा से लक्ष्मण सुग्रीव के प्रासाद में जाते हैं, वहाँ कवि ने लक्ष्मण के चरित्र–निरूपण में अपनी विशेष प्रतिभा का परिचय दिया है। सुग्रीव और प्रतिहारी के संवाद दर्शनीय हैं।

प्रतिहारी सुग्रीव को लक्ष्मण का सन्देश देता है कि लक्ष्मण आये हैं। इस पर सुग्रीव लक्ष्मण के स्थान पर लक्षण का विश्लेषण करता है कि कौन लक्षण? जो विशुद्ध लक्ष्य होता है, वह लक्षण जों गेय निबद्ध होता है, वह लक्षण जो प्राकृत काव्य में होता है, वह लक्षण जो व्याकरण में होता है, वह लक्षण जो छन्दःशास्त्र में निर्दिष्ट है, वह लक्षण जो भरत की गोष्ठी में काम आता है, वह लक्षण जो स्त्री–पुरुष के अङ्गों में होता है, वह लक्षण जो अश्वों और गजों में होता है। इस पर प्रतिहारी निवेदन करता है कि देव! इनमें से वह एक लक्षण भी नहीं है, प्रत्युत वह लक्ष्मण है जो दशरथ का पुत्र है। वह लक्ष्मण है जो शत्रु सेना सा संहारक है। वह लक्ष्मण है जो निशाचर का नाशक है। वह लक्ष्मण है जो जम्बुककुमार का वधकर्ता है। वह लक्ष्मण है जो राम का सगा भाई है। वह लक्ष्मण है जो सीता का देवर है। वह लक्ष्मण है जो श्रेष्ठ मनुष्यों में श्रेष्ठ है। वह लक्ष्मण है जो खर दूषण को पराजित करने वाला है। वह लक्ष्मण है जो सुमित्रा से उत्पन्न दशरथ का पुत्र है और राम के साथ वनवास के लिये आया है।

लक्ष्मण का नाम सुनकर सुग्रीव दौड़कर लक्ष्मण के पास आते हैं और अपनी धृष्टता के लिये विनयपूर्वक लक्ष्मण से क्षमा माँगते हैं। "देव! मैं बहुत ही पापात्मा, धृष्ट और अकृतज्ञ हूँ। तारा के नेत्र–बाणों से जर्जर मैं आपका नाम तक भूल गया। अहो! परोपकारी परमेश्वर एक बार मुझे क्षमा कर दीजिये"। सुग्रीव के इतने वचनों से स्निग्ध विनय सुनकर लक्ष्मण ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसे आश्वासन एवं अभय प्रदान किया। इस भाँति हम देखते हैं कि जैन रामचरित ''पउमचरिउ'' में भी लक्ष्मण के चरित्र का पूर्ण विकास हुआ है।

(छ) कम्ब रामायण :

अर्वाचीन भारतीय भाषाओं में उपलब्ध रामायणों में सबसे प्राचीन ''कम्ब रामायण'' है जिसकी रचना तमिल भाषा में, कविचक्रवर्ती ''कम्बन'' द्वारा हुई थी। दक्षिण भारत में प्रचलित चारों द्राविड़ भाषाओं—तमिल, तेलगु, कन्नड़ और मलयालम में तमिल सर्वाधिक प्राचीन है। तमिल साहित्य ३०००वर्ष पुराना माना जाता है। तीसरी शती ईसा पूर्व से छठी शती ईसवी तक तमिल भूमि पर बौद्ध तथा जैन धर्मों का विस्तार रहा। ईसवी छठी शताब्दी में यहाँ ''भक्ति आन्दोलन'' का प्रवाह प्रबल होने लगा, जिसके परिणामस्वरूप अनेक वैष्णव तथा शैव सन्त उत्पन्न हुए। इसी भक्ति–आन्दोलन से उत्पन्न ''आलवार'' सन्तों ने, जो वैष्णव थे, अपने आराध्य भगवान् विष्णु की प्रशंसा में अनेक मधुर गीतों की रचना की। कम्बन भी वैष्णव थे। उसके काव्य में आलवार सन्तों की श्रीसूक्तियों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है। प्रचलित जनश्रुति के आधार पर, कुछ विद्वान् यह विचार रखते हैं कि कम्बन का जन्म ईसा की नवीं शती में हुआ था, पर अधिकांश विद्वान् कम्बन को बारहवीं शताब्दी का मानते हैं। दस हजार से अधिक पद्यों से युक्त कम्ब रामायण, तमिल साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृति के रूप में प्रसिद्ध है एवं साथ ही इसे महाकाव्य होने का भी गौरव प्राप्त है। प्रसिद्ध विद्वान् बी०बी०एस० अय्यर कृत ''कम्ब रामायण—ए स्टडी'' ग्रन्थ में इसकी तुलना ''इलियड'', ''पैराडाइस लास्ट'' एवं महाभारत से की गयी है तथा इसे वाल्मीकि रामायण से भी अधिक सुन्दर कहा गया है। कम्बन ने बालकाण्ड से युद्धकाण्ड तक छह काण्डों की रचना की। वर्तमान उपलब्ध ग्रन्थ में एक उत्तरकाण्ड भी मिलता है जो कम्बन के समसामयिक एक अन्य कवि ''ओट्टक्कूतन'' द्वारा रचित माना जाता है।

कम्ब रामायण का आधार वाल्मीकीय रामायण है, पर कम्बन की लेखनी ने एक सर्जनात्मक साहित्यिक की औचित्यपूर्ण स्वतन्त्रता का भरपूर उपयोग किया है। मूल कथा के विकास के साथ–साथ विभिन्न घटनाओं के वर्णन में प्रभूत परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। विशेषकर प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में एवं संवादों के माध्यम से विभिन्न चरित्रों के मनोदशाओं को व्यक्त करने में कम्बन की मौलिकता असन्दिग्ध है। सर्वोपरि, सम्पूर्ण काव्य में दाक्षिणात्य संस्कृति की ओज एवं माधुर्य से युक्त एक लयबद्ध गमक की गूँज कम्ब रामायण को अवश्य एक स्वतन्त्र पहचान देती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाल्मीकि के राम लोकोत्तर आदर्श पुरुष होने के साथ साथ महामानव भी हैं, पर कम्बन ने अपनी समयुगीन भावनाओं के अनुसार राम को परमात्मा के अवतार के रूप में जनमानस के सम्मुख उपस्थित किया। ग्रन्थ के प्रारम्भिक पद्यों में परमात्मा का वर्णन शैवों के आराध्य "शिव–स्वरूप" एवं वैष्णवों के आराध्य "विष्णु–स्वरूप" से भी परे केवल सृष्टिकर्ता के रूप में किया गया है। वस्तुतः इस तमिल रामायण को किसी सम्प्रदायविशेष के लिये सीमित नहीं किया जा सकता। भक्ति–आन्दोलन ने दाक्षिणात्यप्रदेश में दो मुख्य संस्कृतियों को जन्म दिया—शैव और वैष्णव। कम्बन के ग्रन्थ की सम्पूर्ण परिधि में अनेक स्थलों पर राम की विष्णु से तथा लक्ष्मण की शिव से उपमिति (समानता) की गयी। कदाचित् कवि के हृदय में दोनों सम्प्रदायों की आत्मिक अभिन्नता को दरसाना रहा हो।

ग्रन्थारम्भ मङ्गलाचरण के पद्यों से होता है, तदनन्तर बालकाण्ड के "शुभावतार पटल" में महाराज दशरथ के चारों पुत्रों के जन्मवृत्तान्त, नामकरण एवं चारों कुमारों के श्रीवृद्धि आदि प्रसङ्ग मिलते हैं जो मूल भाव में तो वाल्मीकि के अनुगामी हैं, पर उन प्रसङ्गों से जुड़ी कई घटनाओं तथा उनके सङ्घटन में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। लक्ष्मण के जन्म लेते ही वञ्चक लोग मिट जाते हैं; देवता तर जाते हैं एवं भूमिदेवी करोड़ों कष्टों से मुक्त हो जाती है। इसी अजेय और महाबली ज्योतिर्मय पुत्र का नाम लक्ष्मण रखा जाता है। कम्ब के राम और लक्ष्मण बाल्यावस्था से ही सुरम्य प्राकृतिक शोभायुक्त स्थलों पर एक साथ विचरण करते हुए पाये जाते हैं। द्वैत सत्ता की एकात्मक अभिव्यक्ति के आदर्श दोनों कुमार एक दूसरे के साथ इस प्रकार घुलमिल गये थे जैसे "ताने के साथ भरनी का सूत मिल गया हो।"[1] अपावन राक्षसी कृत्यों से महर्षि विश्वामित्र की पावन यज्ञभूमि के रक्षार्थ भी दोनों कुमार एक साथ सन्नद्ध पाये जाते हैं। यज्ञ–स्थल के सन्निकट राक्षसों को देखते ही "क्रोध से अग्निज्वाला बिखेरते हुए लक्ष्मण आँखों के कगारों से गगन की ओर तथा अपने धनुष की ओर" देखते हैं एवं राम को प्रणाम करते हुए उनके समक्ष राक्षसों को टुकड़ों में छिन्न–विच्छिन्न करने का अपना दृढ़ निश्चय निवेदन करते हैं।

अयोध्याकाण्ड का "नगर निष्क्रमण पटल", लक्ष्मण की ओजस्विता, पौरुष, शौर्य एवं सर्वोपरि राम के प्रति उनका निर्द्वन्द्व एवं परिपूर्ण समर्पण का एक उज्ज्वल दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। लक्ष्मण को जब ज्ञात हुआ कि कैकेयी

---

1. *कम्ब रामायण शीर्षक के अधीन, उलटे अर्ध–विराम चिह्नों के अन्तर्गत आने वाले सभी उद्धरण श्री न०वी० राजगोपालन कृत, "कम्ब रामायण" के हिन्दी अनुवाद से लिये गये हैं।*

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की अविवेकी महत्त्वाकांक्षा राम के निर्वासन का कारण है तो उनका क्रोध ''प्रलयकाल की अग्नि के समान उमड़ उठा और उनके मुख से व्यङ्ग्योक्ति निकल पड़ी—''यह कैकेयी सिंहशावक (राम) के लिये रखे हुए स्वादयुक्त मांस (राज्य) को विकृत नयनों से युक्त क्षुद्र श्वान (भरत) को देना चाहती है।'' क्रुद्ध लक्ष्मण के धनुष्टङ्कार का भीमनिनाद सुनकर त्रिलोकवासी प्राणी भय से काँप उठे। रणवेश में सुसज्जित लक्ष्मण गरजकर बोल पड़े—''युद्ध में आये हुए सब वीरों को मिटाकर मैं भूमि का भार कम करूँगा। उनकी देहों से धरती को पाट दूँगा। मेरे प्रभु (राम) को ही मैं विजयप्रद मुकुट पहनाऊँगा। जो मुझे रोकनेवाला हो आवे, रोके!'' अपने प्रभु राम को लक्ष्मण न केवल अयोध्या का राज्य, अपितु ''चतुर्दश भुवन'' की रक्षा का भार सौंपना चाहते हैं और इसके लिये वे ''देव, मर्त्य, विद्याधर नाग'' यहाँ तक कि सृष्टि–स्थिति–प्रलय के स्वामी ''त्रिदेव'' का सामना करने के लिये भी सन्नद्ध हैं। इस प्रकार क्रुद्ध लक्ष्मण को जब धैर्य के प्रतीक राम समझाते हैं कि यदि ''माता–पिता ही अपनी इच्छा के विरुद्ध कार्य करने वाले हों तो उन पर क्रोध'' कैसे किया जा सकता है, सौमित्र की अभिव्यक्ति राम में उनकी संशय–रहित समर्पण का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। ''हे उदार! मेरे उत्तम पिता आप हैं। स्वामी आप हैं। जननी आप हैं। मेरे लिये अन्य कोई नहीं है''—कहते हुए लक्ष्मण अपने क्रोध को शान्त कर लेते हैं।

वनगमन के समय जननी सुमित्रा यह निर्देश देती हैं कि राम के पीछे–पीछे लक्ष्मण उनका भाई होकर नहीं, अपितु दास होकर जावे। अयोध्याकाण्ड के ''गङ्गा पटल'' में कवि ने सुमित्रात्मज की इस भूमिका का अत्यन्त रोचक प्रसङ्ग प्रस्तुत किया है। वन में रात्रि–विश्रामरत राम और सीता को लक्ष्मण सदा सजग एवं प्रहरी के रूप में ''प्रभात होने तक अपलक खड़े रहकर पहरा देते हैं।'' अपने सम्मुख निद्रा–सुन्दरी के प्रकट होने पर उसे आदेश देते हैं कि जब तक ''सुन्दर प्राचीरों से घिरी अयोध्या में'' उनका प्रत्यावर्तन न हो, तब तक निद्रादेवी उनके पास न आवें। कम्ब के लक्ष्मण जलयान–निर्माण, गृह–निर्माण आदि कलाओं के ज्ञाता एक कुशल कारीगर के रूप में वाल्मीकि के लक्ष्मण को पीछे छोड़ देते हैं। ''वनप्रवेश पटल'' में यमुना पार करते समय यह अनुगत सेवक ''झुकने वाले बाँसों को काटकर मणे नामक लता से उनको बाँधकर एक नाव'' का निर्माण करते हैं एवं फिर राम और सीता के उस पर आसीन होने के बाद ''दोनों हाथों से नाव को ढकेलते हुए तैरकर उस बड़ी नदी के पार'' पहुँचाते हैं। चित्रकूट में राम और सीता के रहने के लिये लक्ष्मण ने किस प्रकार बाँस के छोटे–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छोटे टुकड़ों, सीधे एवं लम्बे बाँसों, शहतीर जैसे बाँसों, शालवृक्ष के पत्तों, मुञ्जलताओं एवं मिट्टी आदि से सुन्दर गृह का निर्माण किया, उसका विशद वर्णन ''चित्रकूट पटल'' में मिलता है।

अरण्यकाण्ड के अन्तर्गत ''शूर्पणखा पटल'' में रामानुज शूर्पणखा के केशों को पकड़कर अपनी उज्ज्वल तलवार से उसके नाक एवं कान के साथ–साथ स्तनों का भी छेदन करते हैं। इस घटना के बाद मारीच द्वारा स्वर्णमृग के मायावी मोहजाल का विस्तार, राम द्वारा स्वर्णमृग का पीछा करना, सीता के अविवेकी शब्दों के साथ लक्ष्मण के विवेक का सामना और अन्ततः इस स्वर्ण–मरीचिका के परिणास्वरूप लङ्केश रावण द्वारा सीता–अपहरण आदि प्रसङ्ग, कहीं–कहीं कुछ भिन्नता के साथ, वाल्मीकि के अनुगामी हैं। सीता को लङ्का ले जाने के लिये रावण एक अनोखी विधि अपनाता है। वह सीता का स्पर्श करने में भय का अनुभव करता है। अतः पृथ्वी खोदकर भूमिभाग के साथ–साथ वह सीता को ले जाता है। इसी काण्ड के अन्तर्गत ''अयोमुखी पटल'' में राक्षसी अयोमुखी का वृत्तान्त आता है। वाल्मीकि अयोमुखी की तरह वह ''बीभत्सां रौद्रदर्शनाम्'' नहीं है और न ही जुगुप्सा उत्पन्नकारी राक्षसी कृत्यों को उसके साथ जोड़ते हुए उसे विकराल बनाने का प्रयास किया गया है। वाल्मीकि में दोनों भाइयों की भेंट एक साथ इस राक्षसी से होती है और लक्ष्मण को देखते ही वह अपनी स्थूल कामवासना को उनके द्वारा तृप्त करवाना चाहती है। पर कम्बन में सीता–विरह से व्याकुल, तृष्णार्त राम के लिये जल–अनुसन्धान में निकले एकाकी लक्ष्मण से अयोमुखी का साक्षात्कार वन में हुआ और वह ''नेत्रों में कामवेदना से अश्रु भरकर लक्ष्मण को घूरती हुई खड़ी रही।'' कम्बन की अयोमुखी में काम के साथ प्रेम भी है। लक्ष्मण के क्रोध को शान्त कर उन्हें प्रसन्न–चित्त देखने के लिये वह तो गङ्गा की जलधारा को भी उस वन में उपस्थित कर देने की बात कहती है। फिर भी सौमित्र को अनुकूल न पाकर मोहन–मन्त्र के प्रयोग से उन्हें अचेत कर वह ''आकाश मार्ग से इस प्रकार चली जैसे चन्द्रमण्डल के साथ मेघ जा रहा हो।'' इस घटना का पटाक्षेप लक्ष्मण द्वारा अयोमुखी के नाक, कान और स्तन छेद के साथ होता है।

किष्किन्धाकाण्ड का प्रारम्भिक वर्ण्य विषय राम–सुग्रीव–मैत्रीप्रसङ्ग में कम्ब के लक्ष्मण को जब अग्रज बालि के प्रति अनुज सुग्रीव का अभिप्राय ज्ञात होता है तो उनका हृदय अशान्त हो उठता है। उन्हें सुग्रीव प्रत्यय–योग्य पात्र नहीं लगता। लक्ष्मण का अकपट वीर हृदय यह मानने को सन्नद्ध नहीं होता कि भाई के प्राणहरण को उत्सुक सुग्रीव का आचरण कभी निन्दारहित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या धर्मानुसारी हो सकता है। एक अनुज जो अपने अग्रज के प्रति परिपूर्ण रूप से निश्छल समर्पित हो, उसके लिये ऐसा सोचना नितान्त स्वाभाविक है। यहाँ कम्बन ने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के धरातल पर लक्ष्मण की मानसिकता का जो चित्रण प्रस्तुत किया है, वह अवश्य उनकी कृति को उल्लेखनीय बना देता है। लक्ष्मण तो राम के प्रति इस प्रकार समर्पित हैं कि उनका समस्त अन्तर्द्वन्द्व, समस्त उग्रता, राम के सङ्केतमात्र से समाप्त हो जाती है। कदाचित् इसी भाव को स्पष्ट करने के लिये कम्बन ने "शासन पटल" में राम के निर्देश का पालन करते हुए लक्ष्मण के हाथों सुग्रीव के राज्याभिषेक सम्पन्न होने का वर्णन दिया है। जबकि वाल्मीकीय रामायण में यह कार्य मन्त्रवेत्ता श्रेष्ठ ब्राह्मणों एवं श्रेष्ठ वानरों द्वारा हुआ है।

युद्धकाण्ड में भी कई प्रसङ्गों के अंश–विशेष में वाल्मीकीय रामायण से कम्ब रामायण में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। राम और लक्ष्मण विशाल वानर–सेना समेत लङ्का के सन्निकट पहुँच चुके हैं, केवल समुद्र के व्यवधान ने उनकी गति को सामयिक रूप से स्तब्ध रखा है, इन समाचारों से चिन्तित रावण द्वारा आहूत राजसभा में कम्बन के विभीषण नृसिंहावतार की कथा सुनाते हुए लङ्केश्वर से आग्रह करते हैं कि वह नारायणावतार राम से युद्ध न करें। यह प्रसङ्ग तृतीय सर्ग में वर्णित है। इसी प्रकार सर्ग १६ में राक्षसों द्वारा अपने मायावी सामर्थ्यों के चामत्कारिक प्रयोग एवं प्रदर्शन से सम्बद्ध एक विवरण मिलता है जिसमें लङ्कापति की अभीष्ट सिद्धि के लिये एक राक्षस मिथिलाधीश जनक के रूप में सीता के समक्ष उपस्थित होकर उनसे रावण को पति–रूप में स्वीकार कर लेने का आग्रह करता है। इसी प्रकरण में अन्यत्र उपलब्ध "माया सीता–वध" प्रसङ्ग का भी उल्लेख किया जा सकता है।

युद्धकाण्ड में शौर्य और पराक्रम से समन्वित लक्ष्मण के व्यक्तित्व का समुचित विकास हुआ है। यहाँ लक्ष्मण के चिरअनुगामी अनुजस्वरूप के साथ–साथ उनके प्रतापी व्यक्तित्व का वर्णन इतनी सहज विधि से किया गया है कि प्रबुद्ध पाठक के रसास्वादन में किञ्चित् भी व्यवधान उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि यह तमिल कवि लक्ष्मण में प्रलय के अधीश्वर शिव का अवलोकन करते हैं, अतः उनके रामानुज रौद्ररूप में रुद्रवत् अमोघ एवं भयङ्कर प्रतीत होते हैं। "कुम्भकर्ण वध" पटल में विश्रवस् ऋषि के पुत्रों में सर्वाधिक भयङ्कर कुम्भकर्ण द्वारा लक्ष्मण की तुलना भगवान् शिव के साथ किया जाना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सोये हुए कुम्भकर्ण को जगाने के बाद, स्वर्णलङ्का पर आयी विपत्ति के विषय में बताकर जब रावण उसे राम–लक्ष्मण एवं उन की वानरी सेना के विरुद्ध रणयात्रा के लिये प्रेरित करने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगा तो युद्ध के लिये प्रस्थान से पूर्व उस अतिकाय राक्षस ने रावण को उसके अनुचित कृत्यों के लिये उपालम्भ दिया और इसी प्रसङ्ग में कम्बन के कुम्भकर्ण को जैसे उस महासंग्राम की भविष्यलिपि सामने दिखायी पड़ी और उसने घोषणा की—"इन्द्र को युद्ध में जीतने वाला इन्द्रजित भी राम के भाई लक्ष्मण के हाथ की मन्त्रशक्ति से युक्त वाण से मरेगा, यह निश्चित है।" वाल्मीकि एवं कम्बन दोनों के कुम्भकर्ण रणक्षेत्र में लक्ष्मण के शौर्य–प्रदर्शन की प्रशंसासूचक शब्दों में स्वीकृति देते हैं, पर वाल्मीकि में कुम्भकर्ण जहाँ लक्ष्मण को बालक समझकर राम से युद्ध करने के लिये आगे बढ़ जाता है, वहीं कम्बन में वह राक्षस यह कहते हुए कि "त्रिपुर दाह करने वाले शिवजी तथा यही (लक्ष्मण ही) युद्ध में परस्पर एक दूसरे के समान हो सकते हैं", लक्ष्मण को अपने समकक्ष योद्धा मानकर उसके साथ रण में व्यापृत होता है। "इन्द्रजित–वध पटल" में सौमित्रि और "इन्द्रजित" मेघनाद के मध्य युद्ध–विवरण, उपमेय एवं उपमानों की भिन्नता को छोड़कर प्रायः परम्परानुसारी ही है। केवल इन्द्रजित के प्रति प्राणान्तकारी अमोघ शर–निक्षेप के पूर्व उस शर को रामानुज जिस "सङ्कल्प–वाक्य" से अभिमन्त्रित करते हैं, वह वाल्मीकि एवं कम्बन में भिन्न–भिन्न हैं। वाल्मीकि के लक्ष्मण ने "धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ तथा पुरुषार्थ में अद्वितीय वीर राम" को स्मरण कर मेघनाद पर ऐन्द्रास्त्र का निक्षेप किया।[1] पर कम्बन के लक्ष्मण ने यह कहकर कि "यदि राम वेदों द्वारा अन्वेषणपूर्वक जानने योग्य परम पुरुष हैं और वेदज्ञ ब्राह्मणों के लिये वन्द्य धर्मस्वरूप हैं, तो यह मेरा वाण चन्द्रकला जैसे दाँतों से युक्त इस राक्षस को मार दे", अपनी समग्र शक्ति लगाकर एक वाण फेंका और सृष्टि को स्थिर किया।"

बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक, कम्बन ने अपने "रामायण" काव्य के छह मञ्जिलवाले सुरम्य सौध के निर्माण में उसकी नींव की स्थापना वाल्मीकि–मनीषा की तपोभूमि में ही की, जिन मुख्य एवं पार्श्व घटनाओं के बहु–आयामी स्तम्भों पर यह विशाल अट्टालिका स्थित है उसकी रचना में उन्हीं उपकरणों का उपयोग किया, जिनका प्रयोग कभी तमसा के तट पर क्रौञ्च–वध से विषादाच्छन्न मन्त्रद्रष्टा ऋषिकवि ने किया था। पर इसके बाद उन स्तम्भों को घेरकर असङ्ख्य कक्ष, अलिन्द, प्राङ्गण, प्रकोष्ठ, प्रमोद–कक्ष आदि के निर्माण में, विभिन्न विचारधाराओं के मलय–समीर के अबाध सञ्चालन हेतु वातायनों एवं द्वारों के संयोजन में प्रत्येक कक्ष एवं अलिन्दों के अलङ्करण में इस तमिल "कविचक्रवर्ती" ने अपनी मौलिक रचना–प्रतिभा का ही परिचय दिया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुलसी–साहित्य में लक्ष्मण–चरित्र

गोस्वामी तुलसीदास ने समस्त १२ ग्रन्थों की रचना की है जो इस प्रकार है– (१) रामलला नहछू, (२) रामाज्ञा प्रश्न, (३) जानकीमङ्गल, (४) रामचरितमानस, (५) पार्वतीमङ्गल, (६) गीतावली, (७) कृष्णगीतावली, (८) विनयपत्रिका, (९) बरवै रामायण, (१०) दोहावली, (११) कवितावली तथा (१२) वैराग्यसन्दीपनी। इनमें से रामलला नहछू, रामाज्ञा प्रश्न, जानकीमङ्गल, रामचरितमानस, गीतावली, विनयपत्रिका, कवितावली और बरवै रामायण इन आठ ग्रन्थों में लक्ष्मण–चरित्र का वर्णन है। अतः इन्हीं ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय देना अपेक्षित है, जिनके आधार पर लक्ष्मण–चरित्र का समुचित मूल्याङ्कन हो सकता है।

१. रामलला नहछू : डॉ० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार रामलला नहछू तुलसीदास की प्रथम रचना है, जिसकी रचना कवि ने सं० १६१६ वि० में की है।[५] सद्गुरुशरण अवस्थी ने भी अपने ग्रन्थ "तुलसी के चार दल" में अनेक तर्कों द्वारा विश्लेषण करते हुए इसे सं० १६१६ की तुलसीदास की प्रथम रचना स्वीकार की है। रामनरेश त्रिपाठी ने उक्त तर्कों के आधार पर इसे सं० १६१५ के आस–पास की रचना मानी है।[७] डॉ० रामकुमार वर्मा ने सभी मतों का सामञ्जस्य करके इसे तुलसीदास की कृति के रूप में मान्यता दी है।[८] इन निष्कर्षों के आधार पर इसे तुलसीदास की प्रथम कृति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

यह ग्रन्थ सोहर छन्द में लिखा गया है जिसमें २० छन्द हैं। ग्रन्थ में शारदा, गणेश, गौरी की वन्दना करके उसकी फलश्रुति का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ में रामलला नहछू के समय दशरथ के घर होने वाले मङ्गलाचारों का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में लक्ष्मण के लिये एक पद आया है, जिसमें लक्ष्मण और राम के रंग को लेकर नाइन कौशल्या से उपहास करती है, उसके अनुसार राम साँवरे और लक्ष्मण गोरे क्यों हैं, क्या कौशल्या से कोई भूल हुई है?

> काहे रामजिऊ साँवर, लछिमन गोर हो,
> कीदहँ रानि कौसलहि परिगा भोर हो,
> राम अहहिं दसरथ कैं, लछिमन आन कै हो,
> भरत सत्रुहन भाई तौ श्री रघुनाथ कै हो।

(छंद १२)

इस प्रकार "रामलला नहछू" में लक्ष्मण को लेकर केवल उपहास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किया गया है। इस रचना में कोई चरित्रगत बात नहीं है, इसलिये इस ग्रन्थ में लक्ष्मण का चरित्र खोजना भी व्यर्थ है।

२. रामाज्ञा प्रश्न : प्रस्तुत कृति में कवि स्वतः उसकी रचनातिथि इस प्रकार देता हुआ दिखायी देता है—

सगुन सत्य ससि नयन गुन, अवधि अधिक नय बान।
होइ सुफल सुभ जासु जस, प्रीति प्रतीति समान।। *(७/७/३)*

कविजन प्रयुक्त साङ्केतिक शब्दावली के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना–तिथि सं० १६२१ ठहरती है।[६] रामनरेश त्रिपाठी ने इसकी तिथि सं० १६२० के आसपास मानी है।[७]

प्रस्तुत ग्रन्थ में सात सर्ग हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि ने शारदा, गणेश, सूर्य, बृहस्पति, उमा और शङ्कर, लक्ष्मी और नारायण को हृदय में धारण कर कार्य करने का आदेश दिया है। ज्यौतिषशास्त्र के अनुसार सगुन विचार की बात इस ग्रन्थ में आदि से अन्त तक कही गयी है। इस ग्रन्थ का मूल उद्देश्य वैराग्य का प्रतिपादन, शकुनविचार तथा राम–अनुग्रह द्वारा शान्ति का निर्देश है।

ग्रन्थ में लक्ष्मण की चरित्रसम्बन्धी विशेषताओं में इतनी ही बातें मिलती हैं कि लक्ष्मण का 'सुमिरण' और 'दर्शन' करने से क्या फल होता है! कवि की मान्यतानुसार लक्ष्मण के प्रिय दर्शन को नेत्र पाने का फल समझना चाहिये। उनके दर्शन से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों फलों की प्राप्ति होती है—

ललित लाहु लोने लषनु, लोयन लाहु निहारि।
सुत ललाम लालहु ललित, लेहु ललकि फल चारि।। *(४/४/३)*

लक्ष्मण जी के चरणों का स्मरण परम मङ्गलकारी है। यह मङ्गलकारी शकुन है। इसे पा लेने पर विजय, ऐश्वर्य, कीर्ति, कुशलता तथा अभीष्ट फल की प्राप्ति भरपूर होती है—

लछिमन पद पंकज सुमिरि, सगुन सुमङ्गल पाइ।
जय बिभूति कीरति कुसल, अभिमत लाभु अघाइ।। *(५/४/६)*

३. जानकीमङ्गल : "जानकी मङ्गल" की तिथि का निर्देश कवि ने स्वतः नहीं किया है, और न उसमें किसी ऐसी घटना का समावेश हुआ जिससे इसके काल का निर्धारण किया जा सके। यह निश्चित है कि यह रामाज्ञाप्रश्न के बाद और रामचरितमानस से पहले की रचना है। अतः इसे हम सं० १६२१ और सं० १६३९ के मध्य की रचना निःसंकोच मान सकते हैं। शैली को दृष्टि में रखते हुए डॉ० श्यामसुन्दरदास ने इसे सं० १६४३ की रचना माना है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ–८४)। सद्गुरुशरण अवस्थी भी इसी विचार के पोषक हैं। रामनरेश त्रिपाठी ने पहले इसी का समर्थन किया था, परन्तु बाद में उन्होंने अपना विचार बदल दिया और रचनाकाल लगभग सं० १६२४ मानने लगे।[१] डॉ० रामकुमार वर्मा अभी तक जानकीमङ्गल को सं० १६४३ की कृति ही मान रहे हैं।[२] डॉ० माताप्रसाद गुप्त इसे "रामाज्ञाप्रश्न" और "रामचरितमानस" के बीच की रचना बतलाते हुए इसकी रचनातिथि सं० १६२६ अनुमित करते हैं।[३]

प्रस्तुत ग्रन्थ में राम के साथ लक्ष्मण का शारीरिक सौन्दर्य, रङ्गभूमि–प्रसङ्ग में, बहुत ही मनोरम रूप से चित्रित किया गया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में राम के सौन्दर्य के साथ ही लक्ष्मण की सुन्दरता का वर्णन भी मिलता है। रामचरितमानस में तुलसीदास ने "मोरपङ्ख सिर सोहत नीके" लिखा है, पर जानकीमङ्गल में शब्दावली–परिवर्तन मात्र से "काकपच्छ सिर सुभग सरोरुह लोचन" (छंद ५६) कर दिया और भाव तद्वत् ही रहने दिया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ मे राम के साथ लक्ष्मण के नखशिख की सुन्दर उपमाओं के साथ वर्णन किया गया है। जनक की रङ्गशाला में दोनों भाइयों का सौन्दर्य द्रष्टव्य है–

दुहुं दिसि राजकुमार बिराजत मुनिवर।
नील पीत पाथोज बीच जनु दिनकर।। *(छन्द–७०)*

ग्रन्थ में राम और लक्ष्मण का सर्वत्र साहचर्य दिखता है, अतः राम के चरित्र में लक्ष्मण का चरित्र बाह्य और आन्तरिक –दोनों रूपों में सन्निहित हो गया है।

४. रामचरितमानस : अन्तःसाक्ष्य के आधार पर रामचरितमानस का रचनाकाल सं० १६३१, चैत्र शुक्ल नवमी, मङ्गलवार है, क्योंकि ग्रन्थ के आरम्भ में ही तुलसीदास ने लिख दिया है–

संवत सोरह सै इकतीसा। करूँ कथा हरिपद धरि सीसा।।
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा।।
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं।।[१]

रामचरितमानस के राम लोकनायक होने के साथ–साथ परात्पर ब्रह्म भी हैं–

जेहि कारण अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयेउ कोसलपुर भूपा।।[२]

जिन्होंने भक्त–प्रेम के वशीभूत होकर नररूप धारण किया–

व्यापक ब्रह्म निरंजन निरगुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या कें गोद[३]।।

उनके कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मणसकल जगत् आधार, शेष तथा विराट्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूप में अवतरित हुए हैं, जिन्होंने शिशु–अवस्था से श्रीराम के चरणों में रति स्वीकार कर अपने सम्पूर्ण जीवन को राम–हितार्थ अर्पित कर दिया। रामकीर्तिरूपी पताका ऊपर उठाने के लिये जिन्होंने अपने यश को दण्ड–स्वरूप बनाया।[१] लक्ष्मण का सम्पूर्ण व्यक्तित्व रामप्रेम से आप्लावित है। लक्ष्मण–मीन के लिये राम जलराशि हैं, लक्ष्मण–चकोर के लिये राम चन्द्र हैं। लक्ष्मण–चातक के लिये राम श्यामघन हैं।[१] प्रेमागार लक्ष्मण स्वयं निर्धन तुलसी के धनी और धन हैं। इसीलिये कवि ने–

"सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिन्धु सौमित्रि गुनाकर।।[१]"

कहकर लक्ष्मण की वन्दना की है।

५. गीतावली : गीतिपरम्परा तथा गीति काव्य के सभी गुणों से युक्त तुलसीकृत गीतावली समस्त रसों का पीयूष–स्रोत है। गीति–रचना होने के कारण इसमें मधुर भावों को ही प्रश्रय मिला है और ब्रजभाषा के मधुर कोष में शृङ्गार और वात्सल्य की मधुर धाराएँ प्रवाहित हुई हैं जिनके अन्तर्गत करुण, हास्य और शान्त रसों का मिश्रण भी है।

गीतावली की रचना कब हुई? इस सम्बन्ध में कवि ने स्वतः कुछ नहीं कहा है। गीतावली में कहीं यह सङ्केत भी नहीं मिलता कि जिसके आधार पर उसके रचनाकाल का ठीक–ठीक निर्धारण किया जा सके। अतः उनकी पूर्व कृतियों का विश्लेषण करने पर गीतावली का रचनाकाल संवत् १६५८ के लगभग स्थिर किया जा सकता है, जो सत्यता के सबसे समीप होगा।[६]

इस काव्यग्रन्थ में कवि ने राम और लक्ष्मण के बाह्य व्यक्तित्व का चित्रण सामूहिक रूप से किया है। मार्ग में राम–लक्ष्मण की शोभा अश्विनी–कुमारद्वय की भाँति की है। त्रिभुवन का समस्त सौन्दर्य इन्हीं दोनों मूर्तियों में समाविष्ट कराने का श्रेय तुलसीदास को ही है। धनुषयज्ञ–प्रसङ्ग में लक्ष्मण के शौर्य के साथ साथ मर्यादित चरित्र का भी दिग्दर्शन होता है। विवाह के प्रसङ्ग पर उर्मिला और लक्ष्मण के सौन्दर्य का वर्णन तुलसीदास की मर्यादित कला का एक अनुपम उदाहरण है–

जैसे ललित लषन लाल लोने।
तैसिये ललित उरमिला, परसपर लखत सुलोचन–कोने।
सुषमासार सिंगारसार करि कनक रचे हैं तिहि सोने।
रूप प्रेम–परमिति न परत कहि, बिथकि रही मति मौने।
सोभा सील सनेह सोहावने, समउ केलिगृह गौने।
देखि तियनि के नयन सफल भए, तुलसीदास हू के होने।। *(पद–१०५)*

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसी भाँति वन–गमन, सीताहरण, जटायु, शबरी आदि प्रसङ्गों में लक्ष्मण–चरित्र का विकास अपने पूर्ण वैभव पर दृष्टिगोचर होता है। लक्ष्मण–शक्ति पर किये गये राम के मार्मिक विलापों में लक्ष्मण के शील, स्वभाव, सौन्दर्य और शौर्य का वर्णन मिल जाता है। सीता–परित्याग के समय लक्ष्मण की आन्तरिक मनोदशा का स्वाभाविक चित्रण उनके चरित्र के उदात्तत्व का द्योतक है।

६. विनयपत्रिका : "विनयपत्रिका" के रचनाकाल के सम्बन्ध में निर्णायक मत देना बहुत ही कठिन है; क्योंकि इसमें कहीं कोई सङ्केत नहीं मिलता है और न विनयपत्रिका की कोई हस्तलिखित प्रति ही प्राप्त हो सकी, जिसके आधार पर उसकी रचना–तिथि का निर्णायक मत प्रस्तुत किया जा सके। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इसे सं० १६५८ की रचना मानना अधिक तर्कसङ्गत समझा है।[६] रामनरेश त्रिपाठी ने इसे सं० १६२० और १६३० के बीच की रचना मानी है; क्योंकि इन दिनों गोस्वामी जी काशी में बल्लभकुल के गोसाइयों के सम्पर्क में रहते थे।[७] परन्तु यह निराधार सा लगता है। अतः गुप्त जी की बातें इस सम्बन्ध में अधिक मान्य हैं।

विनयपत्रिका में प्रधानतः तुलसीदास की मनोवृत्ति का ही निरूपण है। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सम्बन्धी विभिन्न विचारों का स्पष्ट प्रतिपादन है। विनयपत्रिका को लक्ष्मण द्वारा राम के समक्ष प्रस्तुत कराकर गोस्वामी जी ने लक्ष्मण की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। लक्ष्मण के बाह्य तथा आन्तरिक चरित्रों के स्पष्टीकरण के लिये मानस की भाँति वन्दना–प्रसङ्ग में लक्ष्मण का दो पदों में विनय किया है, जिनमें कवि ने लक्ष्मण के माधुर्य तथा ओज से सम्बद्ध सभी गुणों का बहुत ही कलात्मक ढंग से वर्णन किया है, जो लक्ष्मण के आन्तरिक तथा बाह्य चरित्रों के उद्घाटन के लिये शिलास्तम्भ हैं। लक्ष्मण भक्तहितकारी, सङ्कटहारक, कल्याणकारक, दीनदयालु, प्रणपालक, साहसी और शेषनाग के अवतार हैं। परमसौन्दर्ययुक्त, रामगुणगायक, प्रेम से सहज प्राप्त और रङ्क को रामभक्ति रूपी धन देने वाले धनी हैं।[८] लक्ष्मण अनन्त, छह ऐश्वर्यों से युक्त, भूभारहारी, सर्वशक्तिमान्, शत्रुविनाशक, राम और भरत के प्रिय, दिव्य वस्त्राभूषणयुक्त, सुन्दरता के सागर हैं। विषय रस से विरक्त, कपट से रहित, अनन्त बल के आदि–स्थान, श्रीराम के हित के लिये अपनी सुन्दर भुजाओं का सेतु बनाने वाले हैं।[९]

इन विशेषणों में लक्ष्मण के चरित्र–वैशिष्ट्य की सुन्दरतम झाँकी है।

७. कवितावली : कवितावली की रचना–तिथि पर विचार करते हुए डॉ० श्यामसुन्दर दास ने लिखा है (गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ ८३) कि कवितावली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का कथाभाग और सीतावटविषयक कवित्त सं० १६२८ और १६३१ के बीच के हैं और शेषांश सं० १६६९ के बाद के। रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार सम्पूर्ण छन्दों की रचना सं० १६१० से सं० १६७१ तक हुई है।[९] डॉ० रामकुमार वर्मा ने अनेक तर्कों की कसौटी पर कस कर कवितावली की रचना–तिथि सं० १६६९ मानी है।

कवितावली एक ऐसी रचना है जिसमें गोस्वामी जी ने गीतावली की भाँति माधुर्य के साथ–साथ ओजःपूर्ण परुषता का भी वर्णन किया है। इसकी कथा में लक्ष्मण के चरित्र–विकास के कुछ ही प्रसङ्ग आते हैं; परन्तु उन प्रसङ्गों में लक्ष्मण का शीलनिरूपण बहुत ही शास्त्रीय ढंग से किया गया है। राम के साथ वनगमन और मार्ग में उनकी सेवा तो उनके जीवन का उद्देश्य ही था, परन्तु उनकी चारित्रिक कोमलता और हृदय की सरलता वहाँ अधिक मुखरित हो उठती हैं, जहाँ सीता जी उन्हें 'लरिका' (व्यञ्जना भाव से सहज प्रकृति वाला अबोध) कहकर सम्बोधित करती हैं—

जल को गये लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पिय!
छांह घरीक ह्वै ठाढ़े। *(अयो० छन्द–१२)*

लक्ष्मण के सौन्दर्य का नख–शिख वर्णन वनमार्ग में पथिक के रूप में गोस्वामी जी ने किया है। यहाँ उनकी सुन्दरता का वर्णन राम और सीता के साथ किया गया है। उनका शारीरिक सौन्दर्य देखकर स्वर्ण का रंग भी फीका पड़ जाता है। ऐसी है उनके शरीर की सुषमा! उन्हीं के शब्द हैं— ''गोरे को बरन देखे सोनों न सलोनो लागे'' (अयो० छन्द–१६)। उनकी कोमलता की अधिकता के कारण उनके पैदल चलने से पृथ्वी सकुचा रही थी; क्योंकि पृथ्वी कठोर थी और बालकों की कोमलता फूल से भी अधिक थी।

लक्ष्मण के शौर्य का दिग्दर्शन लङ्काकाण्ड में आता है। लङ्काकाण्ड में उनका शौर्यप्रदर्शन और युद्धकौशल दरसाया गया है जो दर्शनीय है—

अङ्ग अङ्ग दलित फूले किंसुक से
हटे भट लाखन लखन जातुधान के।।
(लङ्का, छन्द–४८)

इस प्रकार कवितावली के अन्तर्गत लक्ष्मण–चरित्र के स्थल बहुत कम आये हैं, जो हैं भी वे अपने में पूर्ण और अति सुन्दर हैं।

८. बरवै रामायण : बरवै रामायण की कई हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख ''खोज रिपोर्टों'' में हुआ है। इनमें से जिनके उद्धरण मिलते हैं, उनके पाठों को मुद्रित पाठ से मिलाते हैं तो उन्हें प्रायः भिन्न पाते हैं।[६] इसके रचनाकाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के विषय में कोई निश्चित समय निर्धारित नहीं किया जा सका है, परन्तु इतनी बात गम्भीरता और विश्वास के साथ कही जा सकती है कि यह तुलसीदास की अन्तिम रचना है। इसलिये यह निश्चित रूप सें सं० १६६९ के बाद और सं० १६७८ के पहले की कृति है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में ७९ बरवा छन्दों में सम्पूर्ण मानस की संक्षिप्त कथा दी गयी है। यह ग्रन्थ सात काण्डों में विभक्त है, परन्तु उसमें कुछ काण्ड अत्यन्त ही लघु हैं।

अयोध्याकाण्ड में राम लक्ष्मण की नर–नारायण, हरि–हर, वसन्त और काम के रूप में तुलना की गयी है। महर्षि वाल्मीकि राम को दो भुजा वाले विष्णु तथा लक्ष्मण को एक मुख वाला शेष कहते हैं। इस स्थल पर लक्ष्मण को शेषावतार माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त ''बरवै'' में राम–लक्ष्मण–चरित्र का कहीं विकास नहीं हुआ है। कथा की संक्षिप्तता के साथ ही लक्ष्मण का चरित्र भी संक्षिप्त ही है।

तुलसी–परवर्ती साहित्य में लक्ष्मण–चरित्र

तुलसी–पूर्व और तुलसी साहित्य में रामचरित के समानान्तर लक्ष्मण चरित्र का विकास हम देख चुके हैं। तुलसी–उत्तर काल में हिन्दी साहित्य में रामचरित को लेकर दो महाकाव्य लिखे गये। उनमें से प्रथम है केशवदास की कृति *रामचन्द्रिका* और दूसरा ग्रन्थ है बाबू मैथिलीशरण गुप्त का *साकेत*। इन दोनों महाकाव्यों में रामचरित का विशद वर्णन किया गया है। जिनमें लक्ष्मण–चरित का विकास हुआ है। यद्यपि लक्ष्मण–चरित के मूल स्रोतों में उक्त महाकाव्यों का विश्लेषण आवश्यक नहीं है, किन्तु इन दोनों कवियों ने लक्ष्मण– चरित्र में कुछ अपनी मौलिकता दरसायी है। अतः लक्ष्मण के चरित्र के सर्वतोमुखी मूल्याङ्कन के लिये इन महाकाव्यों के माध्यम से दोनों कवियों की मौलिकता को भी देखना अत्यन्त आवश्यक है। लक्ष्मण–चरित्र का पूर्ण विवेचन तो तभी हो सकता है; जब लक्ष्मण–चरित्र सम्बन्धी सभी ग्रन्थों का आलोड़न किया जाय। सम्पूर्ण रामचरित के मन्थन से प्राप्त लक्ष्मण चरित्र का समुचित विवेचन करने पर ही लक्ष्मण के चरित्र का यथार्थ मूल्याङ्कन सम्भव है।

१. रामचन्द्रिका : रामचरितमानस की रचना के लगभग पच्चीस वर्ष बाद आचार्य केशवदास ने रामकथा को लेकर रामचन्द्रिका की रचना की। आचार्यत्व की दृष्टि से यह हिन्दी साहित्य का अद्भुत ग्रन्थ है। अलङ्कारों एवं छन्दों की विविधता से ऐसा आभास होता है कि रामचरित के माध्यम से केशवदास ने अपने पाण्डित्य का ही प्रदर्शन किया है। रामचन्द्रिका पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, वाल्मीकिरामायण, कादम्बरी तथा रामचरितमानस का प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक तथा कादम्बरी का तो कहीं–कहीं स्पष्ट अनुवाद दिखलायी पड़ता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के नाटकों का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि इनके संवादों में नाटकीयता अधिक है।

लक्ष्मण के विषय में केशवदास ने कहा है कि लक्ष्मण का अवतार दानव–दल के संहार हेतु हुआ।[१०] इसके बाद महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ–रक्षार्थ दोनों भाई अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित होकर एक साथ प्रस्थान करते हैं। लक्ष्मण के चरित्र की नवीनता जनकपुर में दरसायी गयी है। जनकपुर में जनक को देखकर लक्ष्मण को आश्चर्य होता है कि राजा जग में जोग करते हैं, उनका अभ्युदय कैसे होता है? क्योंकि दोनों कर्म परस्पर विरोधी हैं—

जन राजवंत। जग जोगवंत।
तिनको उदोत। केहि भाँति होत। (५/२१)

विवाह के बाद मार्ग में परशुराम मिलते हैं और सभी भाइयों को मारने के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं जिसमें लक्ष्मण के लिये "बान की वायु उड़ाय के लच्छन, लच्छ करो अरिहा समरत्थहिं" (७/१२) कहते हैं। अर्थात् वाणों की वायु से लक्ष्मण को उड़ाकर, समर्थ शत्रुघ्न को लक्ष्य बनाऊँगा। परशुराम के वाक्यों को सुनकर लक्ष्मण बहुत उच्चकोटि का व्यङ्ग्य करते हैं। "तुम ब्राह्मण हो, अतः अवध्य हो, नहीं तो समझ लेते, जाओ तुम्हारा दोष क्षमा करते हैं!" (७/३२)। ब्राह्मण का सम्मान करने पर जब क्रोधी ब्राह्मण का क्रोध शान्त नहीं हुआ तब लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठे और परशुराम को मारने के लिये उद्यत हो गये—

क्षत्रिय ह्वै गुरु लोगन को प्रतिपाल करैं।
भुलिहु तो तिनके गुन औगुन जी न धरैं।
तौ हमको गुरु दोष नहीं अब एक रती।
जो अपनी जननी तुम ही सुख पाय हती।। (७/३५)

वनगमन के समय राम लक्ष्मण को साथ न चलने के लिये समझाते हैं, परन्तु लक्ष्मण कहते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है कि स्वामी जङ्गल में रहें और सेवक घर में निवास करे! यह कथन लक्ष्मण का राम के प्रति असीम प्रेम प्रदर्शित करता है। लक्ष्मण सदा राम को स्वामी और अपने को सेवक समझकर उनकी सेवा करते हैं। वनमार्ग में राम सिद्ध योगी और लक्ष्मण साधन तथा सीता सिद्धि की भाँति सुशोभित होते हैं।[१०] लक्ष्मण सिद्धि प्राप्त करने के साधन हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्ष्मण को जीव से उपमित किया गया है "जीव जीवेश के बीच माया मनो" (११/७)। यहाँ केशव पर स्पष्ट तुलसीदास का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। तुलसीदास ने भी "ब्रह्म जीव बिच माया जैसे" कहा है। इसी भाँति सीता और राम के साथ लक्ष्मण रति और कामदेव के साथ वसन्त की भाँति जाने गये। केशवदास ने लक्ष्मण को आनन्ददायक के रूप में चित्रित किया है—"देखे रघुनायक, सीय सहायक, मनहुं मदन रति मधु जानै" (११/७)। मानस में भी "जन मधु मदन मध्य रति लसई"[९] कहा गया है। इस प्रकार मानस का यत्र–तत्र प्रभाव केशवदास पर स्पष्ट दिखलायी पड़ता है।

पञ्चवटी में राम द्वारा मृग–वध के समय सीता द्वारा लक्ष्मण के प्रति कटूक्तियों को सुनकर लक्ष्मण का हृदय विदीर्ण हो गया और सीता को वे अपने बाण से खींची गयी रेखा के मध्य छोड़कर चले गये।[१०] यह रेखा ऐसी थी जिसको कोई भी प्राणी लाँघ नहीं सकता था।

रामचन्द्रिका के लक्ष्मण राम के प्रिय भक्त और वीर हैं। लङ्का में युद्ध के लिये प्रस्थान करते समय एक चतुर सेनापति की भाँति सेना का सञ्चालन स्वयं करते हैं। शरणागत–रक्षा का अद्भुत उदाहरण लक्ष्मण के चरित्र में युद्धस्थल में परिलक्षित होता है। विभीषण को मारने के लिये रावण द्वारा चलायी गयी अमोघ शक्ति को शरणागत की रक्षा के लिये हँसते–हँसते अपनी छाती पर रोक लिया—

दूसरि ब्रह्म की शक्ति अमोघ चलावत ही हाइ हाइ भई है।
राख्यो भले शरणागत लक्ष्मण फूलि के फूलसी ओड़ि लई है।।
(१७/४०)

अमोघ शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण को मूर्च्छा आ गयी। मूर्च्छित लक्ष्मण को सम्पूर्ण बलपूर्वक प्रयास करने पर भी रावण उठा सकने में असमर्थ रहा। चेतना लौट आने पर राम ने उन्हें हृदय से लगा लिया और रोने लगे तथा उन्हें भाई, पुत्र और सहायक कह कर उनकी प्रशंसा की।

रामचन्द्रिका में इसी भाँति कई स्थल आये हैं, जहाँ लक्ष्मण की भक्ति, शील, स्वभाव, वीरता, ज्ञान, दर्शन आदि से सम्बद्ध चरित्र पूर्णरूपेण विकसित हुआ है। युद्धस्थल में वीरता, मकराक्ष–वध के समय शौर्य, भरद्वाज के आश्रम में इनकी कोमल मधुर भावना[११] और ज्ञान–भक्ति–वैराग्य सम्बन्धी ज्ञान, सीता का परित्याग करने की राम की आज्ञा पर इनकी भावुकता[१२], हृदय की कोमलता और भ्रातृप्रेम दरसाया गया है। इन सम्पूर्ण गुणों से युक्त एक सफल नायक तथा उच्चादर्शों से युक्त भाई के रूप में लक्ष्मण का चरित्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऐसी विशिष्टताओं से युक्त है जो समाज के लिये एक आदर्श प्रेरणा तथा प्राचीन भारतीय संयुक्त परिवारों में अनुज के कर्त्तव्यों का द्योतक है।

२. साकेत : रामचरितमानस के बाद हिन्दी–साहित्य में रामकथा को लेकर लिखा गया यह दूसरा महाकाव्य है जिसकी रचना सन् १९२९ में स्व० मैथिलीशरण गुप्त ने की है, जिसमें प्राचीन कथा को लेकर नयी राजनैतिक और सामाजिक विचारधारा का समावेश कर दिया गया है। यही कारण है कि साकेत के सभी पात्रों में नवीनता एवं मनोवैज्ञानिकता का समावेश हुआ है। राम का स्वरूप, ब्रह्म का न होकर एक आदर्श और उच्च गुणों से युक्त मर्यादापुरुषोत्तम का है। इसलिये उनके चरित्र दैवी गुण और मानवीय त्रुटियों से युक्त हैं। प्रायः सभी पात्रों पर यही बात चरितार्थ होती है, अतएव लक्ष्मण के चरित्र को भी इसी मनोवैज्ञानिक पद्धति से देखना होगा।

गुप्त जी के लक्ष्मण का चरित्र वाल्मीकि और तुलसीदास के चरित्र से विस्तृत और भिन्न है। प्रायः लक्ष्मण में वे सभी गुण हैं जो राम में पाये जाते हैं। उनका चरित्र दृढ़ता, उदारता, क्षमा, दया, विवेक, धैर्य तथा रसिकता, कलाप्रियता आदि सद्गुणों से सम्पन्न है। साथ ही साथ उनमें कुछ अधीरता और उग्रता भी है। ये राम के मित्र, सहगामी, सचिव और सेवक हैं तथा सम्पूर्ण रामकथा के उपनायक हैं—

अनुज ! मुझसे न तुम न्यारे कभी हो।
सुहृद्, सहचर, सचिव, सेवक सभी हो।। *(तृतीय सर्ग)*

रूप–सौन्दर्य के प्रसङ्ग में साकेत में लक्ष्मण के लिये कुछ नहीं कहा गया है। वाल्मीकि या तुलसी की भाँति इन्होंने लक्ष्मण के रूप–सौन्दर्य का चित्रण नहीं किया है। उर्मिला के लिये वे मत्त मराल और प्रणयी रूप में उपस्थित हुए हैं।

वनगमन के पूर्व राज्याभिषेक–समारोह के समय गुप्तजी ने लक्ष्मण के चरित्र में प्रणयी, भावुक पति, रसिक तथा कलासक्त रूप का अध्याय जोड़कर नवीनता का परिचय दिया है। परमसुन्दरी नवयौवना, मुग्धा, लक्ष्मणप्रिया उर्मिला के लिये भावुक पति के रूप में चित्रित करके गुप्त जी ने लक्ष्मण–चरित्र में एक नवीन और महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड़ा है।

लक्ष्मण ने अपने प्यार को त्याग और तपस्या द्वारा समुज्ज्वल बनाया है। इसीलिये उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा का मूल्य और महत्त्व बहुत अधिक है। लक्ष्मण उर्मिला पर आसक्त हैं, पर राम का अनुज, भक्त और सेवक भी हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने लक्ष्मण के चरित्र में प्रेम, उत्सर्ग तथा पराक्रम का क्रम अपने ढंग से रखा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्ष्मण एक कुशल कला–पारखी (मर्मज्ञ) हैं। उर्मिला के द्वारा बनाये गये चित्र को देकर उसकी कला की प्रशंसा भी करते हैं। इस स्थल पर लक्ष्मण के द्वारा कला के स्वरूप और प्रयोजन का निष्पक्ष विवेचन भी कराया गया है–

यह तुम्हारी भावना की स्फूर्ति है,
जो अपूर्ण कला उसी की पूर्ति है।
हो रहा है जो जहाँ, सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा?
किन्तु होना चाहिये कब क्या, कहाँ,
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ। *(प्रथम सर्ग)*

उर्मिला द्वारा पूछे जाने पर कि आपकी इस परिवार में क्या स्थिति है? लक्ष्मण ने उत्तर दिया–

भावती, मैं भार लूँ किस काम का?
एक सैनिक मात्र लक्ष्मण राम का। *(प्रथम सर्ग)*

तुलसी के लक्ष्मण के समान गुप्त जी के भी लक्ष्मण राम के अनन्य भक्त हैं। जब उन्हें राम के वन जाने की घटना का ज्ञान हुआ तब वे समीपस्थ कैकेयी से नम्रतापूर्वक पूछते हैं–"माँ! क्या ठीक है यह।" परन्तु कैकेयी सीधे मुँह उत्तर न देकर कहती हैं–"भरत होता यहाँ तो मैं बताती।" इतना सुनना था कि लक्ष्मण की क्रोधाग्नि धधक उठी और उन्होंने भयङ्कर रूप धारण कर लिया और क्रोधित सर्प की भाँति फुफकार उठे–

गई लग आग–सी, सौमित्रि भड़के,
अधर फड़के, प्रलय घन तुल्य तड़के!
"अरे, मातृत्व तू अब भी जताती;
ठसक किसको भरत की हैं बताती?
भरत को मार डालूँ और तुझको,
नरक में भी न रक्खूँ ठौर तुझको!
युधाजित् आततायी को न छोडूँ,
बहन के साथ भाई को न छोडूँ।
बुला ले सब सहायक शीघ्र अपने,
कि जिनके देखती है व्यर्थ सपने।
सभी सौमित्रि का बल आज देखें,
कुचक्री चक्र का फल आज देखें। *(तृतीय सर्ग)*

क्रोधाग्नि में विवेक नहीं खोते वे। अपने भाई भरत के चरित्र पर उन्हें पूर्ण विश्वास था और उन्होंने भरत के प्रति मात्र इतना ही कहा–"हुए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे साधु तेरे पुत्र ऐसे, कि होता कीच से पदम जैसे।'' राम के मना करने पर भी वे अपने मन के आवेग को रोक नहीं पाते, अपितु कहते हैं ''मैं अन्याय नहीं सह सकता। मैं राज्याभिषेषक में विघ्न डालने वाले से निपट लूँगा।''

रहूँ?— सौमित्रि बोले—''चुप रहूँ मैं?
तथा अन्याय चुप रहकर सहूँ मैं? *(तृतीय सर्ग)*
इधर मैं दास लक्ष्मण हूँ तुम्हारा,
उधर हो जाय चाहे लोक सारा। *(तृतीय सर्ग)*

भाग्यवाद या दैववाद पर उनकी आस्था नहीं है। उसकी भर्त्सना करते हुए वे अपने पुरुषार्थ पर विश्वास करते हैं—

वही हो जो तुम्हें हो इष्ट मन में,
बने नूतन अयोध्या नाथ वन में!
भले ही दैव का बल दैव जाने,
पुरुष जो है, न क्यों पुरुषार्थ माने?
हुआ, कुछ भी नहीं मैं जानता हूँ,
तुम्हें जो मान्य है सो मानता हूँ।। *(तृतीय सर्ग)*

वनवास का कठोर प्रतिरोध करने पर भी अटूट, अनिवर्चनीय भ्रातृ–प्रेम के कारण लक्ष्मण सभी बन्धनों को तोड़कर राम के अनुयायी हुए।

भरत को सैन्यसहित आते देख लक्ष्मण का मन एक बार पुनः विचलित होता है। इस प्रसङ्ग में लक्ष्मण के चरित्र को वाल्मीकि, तुलसीदास और गुप्तजी तीनों ने भिन्न–भिन्न पद्धतियों से प्रस्तुत किया है। गुप्तजी के लक्ष्मण इस प्रसङ्ग में राम की बात नहीं मानते, अपितु व्यावहारिकता की सीख देते हैं। उनका कहना है कि यदि आप पिता की आज्ञा मानकर वन में आ सकते हैं तो भरत अपनी माँ की आज्ञा मानकर आप पर चढ़ाई भी कर सकते हैं। मैं आपके साथ आपकी रक्षा के लिये आया हूँ और रक्षा करना मेरा कर्तव्य है—

आशा अन्तःपुर–मध्यवासिनी कुलटा,
सीधे हैं आप, परन्तु जगत है उलटा।
जब आप पिता के वचन पाल सकते हैं,
तब माँ की आज्ञा भरत टाल सकते हैं?।। *(अष्टम सर्ग)*

परन्तु लक्ष्मण जिस तरह आशुकोप हैं, उसी तरह राम के सान्निध्य में आशुतोष भी हैं। अनियन्त्रित लक्ष्मण के नियन्त्रक राम हैं।

लक्ष्मण के चरित्र का पूर्ण परिपाक सुग्रीव के यहाँ होता है। सीता खोज में विलम्ब देखकर राम लक्ष्मण को सुग्रीव के पास जाने के लिये प्रेरित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते हैं। सुग्रीव की मित्र–कार्य पर शिथिलता देखकर लक्ष्मण को दुःख भी होता है। और क्रोध भी–

भूल मित्र का दुःख शत्रु–सा
सुख भोगे, वह कैसा मित्र?
पहुँचे पुर में प्रकुपित होकर,
धन्वी लक्ष्मण चारु–चरित्र॥ *(एकादश सर्ग)*

स्वभावतः स्त्रियों से लक्ष्मण सङ्कुचित थे, अतः सुग्रीव की पत्नी तारा के सामने आते ही लक्ष्मण का सारा क्रोध शान्त हो गया–

देख दीन अबला को सम्मुख
आवेगी किस को न दया? *(एकादश सर्ग)*

यहाँ गुप्त जी ने क्रोध की शान्ति के लिये जो 'अबला' का सहारा लिया है, वह शिथिल है। कथा की संक्षिप्तता को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि गुप्त जी के लक्ष्मण का चरित्र संक्षिप्त और अपूर्ण है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वितीय अध्याय

चरित्रसम्बन्धी परिकल्पना और उसका स्वरूप

- 'चरित' की व्युत्पत्ति, परिभाषा एवं भेद
- चरित्र के प्रकार
- चरित्र के प्रभावक तत्त्व (वंशानुक्रमण और पर्यावरण)
- चरित और चरितकाव्य
- साहित्य में चरित्र का महत्त्व
- रामचरितमानस की चरित–योजना
- लक्ष्मण के चरित्र का वैशिष्ट्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वितीय अध्याय

चरित्रसम्बन्धी परिकल्पना और उसका स्वरूप

'चरित' की व्युत्पत्ति, परिभाषा एवं भेद

साहित्य के अन्तर्गत चरित्र का विशिष्ट महत्त्व है। सम्पूर्ण वाङ्मय मनुष्य के हर्ष, विषाद, आशा और उल्लास की भावनात्मक अभिव्यक्ति है। मनुष्य सर्जन के धरातल पर अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं की जो अभिव्यक्ति करता है उसके माध्यम से उसकी अनुभूतियाँ तथा भाव–संवेग आकार पाते हैं। अनुभूतियों और भाव–संवेगों के विश्लेषण से किसी मनुष्य की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन होता है।

चरित्र का बहुत ही निकटवर्ती शब्द है 'चरित'। अनेक शब्दकोशों के अवलोकन से यह सारभूत तत्त्व हमारे समक्ष उपस्थित होता है कि चरित्र के माध्यम से मुनष्य की प्रकृति, स्वभाव तथा क्रियाकलाप के आधार पर उसकी आन्तरिक और बाह्य प्रवृत्तियों का अध्ययन होता है। इसमें गुण और दोष–दोनों का सन्निवेश होता है। इसके समानान्तर चरित के माध्यम से किसी व्यक्ति की जीवनी तथा उसके जीवन के सम्पूर्ण इतिहास का बोध प्राप्त होता है। "चरित्र" शब्द "चर्" धातु से "इत्र" प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है गुण–दोषमय स्वभाव। "चर्" धातु का अर्थ है भ्रमण करना अथवा क्रिया करना। इसी से आचरण, आचार, चरित और चर्या आदि शब्द भी निर्मित हुए हैं। "चर्" धातु में "क्त" प्रत्यय लगाकर "चरित" शब्द बना है जिसका अर्थ है–घूमा हुआ, किया हुआ, प्राप्त, अभ्यास, कृति, व्यवहार, कर्म, जीवन, इतिहास आदि। इस तरह से "चरित्र" और "चरित" शब्द लगभग समानार्थी हैं, फिर भी जनसामान्य में दोनों दो अर्थों के बोधक हैं। इन दोनों शब्दों का व्युत्पत्तिपरक अर्थ समझने के लिये कुछ बहुचर्चित शब्दकोशों का आधार लिया जा सकता है, जिनमें हैं–संस्कृत हिन्दी शब्दकोष (वामन शिवराम आप्टे), शब्दकल्पद्रुम, (खण्ड–२, भाग ४) तथा हिन्दी मानक कोश (श्रीरामचन्द्र वर्मा) आदि।

उपर्युक्त सभी शब्दकोशों के आधार पर ही "चरित" और "चरित्र"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्बन्धी परिकल्पना और स्वरूपविश्लेषण का प्रयास ऊपर किया गया है, फिर भी कुछ विशेष सुविधा के लिये शब्दकोशों की निष्पत्तियाँ उल्लेख्य हैं।

चरित (भू०क०कृ०) (चर्+क्त) १– घूमा हुआ, फिरा हुआ या गया हुआ। २–अनुष्ठित, अभ्यस्त। ३–अवाप्त। ४–ज्ञात। ५–प्रस्तुत, ०तम्। –जाना, हिलना–डुलना, मार्ग, कर्म करना, करना, अभ्यास, व्यवहार, कृत्य, कर्म,–उदारचरितानां–हि० १/७०, सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति– १/१८; ३– जीवनी, आत्मजीवनी, साहस–कथाएँ, इतिहास, कहानी–उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयुज्यते– उत्तर० १/२; इसी प्रकार "दशकुमारचरितं" आदि। सम०–अर्थ (वि०)। जिसने अपना अभीष्ट ध्येय पूरा कर लिया है, सफल–रामरावणयोर्युद्धं चरितार्थमिवाभवत्–रघु० १२/८७, १०/३६, २/१७; कि० १३/६२ २– सन्तुष्ट, तृप्त। ३–कार्यान्वित, सम्पन्न।[११]

चरित्रम् (चर्+इत्र) १– व्यवहार, आदत, चालचलन, अभ्यास, कृत्य कर्म। २–अनुष्ठान, पर्यवेक्षण। ३–इतिहास, जीवनचरित, आत्मकथा, वृत्तान्त, साहस–कथा। ४–प्रकृति, स्वभाव। ५– कर्त्तव्य, अनुमोदित नियमों का पालन– (मनु० २/२०, ९/७)[११]।

चरित–क्ली० (चर+भावे क्तः) चरित्रम्, इति शब्दरत्नावली (यथा भागवते–१०/१/१) कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः। राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम्)।[१२]

चरित्र–क्ली० (चर्+अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः। ३/२/१८४। इति इत्रः। स्वभावस्तत्पर्यायः। १–चरितम्। २–चारित्रम्, ३–चरित्रम्। इति शब्दरत्नावली (यथा– कथासरित्सागरे–४/८३)।[१२]

चरित्र–पु० (सं चर्+इत्र) १– वे सब बातें जो आचरण व्यवहार आदि के रूप में की जायँ। किया या किये हुए कार्य कार्य–कलाप। २–अच्छा आचरण या चाल–चलन। सदाचार। जैसे–चरित्रवान्। ३–जीवन में किये हुए कार्यों का विवरण। जीवनचरित, जीवनी। ४–कहानी नाटक आदि में कोई पात्र, ५–कोई महान् अथवा श्रेष्ठ व्यक्ति। ६–स्वभाव, ७–छलपूर्ण अनुचित आचरण, व्यवहार करतूत। चरित्र (व्यङ्ग्य)। ८– कर्त्तव्य, ९–शील स्वभाव, १०–चलने की क्रिया या भाव, ११–पग, पाँव, पैर।[१३]

चरित–पु० [संस्कृत चर् (चलना) + क्त] १. आचरण या व्यवहार और रहन–सहन, २. किसी के जीवन की घटनाओं का उल्लेख या विवरण। जीवन–चरित्र, ३. किसी के किये हुए अनुचित या निन्दनीय कार्य। करतूत, करनी (व्यङ्ग्य), जैसे–इनके चरित सुनें तो दंग रह जायेंगे।[१३]

प्रस्तुत स्थल पर "चरित्र" और "चरित" से समानार्थी शब्द

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"चारित्र्य" की भी व्युत्पत्ति कर देना समीचीन जान पड़ता है। जिस प्रकार "चरित्र" और "चरित" को जनसामान्य भिन्न अर्थों में ग्रहण करते हैं, उसी भाँति "चारित्र्य" में भी भिन्नता प्रदर्शित करते हैं, जिसकी व्युत्पत्ति निम्नाङ्कित प्रकार से की गयी है—

चारित्रम्—त्र्यम् (चरित्र+अण् ञ वा) १—शील, व्यवहार, काम करने की रीति। २—नेकनामी, सच्चरित्रता, ख्याति, सच्चाई, ईमानदारी, अच्छा चाल—चलन—अनृतं नाभिधास्यामि चरित्रभ्रंशकारणम्—मृच्छ० ३/२५, २६, चारित्र्यविहीन आढ्योऽपि च दुर्गतो भवति—१/४३— ३—सतीत्व, (स्त्रियों का) सदाचरण; ४—स्वभाव, तबीयत; ५—विशिष्ट आचार या अभ्यास; ६—कुलक्रमागत आचार। सम०—कवच (वि०) सतीत्वरूपी कवच में सुरक्षित।[11]

'चारित्र्य' शब्द का व्यवहार 'चरित्र' शब्द से कुछ भिन्न अर्थों में होता है। चरित्र के अन्तर्गत गुण, दोष— दोनों का समावेश मान्य है; किन्तु 'चारित्र्य' शब्द का अर्थ आदर्श एवं अनुकरणीय चरित्र है। वस्तुतः 'चारित्र्य' शब्द उत्तम चरित्र की विशेषताओं का बोधक है। चारित्र्य से युक्त चरित्र ही उत्तम और आदर्श चरित्र कहलाता है। चारित्र्य के अभाव में व्यक्ति को दुश्चरित्र अथवा चरित्रहीन की संज्ञा दी जाती है। 'चारित्र्य' शब्द सामान्यतः एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से पृथक् करने वाले गुणों एवं कर्मों के समूह के लिये प्रयुक्त होता है। ग्रीक भाषा में इसके पर्यायवाची शब्द का अर्थ है—विशिष्ट चिह्न या छाप। किसी ने लिखा है कि "एक मुट्ठी चारित्र्य एक मन विद्या के बराबर है।" इस चारित्र्य के विषय में कहा गया है कि जैसे जगत् में मनुष्य से बड़ा कोई प्राणी नहीं है वैसे ही चारित्र्य जीवन की अति मूल्यवान् वस्तु है। व्यक्ति के चरित्र से ही राष्ट्र का मूल्याङ्कन हो सकता है। चारित्र्य संसार के समस्त खजानों से अधिक महत्त्वपूर्ण खजाना है।

उपर्युक्त व्युत्पत्तियों के आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि चरित्र एक ऐसा आधारभूत तत्त्व है जिसके माध्यम से हम मनुष्य की प्रकृति, स्वभाव तथा क्रियाकलापों द्वारा उसकी आन्तरिक और बाह्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करते हैं और "चरित" के माध्यम से किसी व्यक्ति की जीवनी और उसके जीवन के सम्पूर्ण इतिहास का बोध प्राप्त करते हैं तथा 'चारित्र्य' शब्द उत्तम चरित्र की विशेषताओं का बोधक है।

चरित्र के प्रकार

भारतीय वाङ्मय में चरित्र के प्रकारों को पृथक् रूप में नहीं दरसाया गया है, किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि भारतीय आलोचकों ने चरित्र को विभाजित ही नहीं किया है। सत्कर्मों से युक्त सच्चरित्र और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुत्सित कर्मों से युक्त व्यक्ति को दुश्चरित्र कहना तो सामान्य बात है। भारतीय विद्वानों ने चरित्र के आधार पर ही नायकों का विभाजन किया है। नायकों की परिचर्चा करते हुए विद्वानों ने गुण, स्वभाव एवं कर्म के आधार पर उन्हें चार कोटियों में विभक्त किया है—धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त एवं धीरोद्धत।[५४] धीरोदात्त नायक भावनाओं पर अधिकार रखने वाला गम्भीर, क्षमावान्, अपने मुँह से अपनी प्रशंसा न करने वाला, स्थिरचित्त, विनयी तथा दृढ़व्रत होता है। निश्चित स्वभाव का, कलाओं से प्रेम रखने वाला, कोमल स्वभाव वाला तथा सुखी नायक 'धीरललित' होता है। सामान्य गुणों से युक्त ब्राह्मण अथवा वैश्यादिक नायक को 'धीरप्रशान्त' कहते हैं। ईर्ष्या और दर्प से युक्त, माया और छल में प्रवीण, चञ्चल, क्रोधी और आत्मप्रशंसक नायक को 'धीरोद्धत' कहा गया है। नायकों के गुण, स्वभाव, शील और कर्म के आधार पर यदि हम चरित्र का प्रकार प्रदर्शित करते हैं तो यह पूर्ण एवं मान्य नहीं होगा; क्योंकि नायक के चरित्र के अतिरिक्त अनेक मुख्य और गौण पात्र मिलते हैं जिनको किस कोटि के चरित्रों के अन्तर्गत रखा जाय, इसके लिये पृथक् रूप से विभाजन करना पड़ेगा। तब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जायगी कि किसी भी काव्य, महाकाव्य के प्रत्येक पात्रों की पृथक् पृथक् श्रेणियाँ बनानी पड़ेंगी और पृथक् पृथक् चरित्र– भेद करना पड़ेगा। अतः चरित्र–भेद के लिये हमें निश्चित ही पाश्चात्त्य विद्वानों की सम्मतियों को स्मरण रखना होगा।

अरस्तु ने महाकाव्य में तीन प्रकार के चरित्रों का होना बतलाया है—आदर्श, यथार्थ और परम्परागत या रूढ़।[५५] १. जब कवि अपनी प्रतिभा से किसी महापुरुष की मानवीय दुर्बलताओं को भूलकर, उसे यथार्थ जीवन से दूर करके महान् आदर्शों से विभूषित कर देता है तब वहाँ आदर्श चरित्र का दिग्दर्शन होता है। प्रायः महाकाव्य के नायक इन गुणों से विभूषित पाये जाते हैं, जो किसी महान् उद्देश्य की सिद्धि या निष्ठा के निमित्त अपना सब कुछ बलिदान करने के लिये तत्पर रहते हैं। भारतीय आचार्यों ने ऐसे ही आदर्श चरित्र को 'धीरोदात्त नायक' कहा और उन्हीं को महाकाव्य का नायक बनाना आवश्यक माना है। २. सामान्य या यथार्थ चरित्र वे हैं जो स्वाभाविक रूप से यथार्थ पाये जाते हैं, अर्थात् उनमें मानवीय दुर्बलताएँ भी हो सकती हैं और आदर्श गुण भी। वे निर्लोभ भी हो सकते हैं और सांसारिक भी। ऐसे चरित्रों को उनकी स्वाभाविक सत् सत् प्रवृत्तियों, चेष्टाओं और क्रियाओं के साथ चित्रित किया जाता है। ३. परम्परागत या रूढ़ चरित्र ऐसे कल्पित चरित्र होते हैं जिन्हें समाज पहले से मानता आया है; किन्तु वे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं होते। ये पूर्णतः काल्पनिक या दन्तकथा वाले चरित्र बहुधा कथा–आख्यायिका के नायक होते हैं। इन कल्पित चरित्रों को चमत्कारपूर्ण शक्ति से युक्त दिखाया जाता है। कहीं वे देवता, गन्धर्व, राक्षस आदि होते हैं और कहीं मानव को ही पौराणिक और दन्तकथामय रूप प्रदान कर अलौकिक शक्ति से युक्त बना दिया जाता है।

अरस्तु के विचारों से भिन्न पाश्चात्त्य विद्वानों ने चरित्र को कई दृष्टिकोणों से विभाजित किया है, जिनमें से गुण, स्वभाव, प्रकृति, कर्म, क्रियाकलाप आदि प्रमुख हैं। चरित्र के उन सभी प्रकारों को एक ही स्थल पर इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

१. सरल और जटिल चरित्र
२. क्षीण और पुष्ट चरित्र
३. सपाट और आवर्ती चरित्र
४. स्थिर और गतिशील चरित्र
५. सच्चरित्र और असच्चरित्र
६. सामान्य, असामान्य और उपसामान्य चरित्र
७. एकात्मक और बहुरूपी चरित्र
८. वर्गीय और सार्वभौम चरित्र
९. कालजयी और कालविजित चरित्र
१०. जाति की दृष्टि से दिव्य (अतिमानव या परामानव), मानव और मानवेतर चरित्र।[१६]

इस प्रकार चरित्र का हम निश्चित विभाजन नहीं कर सकते। काव्य–भेद और कथावस्तु के अनुसार चरित्रों के प्रकार (भेद) होते जाते हैं। भारतीय आचार्यों का चरित्रभेद नायकभेद पर आधृत है। अरस्तु ने जो चरित्रभेद बतलाया है उसकी भी सीमा नायकों तक ही है। अन्तर इतना ही है कि भारतीय आचार्यों द्वारा निर्देशित चरित्र महाकाव्य के नायकों का है और अरस्तु द्वारा वर्णित चरित्र–भेद काव्य के सभी भेदों के नायकों तक सीमित है। डॉ० शम्भुनाथसिंह ने महाकाव्य के स्वरूप को प्रदर्शित करते हुए नायकों के ही प्रमुख गुणों एवं लक्षणों की ओर संकेत किया है।[१५] शिप्ले द्वारा सम्पादित शब्दकोश में चरित्र के भेदों का जो वर्गीकरण किया गया है उसके अन्तर्गत प्रायः सभी काव्यरूपों के सभी पात्रों को ग्रहण किया गया है।

चरित्र के प्रभावक तत्त्व (वंशानुक्रमण और पर्यावरण)

साधारण अनुभव की बात है कि कोई भी दो व्यक्ति शारीरिक विशेषताओं, बुद्धि अथवा अन्य गुणों में एक समान नहीं होते। बहुत समय से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन भेदों को निश्चित करने वाले कारकों को जानने का प्रयत्न किया जा रहा है। मनुष्यों के विकास में अनेक कारकों में सबसे महत्त्वपूर्ण कारक वंशानुक्रमण और पर्यावरण हैं। मनुष्य के चरित्र और व्यक्तित्व पर वंशानुक्रमण और पर्यावरण का ही प्रभाव पड़ता है। प्रायः सभी समाजों और जातियों का विश्वास है कि सन्तान में माता–पिता का रुधिर बहता है। विद्वान् दम्पत्ति की सन्तान विद्वान् और अपराधी की सन्तति अपराधी होती है। दूसरी ओर चरित्र–विकास में पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण प्रभाव को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया गया है। कहा गया है–

''काजर की कोठरी में कैसो ही सयानो जाय,
एक लीक काजर की लागि है पै लागि है।''

दोनों प्रकार की प्रचलित धारणाओं का आधार सामान्य अनुभव है। व्यक्ति के चरित्र विकास में वास्तव मे दोनों समानरूप से महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अतः हम इन दोनों प्रभावकारी कारकों पर एक विहङ्गम दृष्टिपात करेंगे।

वंशानुक्रमण–फ्रांसिस गाल्टन ने सर्वप्रथम १८६९ ई० में अपनी पुस्तक ''हेरिडिटरी जीनियस'' में लिखा है कि मनुष्य के शारीरिक और मानसिक लक्षणों में भिन्नता पैतृकता की भिन्नता के कारण होती है। शारीरिक विकास, भार, वर्ण, स्वास्थ्य, मानसिक शक्ति, यूथचारिता, बुद्धि, कार्यक्षमता आदि गुण मनुष्य की पैतृकता पर अवलम्बित हैं। पैतृकता के कारण ही मनुष्य (एक जाति) की कार्यक्षमता और बौद्धिक विकास एक दूसरे से भिन्न होते हैं। गाल्टन के बाद फ्रांस के अल्फ्रेंजों डि कण्डोल, ब्रिटेन के कार्ल पियर्सन ने इस विषय पर महत्त्वपूर्ण अन्वेषण किये। क्लिनवर्ग ने अपनी पुस्तक ''रेस डिफरेन्सेज'' में बौद्धिक परीक्षाओं से, जो प्रजातियों के सैनिकों में किये गये थे, बौद्धिक स्तर को नापा है। उसने विभिन्न प्रजातियों और मानवसमूहों की श्रेष्ठता अथवा हीनता का कारण उनके वंशानुक्रमण को माना है। विंशिप, गोडार्ग और डुग्डेल ने समृद्धिशाली एडवर्ड परिवारों तथा ज्यूकस और कल्लिकाक परिवारों के वंशजों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि एडवर्ड वंश के सभी लोग श्रीसम्पन्न हुए और ज्यूकस एवं कल्लिकाक परिवारों के वंश पतित तथा निकम्मे हुए।

पर्यावरण– पर्यावरण, व्यक्ति के चरित्र–निर्माण में दूसरा महत्त्वपूर्ण कारक है। व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है, उसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है। उससे उसका चरित्र प्रभावित होता है। शिशु–केन्द्रों और अनाथालयों में पले हुए बच्चों का पर्यावरण सामान्य रहता है। इन स्थानों पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बच्चे विभिन्न माता–पिता की सन्तान होते हैं। इन पर कुमारी वर्क्स ने प्रयोग किया और यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य की बुद्धि के विकास में पैतृकता का बीस प्रतिशत और पर्यावरण का अस्सी प्रतिशत प्रभाव पड़ता है। डेविड एब्राहम ने निष्कर्ष निकाला था कि "मनुष्य क्या कर सकता है? अथवा उसकी क्या कार्यक्षमता है?" यह पैतृकता निर्धारित करती है और "मनुष्य क्या करता है?" यह पर्यावरण निर्धारित करता है। बीज पैतृक गुणों का कोष है, किन्तु पौधे का विकसित होना पर्यावरण पर अवलम्बित है।

निष्कर्ष— मानव जीवन के सभी चारित्रिक कर्म पर्यावरण और पैतृकता—दोनों कारकों की उत्पत्ति है। शरीर और पर्यावरण में सम्बन्ध की स्थापना सात्मीकरण विधा से होती है। शरीर पर्यावरण के भागों को चुनता है। और उन्हें अपने में समा लेता है। फलस्वरूप शारीरिक विकास इस बात पर निर्भर है कि (१) व्यक्ति ने अपने माता–पिता से कितने और किस प्रकार वंशानुगत गुण प्राप्त किये हैं? और (२) पर्यावरण से उसने क्या आत्मसात् किया है? पैतृकता मे, जिसका स्थानान्तरण बीज–कोष्ठों के द्वारा होता है, जीवन की सम्भावनाएँ निहित होती हैं; किन्तु इन सम्भावनाओं की यथार्थताओं को जाग्रत् और उपस्थित होने का अवसर पर्यावरण में मिलता है। पैतृकता हमें विकसित होने की क्षमताएँ प्रदान करती हैं, किन्तु इन क्षमताओं को विकास का अवसर पर्यावरण में मिलता है। पैतृकता से हमें क्रियाशील पूँजी प्राप्त होती है और पर्यावरण से इसके नियोजन के पर्याप्त अवसर। पैतृकता जितनी अधिक श्रेष्ठ होगी, उतना ही वह पर्यावरण की प्रतिकूलता को लाँघने का प्रयास करेगी और सम्भव है सफल भी हो जाय। इसी प्रकार पर्यावरण जितना अच्छा होगा, उतना ही अधिक उदारता से वह मनुष्य की पैतृकता की सम्भावनाओं को यथार्थता में परिणत होने का अवसर देगा।

चरित और चरित–काव्य

प्रबन्ध काव्य के मुख्यतः दो रूप होते हैं— (१) शास्त्रीय प्रबन्धकाव्य और (२) चरित–काव्य। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने ग्रन्थ "हिन्दी साहित्य कोश" में चरित काव्य के जिन लक्षणों का वर्णन किया है, वे इस प्रकार हैं—

१. चरित–काव्य की शैली जीवनचरित की शैली होती है। उसमें प्रारम्भ में या तो ऐतिहासिक ढंग से नायक के पूर्वज माता–पिता और वंश का वर्णन होता है या पौराणिक ढंग से उसके पूर्व भवों का वृत्तान्त तथा उसके जन्म के कारणों का वर्णन होता है अथवा काव्य की तरह उसके माता–पिता, देश और नगर का वर्णन रहता है। उसमें चरितनायक के जन्म से मृत्युपर्यन्त की कथा अथवा कई जन्मों (भवान्तरों) की कथा होती है। उसमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शास्त्रीय प्रबन्ध–काव्यों की तरह महत्त्वपूर्ण और कलात्मकता उत्पन्न करने वाली मुख्य घटनाओं का चुनाव और वर्णनात्मक अंशों की अधिकता नहीं होती। अतः यह कथात्मक अधिक और वर्णनात्मक कम होता है। चरितकाव्य–रचयिता कवि कथा को छोड़कर वस्तु–वर्णन या प्रकृति–चित्रण में अधिक देर तक नहीं उलझता। इसी कारण यह कथा–काव्य के अधिक निकट तथा शास्त्रीय प्रबन्ध–काव्यों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक, सरल और लोकोन्मुख होता है।

२. चरित–काव्यों में प्रायः प्रेम, वीरता और धर्म या वैराग्य भावना का समन्वय दिखलायी पड़ता है। सब में कोई न कोई प्रेम–कथा अवश्य होती है और उसका स्थान गौण नहीं, महत्त्वपूर्ण होता है। उसमें, पौराणिक कथानक में भी, प्रेमाख्यानक रंग भरने का प्रयत्न दिखलायी पड़ता है। प्रायः सभी चरित– काव्यों में प्रेम का प्रारम्भ समान रूप में स्वप्न–दर्शन, गुण–श्रवण, चित्र दर्शन या प्रथम साक्षात्कार द्वारा होता है। विवाह के पहले या बाद में नायक–नायिका के मार्ग में अनेक विघ्न–बाधाएँ आती हैं, युद्ध करने पड़ते हैं और अन्त में उनका मिलन होता है। जैन चरितकाव्यों में प्रायः अन्त में नायक किसी प्रेरणा या उपदेश से संसार से विरक्त होकर जैन मुनि बन जाता है।

३. प्रायः सभी चरित–काव्यों में कथारम्भ के लिये वक्ता–श्रोता–योजना अवश्य होती है। यह प्रश्नोत्तर–योजना इतने रूपों में मिलती है–

(क) धर्म, गुरु और शिष्य, पौराणिक कथाविद् और भक्तजन अथवा श्रावक और श्रोता के बीच।

(ख) शुक–शुकी, शुक–सारिका, भृङ्ग–भृङ्गी अथवा किसी वक्ता पक्षी और मानव श्रोता के बीच।

(ग) कवि और कवि–पत्नी या कवि और उसके किसी शिष्य के बीच।

४. उसमें अलौकिक, अतिप्राकृत और अति मानवीय शक्तियों, कार्यों और वस्तुओं का समावेश अवश्य रहता है जो पौराणिक और रोमाण्टिक शैली के कथा–काव्यों, पौराणिक कथाओं और लोककथाओं का उपहार (देन) है। इस कारण उसमें साहसपूर्ण, आश्चर्योत्पादक और रोमाण्टिक कार्यों तथा तत्त्वों की अधिकता होती है और उन सभी रूढ़ियों का बाहुल्य होता है जो लोक–कथा और काव्य–आख्यायिका में बहुत अधिक मिलती है।

५. उनका कथानक शास्त्रीय प्रबन्ध–काव्यों जैसा पञ्च सन्धियों से युक्त और कार्यान्विति वाला नहीं होता, वह कथा–काव्यों की तरह स्फीत, विशृङ्खल, गुम्फित या जटिल होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

६. उसकी शैली कथा–काव्यों से अधिक उदात्त होती है, परन्तु शास्त्रीय प्रबन्ध–काव्यो जैसी अतिशय अलङ्कृत, चमत्कारपूर्ण या पाण्डित्य–प्रदर्शन की प्रवृत्ति से युक्त नहीं होती जिससे उसमें अधिक सरलता, सादगी और सामान्य जनता के लिये पर्याप्त आकर्षण होता है।

७. चरित–काव्य प्रायः उद्देश्यप्रधान होता है, कथा–काव्यों की तरह केवल मनोरञ्जन करना उसका लक्ष्य नहीं होता। यह उद्देश्य कभी धार्मिक, कभी प्रशस्तिमूलक और कभी लोककल्याणाभिनिवेशी होता है। परन्तु उसका उद्देश्य अधिक उभरा हुआ और स्पष्ट होता है, शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यों की तरह कलात्मक सौन्दर्य में निहित नहीं होता। इसी कारण चरित–काव्य उपदेशात्मक, प्रचारात्मक या प्रशस्तिमूलक प्रतीत होते हैं।[१४]

भारतीय वाङ्मय में अनेक काव्यो तथा नाटकों की रचना "चरित" शीर्षक से हुई है, जैसे— श्रीहर्षकृत नैषधचरित, दण्डिकृत दशकुमारचरित, भर्तृमित्रकृत हरचरितकाव्य, रविसेनकृत पद्मचरित, बाणभट्टकृत हर्षचरित–आख्यायिका, विमलसूरिकृत पउमचरिय महाकाव्य, अश्वघोष का बुद्धचरित महाकाव्य, सन्ध्याकर नन्दीकृत रामचरितकाव्य, जटासिंह नन्दीकृत वराङ्गचरित महाकाव्य, हेमचन्द्रकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित आदि। अपभ्रंश में तो चरित–संज्ञक काव्यों की एक सुदीर्घ परम्परा ही चल पड़ी थी और जैन कवियों ने अनेक छोटे–बडे चरितकाव्यो की रचना की। जैसे—स्वयम्भूकृत पउमचरिउ, गुणपालकृत जम्बूसामिचरिउ, लक्ष्मणदेवकृत णेमिणाहचरिउ, सोमप्रभकृत सुमति–नाथचरिउ, देवचन्द्रसूरिकृत शान्तिनाथचरिय, हरिभद्रसूरिकृत णेमिनाथचरिय, वर्धमानाचार्यकृत आदिनाथचरियम्, देवभ्रमसूरिकृत पार्श्वनाथचरिय, वीरकविकृत जम्बूसामिचरिय, मुनिकनकामरकृत करकन्धचरिउ और जसहरचरिउ, माणिकराजकृत णासकुमारचरिउ आदि। इसी प्रकार चरित–संज्ञक नाटक भी लिखे गये हैं—जैसे— भवभूतिकृत उत्तररामचरित। चरित–संज्ञक काव्यों की यह परम्परा हिन्दी में भी गृहीत हुई थी, जैसे— नरोत्तमदासकृत सुदामाचरित।

मध्यकालीन साहित्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध और उलझा हुआ काव्यरूप चरित–काव्य है। इसके माध्यम से महाकाव्यों की परम्परा का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस काव्यरूप के विकास पर अनेक देशी और विदेशी काव्यरूपों की काव्यरूढ़ियों का प्रभाव है। इसे सुलझाने में भी बहुत कठिनाई है कि इसकी कौन सी विशेषताएँ संस्कृत महाकाव्यों की है तथा कौन सी परवर्ती प्राकृत, अपभ्रंश के धार्मिक काव्यों की? किन्तु इसमें कोई विमति नहीं कि इस काव्य की शैली पर विदेशी ऐतिहासिक काव्यों का गहरा प्रभाव है। साहित्य की यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विधा दन्तकथाओं तथा रोमाञ्चक काल्पनिक घटनाओं के ऐतिहासिक वृत्तान्तों से अतिरञ्जित रही है। यह भी उल्लेख्य है कि मध्यकाल में न केवल संस्कृत में अपितु प्राकृत, अपभ्रंश तथा नवोदित अनेक देशीय भाषाओं में अत्यधिक काव्यों की सृष्टि हुई। चरितकाव्य के समानान्तर रूपक, रासो आदि काव्यों की भी चर्चा की जाती है। यह इसलिये कि इनमें रूप तत्त्व की अधिक समानता है। यही नहीं; कथा, आख्यान, वार्ता आदि नामों से अभिहित विधाओं में भी चरित–काव्य की शैली का गहरा प्रभाव है। चरित–काव्य को 'कथा' भी कहा जाता है। गोस्वामी जी ने मानस को ''कथा'' भी कहा है। इससे स्पष्ट है कि चरित–काव्य की परिभाषा अत्यन्त शिथिल थी, जिसकी परिधि में कोई भी पद्यबद्ध इतिवृत्तात्मक काव्य समाहित हो सकता था।

सभी चरित–काव्यों में नायकों के जीवन का इतिहास सम्पूर्ण या आंशिक रूप में चित्रित है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि 'चरित' शब्द का व्यवहार जीवनवृत्त के सन्दर्भ में ही हुआ है। वास्तविकता यह है कि चरित और चरित्र शब्द दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं। यह इसलिये कि किसी के चरित्र का समुचित विश्लेषण तब तक समुचित नहीं हो सकता, जब तक कि उसके जीवनवृत्त की समुचित ज्ञान (सही समझ) न हो।

साहित्य में 'चरित्र' का महत्त्व

'चरित्र' एक सापेक्ष शब्द है। प्रत्येक युग में देश–काल के अनुसार, समाज में चरित्रसम्बन्धी कुछ परिकल्पनाएँ तथा अवधारणाएँ मान्य होती हैं, जो पूर्ववर्ती तथा परवर्ती अवधारणाओं से विशिष्टता लिये होती हैं। चरित्र के शाश्वत प्रतिमान नहीं होते। इसका निर्माण सामाजिक परिवेश में होता है। प्रकृति ने मनुष्य को कुछ इस कौशल के साथ रचा है कि वह केवल इन्द्रियानुभूतिजन्य वासनाओं से प्रेरित होकर ही कार्यशील नहीं होता, अपितु अपनी विवेक–बुद्धि से अनुप्राणित होता है। यही विवेक–बुद्धि उसे औचित्य का ज्ञान कराती हैं। उचित और करणीय का निर्धारण सामाजिक मान्यताओं के ही आधार पर होता है। जीवनमूल्य निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं। आदिम युग से आज तक मनुष्य के आचार–विचार, नैतिकता–अनैतिकता के प्रतिमान निरन्तर परिवर्तित होते रहे हैं।

साहित्य और मानव जीवन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। कहना न होगा कि समस्त साहित्य एक तरह से मानवीय चरित्र की ही अभिव्यञ्जना है। मनुष्य अपने मानसिक घात–प्रतिघातों की जो अभिव्यक्ति साहित्य रूप में करता है उसमें उसकी भावनाओं, अनुभूतियों, विचारों और आचरणसम्बन्धी अवधारणाओं की अभिव्यक्ति होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साहित्य का बहुत बड़ा भाग कथात्मक है, जिसे भारतीय साहित्यशास्त्र में 'प्रबन्ध' की संज्ञा दी गयी है। यह पद्य तथा गद्य दोनों में है। पद्यबद्ध प्रबन्ध के अन्तर्गत महाकाव्य, एकार्थकाव्य, खण्डकाव्य, कथाकाव्य तथा लघु प्रबन्धकाव्य आदि आते हैं। इन सभी प्रबन्धात्मक रचनाओं में चरित की योजना होती है। किन्तु कवि जब अपने निजी भाव–संवेगों अथवा बाह्य जगत्सम्बन्धी विचारों और प्रतिक्रियाओं को गीतिकाव्य, मुक्तककाव्य आदि के रूप में चित्रित करता है तो चरित–योजना की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार चरित्र–चित्रण का क्षेत्र प्रबन्धात्मक साहित्य ही है। इसमें लेखक अपनी जीवनानुभूतियों को कुछ घटनाओं और कार्य–व्यापारों के परिप्रेक्ष्य में आख्यान का आश्रय लेते हुए चित्रित करता है। अतः स्वाभाविक ढंग से चरित–योजना के लिये वह विवश होता है। चरित–प्रबन्धात्मक काव्य की घटनाओं और कार्य–व्यापारों के परिप्रेक्ष्य में आख्यान का आश्रय लेते हुए चित्रित करता है। अतः स्वाभाविक ढंग से चरित–योजना के लिये वह विवश होता है।

चरित्र प्रबन्धात्मक काव्य की घटनाओं और कार्य–व्यापारों के सम्बन्धकर्त्ता होते हैं। ये रचनाकार की मानसी सृष्टि होते हैं, किन्तु उनका मूलाधार यथार्थ जीवन ही होता है। रचनाकार अपने चतुर्दिक् व्याप्त जीवन का सूक्ष्म अन्वेषण करता है तथा अपनी चरित–योजना के माध्यम से अपने अनुभवों को साकार रूप देता है। इस सन्दर्भ में उल्लेख्य है कि रचनाकार की चरित–सृष्टि सम्पूर्णतः यथार्थ पर आधृत नहीं होती, अपितु वह इन्हें अपने उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मूर्तिमान् करता है। कोई भी रचनाकार किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन की समस्त घटनाओं या कार्य–व्यापारों को नहीं चुनता, अपितु अपने उद्देश्य से प्रतिबद्ध होकर कुछ कार्य–व्यापारों के आधार पर चरित्र–चित्रण करता है।

इसी धरातल पर बाह्य जगत् के तथ्यों की तुलना में उसका आत्मिक सत्य अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। जीवन में सत् और असत् दोनों हैं। यथार्थ और आदर्श दोनों का सहअस्तित्व है। भाव और अभाव से सम्पूर्ण जीवन भरा है। जिस रचनाकार की दृष्टि जीवन की विकृतियों पर केन्द्रित होती है, वह असत् पक्ष का चितेरा होता है। प्रायः उसे यथार्थवादी रचनाकार मान लिया जाता है। दूसरा वह है जो असत् से आवृत "सत्" को प्रस्फुटित करने का प्रयास करता है। मानवीय मूल्यों में जिसकी आस्था होती है, रचना के धरातल पर जो अभाव को भाव में परिवर्तित करने में समर्थ होता है, जीवन की विकृति को परिमार्जित कर जो स्वस्थ जीवन बिम्ब को आकार देता है, उसे आदर्शवादी रचनाकार की संज्ञा दी जाती है। ये दोनों अतिवादी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्त (छोर) हैं, बीच का रचनाकार वह है जो जीवन की कठोरताओं, क्रूरताओं और विकृतियों से मुँह नहीं मोड़ता, किन्तु जिसके हृदय में स्वस्थ समाज के प्रतिष्ठा की बेचैनी होती है, जो कुछ है उससे परिष्कृत की अपेक्षा करता है, इन्हीं दृष्टिकोणों के आधार पर रचनाकार अपने ढग से चरित्रों की नियोजना करता है। प्रत्येक रचनाकार अपनी मानसिकता और अनुभवों के आधार पर निजी चरित्रों में सत् और असत् पक्षों से सम्बद्ध चरित्रों की नियोजना करता है।

भारतीय साहित्य में आदर्श चरित्रों की योजना पर विशेष बल दिया गया। किसी भी प्रबन्धात्मक कृति के अन्तर्गत चरित्र–योजना का अप्रतिम महत्त्व है। किसी भी कथात्मक कृति की घटनाएँ उसके चरित्रों से घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध होती हैं। कथानक की घटनाएँ तथा कार्य–व्यापार चरित्रों द्वारा ही सम्पन्न होते हैं और उन्हें प्रभावित भी करते है। इस तरह से कथानक, कथावस्तु आदि के निर्माण में इनकी अनिवार्यता को कभी उपेक्षित नहीं किया जा सकता। घटनाओं की बहुलता और प्रधानता के होते हुए भी पात्रों और चरित्रों की आत्यन्तिक आवश्यकता, कथात्मक साहित्य में होती है। चरित्रों के अभाव में कथात्मक साहित्य की परिकल्पना पर ही प्रश्न–चिह्न लग जायगा।

रामचरित मानस की चरित्र–योजना

रामचरितमानस को हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य की संज्ञा मिली है। मध्य युग से लेकर आज तक उत्तरी भारत का यह ऐसा अद्वितीय महाकाव्य है जिसका समस्त समाज की मानसिकता को बदलने में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसकी लोकप्रियता के विषय में अनेक तरह की उक्तियाँ प्रचलित हैं। इसके काव्यरूप को लेकर अनेक विवाद होते रहे हैं। किसी ने इसको 'महाकाव्य', तो किसी ने 'पुराण काव्य' की संज्ञा दी है। रामचरितमानस महाकाव्य है। इतिहास और पुराण उसकी सामग्री प्रस्तुत करते हैं, वे उसकी कथा के उपजीव्यमात्र हैं। पौराणिक कथावस्तु और उपदेशात्मकता के आधार पर ही कोई कृति 'पुराण' नहीं हो जाती। पुराण–बोध और काव्य–बोध में बहुत बड़ा अन्तर है। यह अवश्य है कि मानस पर पौराणिक वस्तुतत्त्व और धार्मिक दृष्टिकोण का गम्भीर प्रभाव पड़ा है। कुछ अंश तक संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के पौराणिक शैली के चरित–काव्यों के ढंग का यह प्रबन्ध–काव्य है। प्रबन्ध–काव्य के अन्तर्गत उसे महाकाव्य की भी संज्ञा दी जानी चाहिये। इसकी प्रेरणा महान् है, बहुत बड़े उद्देश्य से सम्पृक्त है और इसके निर्माण में महती काव्य–प्रतिभा का विशिष्ट योगदान है। सब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का हित ही इसका साध्य है। रामचरित का प्रचारमात्र इसका लक्ष्य नहीं है, अपितु मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा भी है। इसमें जीवन–मूल्यों की जो विवेचना है, जो प्रतिमान हैं वे सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं। रामचरितमानस के चरित्रों की विराट्ता, विशदता और व्यापकता मन को आश्चर्य, श्रद्धा और परिष्कृति से पूर्ण कर देती हैं। सम्पूर्ण काव्य लोकहित की भावना और मानवता के उत्कर्ष की मङ्गलाशा से अनुप्राणित है। रामराज्य की स्थापना इस काव्य के स्रष्टा का सर्वोच्च लक्ष्य है।

रामचरितमानस में अपभ्रंश के चरित–काव्यों की तरह ही राम का जीवनचरित्र वर्णित है और बहुत अंश तक चरित काव्य की कथानक रूढ़ियाँ भी इसमें वर्तमान हैं, किन्तु अपने महान् उद्देश्य के कारण तुलसी ने रामचरितमानस को चरितकाव्यों की सीमा से उठाकर शास्त्रीय महाकाव्य के निकट पहुँचा दिया है। उदात्त भावबोध, प्रख्यात कथा, कलात्मक अभिव्यञ्जना, शिल्पमय और प्रभावशाली भाषा का आश्रय ग्रहण करते हुए चरित्रों के माध्यम से विराट् मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा पर लोक–चित्त का परिष्कार और उन्नयन करना इस महाकाव्य का अभिप्रेत है। इसमें जीवन की समग्रता का चित्रण है। जीवन की विविध दशाएँ और कार्यव्यापार चित्रित हैं तथा महाकाव्योचित घटना–विस्तार दिखलायी पड़ता है। तुलसी ने इस काव्य के लिये जिस कथा का चयन किया है, वह विख्यात है। रामायण, महाभारत, बृहत्कथा, पुराणों, नाटकों और महाकाव्यों में यह बहुत दिनों से उपयोग में लायी जा रही है। वास्तविकता यह है कि मानस का कथानक पुराणों अथवा रामायण, महाभारत जैसा अति व्याख्यायुक्त नहीं है, न खण्डकाव्यों की तरह अतिसंक्षिप्त ही है। महाकाव्य के लिये जिस तरह के कथानक के विस्तार की अपेक्षा होती है तथा कथानक में आदि, मध्य और अन्त जैसी समानुपातिक योजना अपेक्षित होती है, वह इसमें जीवन्तता के साथ वर्तमान है। कभी–कभी कथानक में स्तुतिपरकता, उपदेशात्मकता और तत्त्वदर्शन के प्रसङ्ग इतने विस्तृत हो जाते हैं कि कथा–प्रवाह कुछ शिथिल पड़ जाता है; फिर भी उच्चकोटि की प्रभावान्विति, रसव्यञ्जना और गरिमामयी उदात्त शैली के कारण यह दोष ढक जाता है।

रामचरितमानस की चरित–योजना विशिष्ट प्रकार की है। उसका चरितगत सौन्दर्य और आदर्श अपना दूसरा उपमान (सादृश्य) नहीं रखता। चरित्र–चित्रण में तुलसीदास की कला का विस्तार देखा जा सकता है। मानस में चरित्र–चित्रण का जो स्वरूप दिखलायी पड़ता है, वह सर्वथा आलङ्कारिकों द्वारा निर्दिष्ट ढंग का नहीं है; साथ ही तुलसी ने यथार्थवादी या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनोवैज्ञानिक आधार पर भी चरित्र निर्मित नहीं किया है। उनका दृष्टिकोण तो धार्मिक और आदर्शवादी था, अतः उन्होंने चरित्रों की कोटियाँ बनाकर प्रत्येक कोटि का प्रतिनिधित्व करने वाले चरित्र निर्मित किये हैं।[१५] धार्मिक और आदर्शवादी तुलसीदास ने मानस में आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श गृहिणी, आदर्श मित्र, आदर्श सहचर, आदर्श अनुचर, आदर्श मन्त्री, आदर्श पुरोहित, आदर्श सेवक, आदर्श पुरजन, सभी क्षेत्रों में चरित्र–चित्रण आदर्श एवं अनुकरणीय चित्रित किया है।[१७] इनका चरित्र सोद्देश्य और सुनिश्चित योजना के अनुसार है। अपने काव्य–लक्ष्य के अनुसार ही उन्होंने चरित्रों की योजना की है। इन चरित्रों की महत्ता के कारण ही इस काव्य को लोकप्रियता मिली है। लोकजीवन में मानस के काव्योत्कर्ष और कार्यसम्पदा के महत्त्व की समझ भले ही न हो, परन्तु उसके चरित्र पूरी तरह से जन–मानस पर छाये हुए हैं। परिवार और समाज के विभिन्न धरातलों पर जन–सामान्य रामचरितमानस में पात्रों से दिशा, प्रेरणा एवं सम्बल पाता है। रामचरितमानस के चरित्र समाज को गहराई से प्रभावित करते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मानस के चरित्रों को दो कोटियों में विभक्त किया है—आदर्श और सामान्य। सीता, राम, भरत, हनुमान् और रावण आदर्श के अन्तर्गत आयँगे और दशरथ, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव, कैकेयी सामान्य के अन्तर्गत। आचार्यप्रवर के अनुसार आदर्श चित्रण में हम या तो यहाँ से वहाँ तक सात्त्विक वृत्ति का निर्वाह पायँगे या तामस की प्रकृतिभेदसूचक अनेकरूपता उसमें न मिलेगी। सीता, राम, भरत, हनुमान्—ये सात्त्विक आधार का तथा रावण तामस आधार का प्रतिनिधित्व करते हैं।[१८] कहना न होगा कि शुक्लजी का यह विभाजन सात्त्विक, राजस और तामस—इन तीन प्रकृतियों के अनुसार है। मानस के चरित्रों में दशरथ, परशुराम, विभीषण, मन्दोदरी जैसे पात्र बीच में स्थित हैं जो अपने परिवेश में असत् से सङ्घर्षरत हैं। विकृत परिवेश में रहते हुए भी वे अपनी सात्त्विक प्रवृत्ति का त्याग नहीं करते।

श्री रामरतन भटनागर ने तुलसी के चरित्र–चित्रण के निम्नाङ्कित छह आधार बतलाये हैं—

१. वाल्मीकीय रामायण का यथार्थ चित्रण।
२. अध्यात्म रामायण की धर्म एवं भक्ति–प्राणता।
३. तुलसी की भक्ति–भावना।
४. आदर्श मानव चरित्र उपस्थित करने की भावना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

५. तुलसी का यथार्थ निरीक्षण।
६. मूर्तिमत्ता।[१९]

मानस के सभी पात्रों का लौकिक चित्रण भक्ति रूप से समन्वित है। सभी पात्रों में संयत स्वभाव एवं गम्भीरता का समावेश है। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने मानस के चरित्र चित्रण का निम्नाङ्कित ढंग से विश्लेषण किया है– "वह (मानस) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की मर्यादाशीलता से मर्यादित है, पतिप्राणा विदेहनन्दिनी के प्रसिद्ध पतिव्रत–प्रसङ्ग से प्रतिष्ठाप्राप्त है, भारत–भूविभूषण महाप्राण भरत की भक्ति से महाप्राणित है, और तेजस्वितामूर्ति सुमित्रासुवन की चकितकरी तेजस्विता से तेजःपुञ्ज कलेवर है। उसमें सत्यव्रत महाराज दशरथ जैसे आदर्श पिता का, नितान्त तरलहृदया औदार्यमयी कौशल्या जैसी आदर्श माता का, आत्मोत्सर्गव्रतरता सुमित्रा जैसी आदर्श सपत्नी का, लोकोत्तर प्रेमपरायणा पूजनीया जनकजा जैसी आदर्श पत्नी का, आत्मत्याग मन्त्र से प्रसिद्ध देवता भरत और सुमित्राकुमार जैसे आदर्श भ्राता का और सेवा समान कठोर धर्म के कर्मठ व्यक्ति पवनकुमार जैसे आदर्श सेवक का उदात्त चरित बहुत ही ज्वलन्त भाषा में, बहुत ही निपुणता के साथ वर्णित है।[२०]

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ "हिन्दी साहित्य की भूमिका" में मानस के चरित्र–चित्रण के सम्बन्ध में जो विचार प्रस्तुत किये हैं, वे प्रशंसनीय हैं और याथातथ्य भी हैं। उनके मतानुसार "चरित्र चित्रण में तुलसीदास अतुलनीय हैं उनके सभी पात्र हाड़–मांस के बने हमारे ही जैसे जीव हैं। उनमें जो भी अलौकिकता है वह भी मधुर और समझ में आने योग्य है। उनके पात्रों के प्रत्येक आचरण में कोई न कोई विशेष लक्ष्य होता है। मानव जीवन के किसी न किसी अङ्ग पर उनसे प्रकाश पड़ता है या किसी न किसी सामाजिक या वैयक्तिक कुरीति की तीव्र आलोचना व्यक्त होती है, या मानव–मानव में सद्भावना की पुष्टि की ओर सङ्केत रहता है। लीला के लिये लीलागान उन्होंने कहीं नहीं किया। वे आदर्शवादी थे और अपने काव्य से भावी समाज की सृष्टि कर रहे थे।"

"मानस मीमांसा" के प्रणेता रजनीकान्त शास्त्री ने, जिन्हें मानस का निष्पक्ष समालोचक कहा जाता है, भी उक्त ग्रन्थ में मानस की अलौकिक लोकप्रियता का उल्लेख करते समय चरित्र–चित्रण की विशेषताओं का उलेख किया है–"महाकवि ने हर्ष–विषाद, राग–द्वेष, प्रसन्नता–क्रोध आदि विविध मनोवृत्तियों के चित्रण में आश्चर्य कर दिखाया है। रामायण के पात्रों के साथ–साथ पाठकजन भी उनके हर्ष में हँसते, विपत्ति में रोते, प्रेमी जनों के साथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रेम करते, प्रसन्न होते तथा समय पड़ने पर क्रोध करते हैं। इतना ही नहीं, अपितु वे पात्रों के अस्तित्व में अपना अस्तित्व लीन कर देते हैं और अपने को उनके समकालीन समझ रामायण–वर्णित घटनाओं का अनुभव प्रत्यक्ष–सा करने लगते हैं।

डॉ० रामचरण महेन्द्र ने, जिन्होंने हिन्दी महाकाव्यों एवं हिन्दी के महाकाव्यकारों पर अन्वेषण किया है, विश्रुत महाकाव्य रामचरितमानस को हिन्दी साहित्य का सर्वगुणसम्पन्न काव्य ग्रन्थ स्वीकार किया है और इसका कारण इन्होंने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टिसमन्वित चरित्र चित्रण ही माना है। इन्होंने कहा है—"मनुष्य स्वभाव से उनका सर्वाङ्गीण परिचय था। भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में पड़कर मन की क्या दशा होती है? इसको वे भलीभाँति जानते थे। इसी से उनका चरित्रचित्रण बहुत पूर्ण और दोषरहित हुआ है। "रामचरित" में प्रायः सभी प्रकार के चरित अङ्कन में उन्होंने अपनी सिद्धहस्तता दिखायी है। जिस पात्र का जो स्वभाव देना उन्हें अभीष्ट है, उसे उन्होंने कोमल वय में बीज रूप में दिखलाकर आगे बढ़ते हुए भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में उसका नैसर्गिक विकास दिखाया है।

तुलसीदास ने इन चरित्रों द्वारा लोकसंग्रह एवं मर्यादावाद, सत्य की रक्षा और प्रतिज्ञा के पालन के उच्चतम आदर्श उपस्थित किये हैं। मानव जीवन के कोने–कोने तक उनकी पहुँच रही है। पात्रों के प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक परीक्षण या नाटकीय चारित्रिक विश्लेषण में वे पूर्णतः सफल हो रहे हैं।"[२१]

स्वभाव और आचरण के संयोग से किसी पात्र की चारित्रिक विशेषताएँ आकार पाती हैं। स्वभाव की अभिव्यक्ति आचरण द्वारा होती है। स्वभाव में स्थिरता तथा आचरण में गतिशीलता होती है। कभी–कभी स्वाभाविक प्रवृत्ति के ठीक विपरीत परिस्थितियों की जटिलताओं में कसने के कारण कोई व्यक्ति ऐसा आचरण कर बैठता है, जिसकी अपेक्षा उससे नहीं की जाती। यह अपवाद है। मूलतः स्वभाव के अनुकूल ही आचरण होता है। हाँ, यह अवश्य है कि यही आचरण अभ्यास या प्रकृति बनकर स्वभाव भी बन सकता है। कवियों को स्वाभाविक और जीवन्त चरित्र–चित्रण में कम सफलता मिलती है। किसी चरित्र की समग्र विशेषताओं के उद्घाटन के लिये काव्य–फलक का विस्तृत और व्यापक होना आवश्यक है। मुक्तकों या गीतों में समग्र को नहीं उभारा जा सकता। मानस के महाकाव्योचित कलेवर में समग्र चरित्र–चित्रण की पर्याप्त सम्भावना रही है और गोस्वामीजी स्वभाव–कल्पना में पूर्ण सफलमनोरथ भी रहे हैं। हिन्दी साहित्य में गोस्वामी जी के अतिरिक्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस क्षेत्र मे किसी दूसरे कवि की प्रतिभा अपना उन्मेष नहीं दिखा सकी है। यह इसलिये कि रामचरितमानस की तरह भावों की विविधता के चित्र कतिपय प्रबन्धों मे ही सुलभ होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसीलिये बड़े पते की बात कही है कि चारण और सूफी कवियों की प्रबन्ध–रचना में इतने भिन्न भिन्न प्रकृतिस्थ स्वभाव नहीं दिखायी पड़ते जिन्हें हम किसी व्यक्ति या समुदाय विशेष का लक्षण कह सकें।[१८]

स्वभाव की दृष्टि से मानस के चरित्र तीन प्रकार के हैं—आदर्श स्वभाव वाले, असामान्य स्वभाव वाले और सामान्य स्वभाव वाले। इस ग्रन्थ के आदर्श चरित्र के पात्रों में व्यक्ति और समष्टि का मञ्जुल समन्वय तो है ही, साथ ही साथ उनमे सात्त्विक प्रकृति और लोकमङ्गलवादी चेतना का सुन्दरतम सामञ्जस्य भी है। राम, भरत, सीता और कौशल्या इसी तरह के चरित कहे जा सकते हैं।

असामान्य चरित्र वाले पात्रों की विशेषता में यह बात लक्ष्य करने की है कि उनमें किसी भाव–विशेष के प्रति अत्यधिक आग्रह है। उनमें एक प्रवृत्ति का ही प्राधान्य है, अर्थात् उनमें या तो स्वार्थ भावना का ही उत्कर्ष है या परमार्थ की भावना का। रावण यदि पहले का प्रतिनिधि है तो लक्ष्मण दूसरे का। भरत लोकमतविमुख कभी भी नहीं हो पाते, जबकि लक्ष्मण राम की हितसाधना में लोक–धर्म के विरुद्ध भी आचरण कर बैठते हैं।

सामान्य स्वभाव के पात्रों की यह विशेषता है कि इनके चरित्र–विकास में परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। इनके भावों एवं विचारों में एकरूपता इसलिये नहीं रहती कि वे किसी ठोस नैतिक सङ्कल्प के प्रति प्रतिबद्ध नहीं हो पाते। दशरथ, विभीषण, कैकेयी, मन्थरा इसी कोटि में रखे जा सकते हैं।

चरित्र–चित्रण की महत्ता उसे जीवन्तता प्रदान करने में है; जन–सामान्य के लिये दिशानिर्देशक होने में, स्वभाव एवं आचरण की स्वाभाविकता एवं विश्वसनीयता की रक्षा करने मे है।

आधुनिक युग में चरित्रसम्बन्धी परिकल्पना पूरी तरह से परिवर्तित हो गयी है। उसके अनुसार कोई मनुष्य न तो आदि से अन्त तक सात्त्विक होता है न राजसी और न तामसी ही। ये सभी प्रवृत्तियां किसी व्यक्ति के चरित्र में मिश्रित होती हैं। परिस्थितियों में पड़ जाने से इनमें उभार आता है। स्वाभाविक चरित्रचित्रण वह है जिसमें उतार–चढाव न हो। व्यक्ति का चरित्र–निर्माण परिवेश तथा व्यक्ति के आन्तरिक स्वभाव के सामञ्जस्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। परिस्थितिविशेष में कोई अपने सङ्कल्प या नैतिकता के प्रति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कितना स्थिरचित्त रह सकता है, इसी के आधार पर उसके चरित्र की अवधारणाएँ बनती हैं। नैतिक दृष्टि से पाठकवर्ग धर्म, समाज और लोक–मर्यादा की तुला पर चरित्र की परीक्षा करने में अभ्यस्त होता है। आज का मनोविज्ञान यह सिखाता है कि जितने मनुष्य हैं उतने प्रकार के उनके चरित्र भी हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में इस प्रकार का यथार्थवादी चरित्र–चित्रण नहीं के बराबर हुआ है। उसमें प्रायः ऐसे ही चरित्र सुलभ होते हैं जो धर्म और नैतिकता की दृष्टि से या तो आदर्श (धीरोदात्त) है अथवा असंस्कृत और निम्न कोटि के (धीरोद्धत और अधीरोद्धत) या तो व्यक्तिवादी और सुकुमार वृत्तिवाले (धीरललित) हैं, अथवा त्यागी, विरक्त या साधु प्रकृतिवाले (धीरप्रशान्त)। परवर्ती काल के भारतीय साहित्य में तो प्रायः सभी चरित्रों को इन्हीं चार ढाँचों में ढालकर निर्मित किया जाने लगा। अतः यह तो स्पष्ट है कि सभी प्रकार के चरित्र इन्हीं चार वर्गों में नहीं समा सकते।

फिर भी शास्त्रीय प्रबन्ध–काव्य की विशेषताओं से निर्दिष्ट एवं नियमित होने के कारण रामचरित मानस की चरित्र–योजना का विश्लेषण परम्परा की परिपाटी के परिप्रेक्ष्य में न्यायसङ्गत हैं।

लक्ष्मण–चरित्र का वैशिष्ट्य

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कि स्वभाव की दृष्टि से मानस के चरित्र तीन प्रकार के हैं—आदर्श स्वभाव वाले, असामान्य स्वभाव वाले और सामान्य स्वभाव वाले। असामान्य स्वभाव वाले चरित्रों की विशेषता यह है कि वे किसी भावविशेष के प्रति अत्यधिक आग्रहयुक्त हैं। उनमें एक ही प्रवृत्ति का प्राधान्य है। या तो उनमें स्वार्थ–भावना का ही उत्कर्ष होता है या परमार्थ–भावना का। रावण पहली प्रवृत्ति का प्रतिनिधि है और लक्ष्मण दूसरी प्रवृत्ति का। लक्ष्मण के सम्पूर्ण चरित्र में राम की हित–साधना की ही प्रधानता है। लक्ष्मण का सम्पूर्ण चरित्र 'रामहित' की भावना से ओत–प्रोत है। लक्ष्मण का चरित्र राम में ही समाहित एवं अभिन्न दृष्टिगत होता है। लक्ष्मण का सौन्दर्य, तेज और शूरता राम के ही समान थी। स्वयं तुलसीदास ने मानस में दोनों भाइयों को सुन्दर वर, शोभा के धाम, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेद से वन्दित, गो–ब्राह्मणसमूह के प्रेमी, माया से मनुष्य का रूप धारण किये हुए, सद्धर्म के लिये कवचरूप, हितकारी, सीता की खोज में तत्पर, रघुकुल में श्रेष्ठ कहा है—

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ,
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ,
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः[1]॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्ष्मण का शारीरिक सौन्दर्य मनमोहक है। उनमें लावण्य है, कमनीयता है और वे सुख के आगार हैं। राम के रूप की भाँति इनका भी रूप प्रशंसनीय है—

राजकुँवर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लही दुति मरकत सोने।।

शारीरिक सौन्दर्य के साथ ही दोनों भाई वीर हैं और धनुर्विद्या पर उनका अधिकार है—

कह कोसलाधीस द्वौ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता।।

सात्त्विक, राजस, तामस सभी प्रवृत्तियों के पात्र लक्ष्मण के अप्रतिम लावण्य पर मुग्ध हो उठते हैं। राम की सभी कृतियों में सहायक हैं। राम की सम्पूर्ण क्रिया–सिद्धि के हेतु हैं। मानस के प्रारम्भ में तुलसी ने लक्ष्मण के इसी रूप की वन्दना की है। राम की विमल कीर्त्ति रूपी पताका के वे दण्ड के समान हैं—

रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका ।।[१]

इनके चरित्र को स्वयं तुलसीदास ने विशिष्ट बना दिया है। वन्दना–खण्ड में जहाँ इन्होंने सबकी वन्दना एक दो पंक्तियों में की है, वहीं लक्ष्मण की वन्दना चार पंक्तियों में की है और उनके चरित्र के दस विशेषणों को उद्धृत किया है। वे शीतल, सुभग और भक्तजन को सुख देने वाले हैं, कृपा के सागर हैं—

बंदउ लछमण पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता ।।
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका ।।
सेष सहस्त्रसीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन ।।
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर ।।[१]

मानस के नायक राम हैं और लक्ष्मण का सम्पूर्ण जीवन राम की भक्ति, निष्ठा और मर्यादा की रक्षा में ही लिप्त है। बाल्यावस्था से ही राम के प्रति उनके हृदय में अनन्य प्रेम भरा हुआ है और उस प्रेम को आजीवन अपने हृदय में धारण किये रहना लक्ष्मण का लक्ष्य है। सम्पूर्ण मानस में लक्ष्मण इसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु रत हैं। बाल्यावस्था में उनके हृदय में राम के प्रति निहित रति का अनुपम विकास किस प्रकार हुआ है— यह मानस में दर्शनीय है—

बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी ।।

— — —　　— — —　　— — —　　— — —

तुलसी प्रभुहिं सिख देई आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई ।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

--- --- --- ---

ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ।।

--- ---

भेटेंउ तनय सुमित्रां राम चरन रति जानि।

लक्ष्मण का बाह्य सौन्दर्य केवल कनक की भाँति कान्तिमान् ही नहीं, उसमें सुवर्ण–सुगन्धि का संयोग भी है। लक्ष्मण के चरित्र–चित्रण में स्पष्टता, यथार्थता, तेजस्विता का समन्वय तो है ही, इसके साथ–साथ राम के अभिन्न प्रेमी "चातक चतुर राम स्याम घन के" रूप में भी उनका सौन्दर्य रस प्रतिपूर्ति बन गया है। मर्यादापालन, धर्मधुरीणता के साथ–साथ यशःप्रभा से आलोकित चरित्र किसी भी प्रकार से कम नहीं है। उनके हृदय में भक्ति, ज्ञान और कर्म की समन्वयात्मिका त्रिवेणी निरन्तर प्रवाहित होती दृष्टिगत होती है।[१७] सतत उत्प्रेरक रघुवंशविभूषण श्रीराम के भी प्रेरक लक्ष्मण बनें। लक्ष्मण का यह स्वरूप वस्तुतः श्लाघनीय है।

लक्ष्मण राम के अनन्य सेवक हैं और साथ ही ओजस्वी भी और उनके ओजस्वी रूप का दिग्दर्शन वहीं होता है जहाँ राम के सम्मान, राम के यश, राम के बल का किसी प्रकार अपमान किया जाता है। ऐसे स्थलों पर लक्ष्मण के उग्र रूप का चित्रण मानस में मिलता है, जिसके कारण आलोचक उनके चरित्र में क्रोधी, चपल, उद्धत और उद्दण्ड आदि शब्द जोड़ देते हैं, किन्तु तथ्य है कि लक्ष्मण स्वभाव से मधुर, कोमल और भक्तवत्सल हैं, किन्तु रामकीर्ति में अपयश का सङ्केत मिलने पर वे ऐसे क्रोधी हो जाते हैं जैसे अग्नि प्रज्वलित हो उठी हो। लक्ष्मण का चरित्र चन्दन की भाँति शीतलता प्रदान करने वाला है, किन्तु चन्दन में छिपी हुई शीतल अग्नि अत्यधिक घर्षण से जिस प्रकार अपना बाह्य विध्वंसक रूप प्रकट करती है, उसी भाँति लक्ष्मण का मन भी राम–सम्मान के विरुद्ध बात सुनकर अत्यधिक मानसिक सङ्घर्षण के कारण उद्वेलित हो उठता है। सम्पूर्ण मानस में लक्ष्मण ने वहीं क्रोध किया है या अपने ओजस्वी रूप का प्रदर्शन किया है, जहाँ राम या राम के सम्मान को आघात (ठेस) पहुँचाने का प्रयास किया गया है। पृथक् से लक्ष्मण ने अपने चरित्र के विषय में केवल एक बार कहा है जिससे उनके चरित्र की उत्कृष्टता का मापन किया जा सकता है–

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ।।

योगिराज जनक की सभा में जनक द्वारा "वीर विहीन मही मैं जानी" कहने पर लक्ष्मण का हृदय तिलमिला उठा। राम–यश का तिरस्कार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुनकर क्रोध से उनके अधर फड़कने लगे और जनक द्वारा अज्ञातावस्था में व्यक्त की गयी उपेक्षा को वे सहन नहीं कर सके। सभा के औचित्य को भूल गये और भरी राजसभा में वे सिंहगर्जन कर बैठे—

रघुबंसिन्ह महुं जहं कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई ॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी ॥

उनकी इस ललकार में यद्यपि ओजोगुणमय गर्वोक्ति प्रवाहित हो रही है, परन्तु इसके साथ ही साथ उनकी निरभिमानिता भी स्पष्टतः परिलक्षित हो रही है; क्योंकि वे आत्मगौरव का मूलप्रेरक "प्रभु प्रताप" ही बतलाते हैं।

तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।

और प्रभु का सङ्केत पाते ही लक्ष्मण अत्यन्त संयत, शान्त हो जाते हैं, इसलिये उनके चरित्र में उच्छृङ्खलता का दोष नहीं लगाया जा सकता। प्रत्येक कार्य–सम्पादन के समय उनकी दृष्टि प्रभु राम के अनुभावों पर लगी रहती थी और सदा उनके सङ्केत की प्रतीक्षा किया करते थे।

इसी भाँति धनुर्भङ्ग के पश्चात् परशुराम ने जब धनुर्भङ्गकर्ता के वध की धमकी दी तो अपने स्वामी के प्रति ऐसे शब्दों को सुनकर लक्ष्मण का हृदय क्षुब्ध हो गया।

लक्ष्मण और परशुराम संवाद में लक्ष्मण ने अपनी सहनशीलता और वाग्विदग्धता का परिचय दिया है। प्रस्तुत प्रसङ्ग में डॉ. विद्या मिश्र का मत उल्लेख्य है—

".........उक्त संवाद में लक्ष्मण की निर्भीकता, साहस, मर्यादा एवं विनयशीलता वस्तुतः श्लाघनीय है। यद्यपि उन्होंने इस प्रसङ्ग में अपनी असहिष्णुता का परिचय दिया, परन्तु अपने स्वामी के लिये वाचाल बन जाना ही उन्होंने श्रेयस्कर समझा और प्रभु की गम्भीरता की सुरक्षा हो गयी। यद्यपि इसके विनिमय में उन्हें "छोट कुमार खोट बड़ भारी" की उपाधि से पुरस्कृत होना पड़ा, परन्तु अपने स्वामी का हितचिन्तन करते हुए अनन्य सेवक लक्ष्मण के लिये यह उपाधि दूषण नहीं, अपितु भूषण सिद्ध हुई। उक्त कार्यों द्वारा उन्होंने अपने यश का बलिदान कर प्रभु के विरद की रक्षा की। बहुत कुछ सम्भव था कि यदि लक्ष्मण भी राम की भाँति नम्र एवं मौन बने रहते तो सभी कपटी राजा परशुराम की उग्रता का आश्रय लेकर एक महायुद्ध आमन्त्रित कर देते जिससे रङ्ग में भङ्ग तो उपस्थित होता ही, साथ ही राम की मौन गम्भीरता की यशःपताका न फहरा पाती। इस प्रकार अपने वाग्युद्ध से उन्होंने अत्यन्त निपुणता से परिस्थिति को संभाला। अन्ततः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रौद्ररस वर्षा करने वाले भृगुपति को भी उनके महान् व्यक्तित्व का परिचय पाकर क्षमायाचना करनी पड़ी—छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता।''[१७]

आदर्श भक्त, अनन्य सेवक के रूप में लक्ष्मण के चरित्र का दिग्दर्शन राम—वनगमनप्रसङ्ग में विशेष उत्कृष्ट रूप में पाया जाता है। मानस में वन—गमन के पूर्व के प्रसङ्ग में लक्ष्मण के चरित्र का मर्यादित और उनके प्रेमाभक्ति के भावात्मक स्वरूप का चित्रण किया गया है। ''वारेहि ते निज हित पति जानी'' का भाव राम के प्रति रखने वाले लक्ष्मण अपने स्वामी के विरह को नहीं सह सकते; क्योंकि जहाँ स्वामी हैं वहीं सेवक हैं उनसे पृथक् होकर लक्ष्मण को शान्ति किस प्रकार मिल सकती है। मानस में इस प्रसङ्ग के अन्तर्गत उनके अनन्य प्रेम की सरस झाँकी दर्शनीय है। अपने स्वामी के विरह का आभास होते ही उनकी दशा विलक्षण हो गयी। प्रेम के चरमतम प्रतीक जल—विहीन मीन की भाँति हो गयी। उनकी छहों इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। लक्ष्मण को जब राम—वनगमन का समाचार मिलता है तब वे व्याकुल हृदय से बिलखते हुए दौड़ पड़ते हैं। हृदय कम्पित हो उठता है और नयनों में आँसू आ जाते हैं। आतुर हृदय से काँपते हुए हाथों से प्रभु के चरणों को पकड़ लेते हैं। इस प्रकार अनेक सात्त्विक भावों का उदय उनके हृदय में एक साथ हो गया। तुलसीदास के शब्दों में ही—

समाचार जब लछिमन पाए। व्याकुल बिलख बदन उठि धाए ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥

कण्ठ अवरुद्ध हो जाने से उनके मुख से वाणी नहीं निकल सकी। ऐसे ही अवसर पर धर्मधुरीण राम उन्हें कर्तव्य ज्ञान कराने लगे[१], किन्तु ज्ञानोपदेश से लक्ष्मण की व्याकुलता और बढ़ गयी और लक्ष्मण ने प्रेमपरिप्लुत हृदय से अपनी वास्तविकता अपने स्वामी के समक्ष खोलकर रख दी। अविचल शरणागत अनन्य प्रेम के आगे प्रभु के समस्त तर्क स्तब्ध हो गये; क्योंकि वह तो केवल प्रभु—स्नेह में ही प्रतिपालित मरालवत् थे। वहाँ तो उनके सर्वस्व राम थे। वे मन—कर्म—वचन से चरणरत थे। जब राम तर्कहीन हो गये तो उन्हें अपने अनन्यप्रेमी से कहना ही पड़ा कि जाकर माँ से आज्ञा लो—

मांगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥

लक्ष्मण को जन्म देने वाली माँ इस समाचार से गद्गद हो उठी और कहा कि यह तुम्हारा अहोभाग्य है कि तुम्हें राम की सेवा का अवसर मिल सका है। तुम अपनी अविरल भक्ति से राम की सेवा करना—

तातु तुम्हारि मातु वैदही। पिता रामु सब भाँति सनेही ॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काज छकु नाहीं ॥
गुर पितु मातु बंधु सुर सांई। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं ॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें ॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू ॥

इस प्रकार के उच्चादर्शों की गोद में खेले हुए लक्ष्मण माँ के चरित्र से भी आगे बढ़ जाते हैं और अपने को भाग्यशाली मानकर आह्लादपूर्ण हृदय से राम के साथ वनगमन करते हैं—

बागुर विषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस ।

इस प्रकार वे सेवा धर्म के परमाचार्य बनकर शुद्ध उपासना के मूल तत्त्वों को क्रियात्मक रूप प्रदान करने के लिये वन चल दिये।

अरण्य की निवास–अवधि में उनकी प्रतिफल और प्रतिक्षण की सेवा–परायणता स्तुत्य है। वहाँ उन्होंने राम और सीता की सेवा उसी प्रकार से की जिस प्रकार विवेकरहित अपने शरीर की सेवा करता है—

सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहिं । जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं ॥

अरण्यवास की प्रथम रात्रि से ही निरन्तर लक्ष्मण की जागरूकता तथा भाई में अटल विश्वास सराहनीय है। उन्होंने प्रथम रात्रि गुह के साथ आध्यात्मिक संवाद में व्यतीत की। उन्होंने "ज्ञान विराग भगति रस सानी" वाणी द्वारा निषाद का कैकयी के प्रति व्यक्त क्षोभ का प्रशान्त किया कर्मयोग का विवेचन, मोहनिशा की व्याख्या, परम परमार्थस्वरूप रामभक्ति का निष्कर्ष, प्रभु के अलख, अनादि, अनूप रूप का तात्त्विक निरूपण, प्रभु अवतार का कारण तथा उनके चरित–श्रवण का माहात्म्यादि वर्णित कर निषाद को "रघुबीर चरन रत" होने का उपदेश देकर अपने परम विज्ञानी स्वरूप का परिचय दिया है।[1] चित्रकूट में रहकर लक्ष्मण ने राम की अनवरत सब प्रकार की सेवा की। मन, कर्म, वचन से उन्होंने जो राम की सेवा की उससे उनके शील और स्नेह में और अधिक निखार आ गया—

सेवहिं लखन करम मन बानी । जाई न सीलु सनेह बखानी ॥
छिनु छिनु लखि सिय राम पद, जानि आपु पर नेहु ।
करत न सपनेहुं लखन चितु, बन्धु मातु पितु गेहु ॥

माँ से "जेहि न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इ उपदेसू" की दीक्षा लेकर वन में आये हुए सतत प्रभु–मुखानुभावों के निरीक्ष लक्ष्मण, श्रीमुख के भाव परिलक्षित देख अत्यन्त व्याकुल हो उठे—

लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारू । कहत समय सम नीति बिचारू ।

उनके प्रेमी स्वभाव ने तुरन्त भरत को आक्रमणकारी मान लि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और प्रभु के विरोध में आए हुए भरत का नहीं, सहोदर अनुज का भी वध करने के लिये तत्पर हो उठे–

रामनिरादर कर फलु पाई । सोवहुँ समर सेज दोऊ भाई ॥

प्रेमी भक्त की दृष्टि में व्यक्ति का नहीं, प्रेम और प्रेमास्पद का ही महत्त्व रह जाता है। सच्चे प्रेमी की ममत्वहीनता और दृढ़चित्तता का इससे बढ़कर ज्वलन्त प्रमाण क्या मिल सकता है! इससे इस बात की पुष्टि हो जाती है कि लक्ष्मण का सर्वस्व सम्बन्ध राम–प्रेम ही था।

इनके चरित्र के विषय में राक्षसों को भी ज्ञात था कि लक्ष्मण अपने भ्राता के लिये प्राणोत्सर्ग कर सकते हैं और इनकी वीरता का भी ज्ञान था कि वे इतने शूरवीर हैं कि राक्षसों का विनाश निमिषमात्र में ही कर सकते हैं।

स्वभाव से उग्र, चपल, स्पष्टवादी एवं वीर लक्ष्मण अपने कर्त्तव्य क्षेत्र में एक विनीत, त्यागी, आत्मनिष्ठ, संयत और अनन्य आज्ञापालक सेवक भी हैं। इन दो विरोधी प्रकृतियों का संयोग आपके चरित्र में स्वर्ण–सुगन्धिसंयोग प्रस्तुत करता है।[७]

मानस के लक्ष्मण ने कभी भाग्यवाद का आश्रय नहीं लिया है, अपितु "दैव–दैव आलसी पुकारा" कह कर कर्मवाद का समर्थन किया है। इनका सम्पूर्ण चरित्र सभी प्रकार की कामनाओं से रहित, निर्मल, स्वच्छ एवं शीतलता प्रदान करने वाला है। सांसारिक ऐश्वर्य की पूर्णरूपेण अवहेलना कर उन्होंने भगवद्भक्ति पर बल दिया है। उनके जीवन का आदर्श "मोरे सबै एक तुम्ह स्वामी" का पालन करना है। यही कारण है कि मानस के लक्ष्मण का व्यक्तित्व अनुपम है और वे मूर्तिमान् वैराग्य हैं–

सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन कुटीर ।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु, सोहत धरें सरीर ॥

इस दोहे में कथित उत्प्रेक्षा उनके जीवन को पूर्णरूपेण चरितार्थ करती है। उनके जीवन का सारतत्त्व वशिष्ठजी ने नामकरण के समय ही विचार लिया था। अतएव–

लच्छन धाम रामप्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तृतीय अध्याय

'लक्ष्मण' शब्द और उसकी अर्थ-व्युत्पत्ति

- 'लक्ष्मण' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ
- 'लक्ष्मण' शब्द की दार्शनिक व्युत्पत्ति
- लक्ष्मण के पर्याय
- तुलसी-साहित्य में प्रयुक्त लक्ष्मण के विशेषण
- तुलसी-साहित्य में प्रयुक्त लक्ष्मण के उपमान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तृतीय अध्याय

'लक्ष्मण' शब्द और उसकी अर्थ-व्युत्पत्ति

'लक्ष्मण' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ:

"संज्ञा शब्द संज्ञी का परिचायक होता है"—इस सिद्धान्त के आधार पर संज्ञा का विश्लेषण करना आवश्यक है। संज्ञी के अनुरूप जब संज्ञा होती है तब उसे 'अन्वर्थ संज्ञा' कहते हैं।

शब्द ही जगद्व्यवहार का आधार बनता है, संस्कृत व्याकरणशास्त्र के विशिष्ट विद्वान् भर्तृहरि के मतानुसार अर्थ शब्द का विवर्त होता है—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥

(वाक्यपदीय १/१/१)

अतः लक्ष्मण—चरित्र का अनुशीलन करते हुए 'लक्ष्मण' शब्द की व्याकरण की दृष्टि से व्युत्पत्ति, अर्थ और उनके पर्यायों, उपमाओं का शब्दशास्त्रीय विश्लेषण आवश्यक है।

पाणिनि व्याकरण के अनुसार 'लक्ष्मण' शब्द की व्युत्पत्ति यों की जा सकती है—लक्ष्मी शब्द से मत्वर्थीय सूत्र "लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः" (५/२/१००) के अनुसार, पामादिगण में पठित होने के कारण, लक्ष्मी शब्द से "न" प्रत्यय होता है। गणसूत्र "लक्ष्म्या अच्च" से लक्ष्मी शब्द के ईकार को अत् प्रत्यय करके प्रत्ययान्त नकार को "अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि" सूत्र से "ण" बनाकर "लक्ष्मीः अस्ति अस्य" (पा० सू० पा०·८/२/४) इस विग्रह से "लक्ष्मण" शब्द बनता है।

शब्दकल्पद्रुम में बतलाया गया है कि "लक्ष्मणमस्ति अस्य" इस विग्रहवाक्य के "अर्शआदित्वादच्" के अनुसार "अच्" प्रत्यय होकर 'लक्ष्मण' शब्द बनता है।[१]

अतः प्रथम प्रकार की व्युत्पत्ति से लक्ष्मण शब्द के लक्ष्मीयुक्त, शोभायुक्त, श्रीयुक्त आदि अर्थ प्रकट होते हैं और द्वितीय प्रकार की व्युत्पत्ति से शुभलक्षण वाला अर्थ स्पष्ट होता है।

वाचस्पत्यम् के अनुसार "लक्ष" में जब "मनिन्" प्रत्यय लगता है तब "लक्ष्मन्" शब्द बनता है[२]।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसका अर्थ अमरकोश के अनुसार "चिह्न" या "प्रधान" होता है—चिह्ने प्रधाने चामरः, और "स्वार्थे अण्" प्रत्यय होकर "लक्ष्मण" शब्द बन जाता है। उसका अर्थ "दशरथ की कनिष्ठा पत्नी सुमित्रा का ज्येष्ठ पुत्र" होता है। यह पुँल्लिङ्ग है, पर स्त्रीलिङ्ग होने पर, हेमचन्द्र के अनुसार सारस पक्षी अर्थ भी होता है।

मेदिनीकोश के अनुसार औषधविशेष में भी इस शब्द का स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग मिलता है।

दशरथ के अपत्य के रूप में लक्ष्मण शब्द की व्युत्पत्ति समुचित नहीं है। "लक्ष्मण" शब्द का संज्ञा होने से दशरथापत्य रूप में रूढ़ि अर्थ ही स्वीकार करना चाहिये। लक्ष्मी=शोभा=श्री=शुभ लक्षणों से युक्त अर्थ में ही अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार किया है। यहाँ आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक—तीनों प्रकार की लक्ष्मी से युक्त अर्थ रामसेवारूपी शुभ लक्षण, रामभक्ति रूपी लक्ष्मी से युक्त अर्थ ही अधिक समीचीन है।

इसी भाव से प्रेरित होकर वाल्मीकीय रामायण के प्राचीन टीकाकार गोविन्दराज ने नामकरणप्रसङ्ग में लक्ष्मण की व्याख्या करते हुए लिखा है—

"रामकैङ्कर्यलक्षणसम्पद्युक्तत्वाल्लक्ष्मणः"।(१/१८/२२)

अर्थात् गोविन्दराज भी सिद्धान्त रूप से यह स्वीकार करते हैं कि "शुभलक्षणयुक्त" अर्थ में 'लक्ष्मण' शब्द की व्युत्पत्ति है। रामसेवारूपी लक्षण-सम्पदा से युक्त है। इसी अर्थ में आगे भी वे लिखते हैं कि "लक्ष्म्या अच्च" से अच् प्रत्यय होकर 'लक्ष्मण' शब्द निष्पन्न होता है। "पामादिगणपाठाधिकारस्याकारः" कहकर वे पामादिगण में लक्ष्मी शब्द का पांठ भी स्वीकार करते हैं।

टीकाकार का यह तर्क भी यथार्थ है कि महर्षि वाल्मीकि भी 'लक्ष्मण' शब्द की व्युत्पत्ति टीकाकार की दृष्टि से ही मानते हैं, अतएव आगे चलकर वे भी "लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नः" कहते हैं।

महाकवि कालिदास ने "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" नाटक में "मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति" कहकर लक्ष्म शब्द को चन्द्र-चिह्न के अर्थ में प्रयुक्त किया है। इस प्रकार लक्ष्मण रामचन्द्ररूपी चन्द्र के चिह्न की शोभा को बढ़ाने वाले कहे जा सकते हैं। तुलसी ने भी इसी भाव से प्रेरित होकर लक्ष्मण को रामकीर्ति-पताका की शोभा बढ़ाने वाले के रूप में कहा है[१]।

अध्यात्मरामायण में—

"भरणाद् भरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम्।
शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत[२३]।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उल्लिखित है। यहाँ भी 'लक्ष्मण' शब्द को 'सुन्दर लक्षणों से युक्त' अर्थ में ही स्वीकार किया गया है।

वैदिक वाङ्मय के अवलोकन से पता चलता है कि उसमें भी इसी अर्थ में तथा इसी के समानार्थक रूप में 'लक्ष्मण' शब्द के अनेक प्रयोग उपलब्ध हैं (ऋग्वेद ५/३३/१०)।

तुलसी ने भी—

लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार।।

कहकर 'लक्ष्मण' शब्द की व्युत्पत्ति "लच्छन धाम" के रूप में स्वीकार की।

संस्कृत हिन्दी कोश के प्रणेता शिवराम आप्टे ने लक्ष्मण का परिचय इस प्रकार दिया है—"लक्ष्मणः—(वि०)। लक्ष्मन्+अण्, न, वृद्धिः; १—चिह्नों से युक्त; २—शुभ लक्षणों से युक्त, सौभाग्यशाली, अच्छी किस्मत वाला। ३—समृद्धिशाली, फलता फूलता—णः। १—सारस; २—सुमित्रा नामक पत्नी से उत्पन्न दशरथ का एक पुत्र। बचपन से ही लक्ष्मण राम में इतना अनुरक्त था कि वह उसकी वनयात्रा में जाने को तैयार हो गया। राम के चौदह वर्ष के निर्वासनकाल में घटित घटनाओं में लक्ष्मण का बड़ा हाथ था। लङ्का के युद्ध में उसने कई बलवान् राक्षसों को, विशेषकर रावण के पुत्रों में अत्यन्त शक्तिशाली मेघनाद को, मार डाला। सबसे पहले तो स्वयं लक्ष्मण ही मेघनाद की शक्ति का शिकार हुआ, परन्तु हनुमान् द्वारा लायी गयी सञ्जीवनी बूटी के उपयोग से सुषेण वैद्य ने उसे फिर जीवित कर दिया। उसका विवाह उर्मिला से हुआ तथा अङ्गद और चन्द्रकेतु नामक दो पुत्र हुए।, णा, हंसिनी, —णम्, १—नाम अभिधाने २—चिह्न, संकेत, निशानी। सम० प्रसूः—लक्ष्मण की माता सुमित्रा[११]।"

लक्ष्मण शब्द के विविध रूप और उनकी व्युत्पत्ति :

तुलसी—साहित्य में लक्ष्मण शब्द के तीन रूप मिलते हैं—लछिमन[I], लखन[II] और लक्खन[III]। परन्तु रामचरितमानस में "लछिमन" और "लखन" ये दो रूप ही प्रयुक्त हैं। 'लक्ष्मण' का विकास ही "लक्ष्मन, लछिमन, लक्खन और लखन" है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के विभिन्न तद्भव रूप हिन्दी में प्राप्त होते हैं। ध्वन्यात्मक परिवर्तन के नियमों के कारण एक ही व्यञ्जन या व्यञ्जनद्वित्व अनेक रूपों में परिवर्तित होता है। यहाँ लक्ष्मण शब्द के "क्ष्म"

I बंदो लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता।। (मानस० १/१६/५)
II लखनु सत्रुसूदन एक रूपा। नख सिख ते सब अंग अनूपा।। (मानस०१/३१०/७)
III जल को गये लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय छाह घरीक ह्वै ठाढ़े।। (कविता० २/११)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के तीन रूपान्तर दिखलायी पड़ते हैं—"ख," "क्ख" और "छिम"। "क्ष" का परिवर्तन "ख" में प्रायः प्राचीन अपभ्रंश और परवर्ती अवहट्ट दोनों में होता रहा है। जैसे "तीक्ष्ण" का "तिखिण", "तृष्णा" का "तखिण" रूप डॉ० भण्डारकर ने परिलक्षित किया है[२४]। अपभ्रंश में भी यह प्रवृत्ति न केवल परिलक्षित होती है, अपितु विभिन्न विकसित रूपान्तर भी दिखलायी पड़ते हैं। ८वीं शताब्दी के अपभ्रंश—कवि सरहप्पा ने "अक्षि" के लिये "अक्खि" का प्रयोग किया है—

"कज्जइ विरहइ हुव वह हो में अक्खि उहाविअ कड्डुवे धुये[२५]"।

उन्होंने ही "क्षेत्र" के लिये "खेत्तु" का प्रयोग किया है। देखिये—

"अक्षर" के लिये "अक्खर" का प्रयोग[२५]।

"अक्खर बाढा सअल जगु, णाहि णिरक्खर कोइ।
ताव से अक्खर घौलिया, जाव णिरक्खर होई[२५]"॥

स्वयंभू ने अपनी रामायण में "अक्खर" प्रयुक्त किया है—

"अक्खर वास जलोह मणोहर[२५]"।

लक्ष्मण के रूपान्तरों का प्रयोग स्वयंभू ने कई बार किया है—

सीय स—लक्खण दासरहि, तरुवर भूले परिठिय जावेंहिं।

हेमचन्द्राचार्य ने अपने प्राकृत व्याकरण के अपभ्रंश भाग के अन्तर्गत "क्षयकाल" के लिये "खय गालि" आदि रूप भी प्रयुक्त किया है जो इस बात का प्रमाण देते हैं कि "क्ष" का परिवर्तन "ख" में या "क्ख" में होता था। किन्तु "क्ष" वाले रूप प्रायः कम मिलते हैं।

अवहट्ट में इस तरह के रूपों का प्रयोग दिखायी पड़ता है। कीर्तिलता में डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है—

"क्ष" का उच्चारण "क्ख" की तरह होता था और लिखने में प्रायः यह "ष्ख" हो जाता था। प्राचीन आर्यभाषा का "क्ष" प्रायः "क्ख" या "छ" के रूप में रूपान्तरित होता है। वर्णरत्नाकर, पदावली (विद्यापति) आदि के प्रयोगों से ज्ञात होता है कि "ष्ख" प्राचीन मिथिला में बहुत प्रचलित था जो लिपि में "क्ख" का प्रतिनिधित्व करता है।

'लक्ष्मण' शब्द की दार्शनिक व्युत्पत्ति

मानस में नामकरण के पश्चात् चारों भ्राताओं को वशिष्ठ ने वेद—तत्त्व कहा है[१]। वेद का तत्त्व सारभूत प्रणव—ओंकार है। माण्डूक्योपनिषद् में प्रणव की तीन मात्राएं वा पाद कही गयी हैं—अकार, उकार और मकार। कुछ विद्वानों ने चार पाद स्वीकार करके अर्धमात्रा भी स्वीकार की है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद् व्याप्नोति (माण्डू०–९)।

अर्थात् इससे जिसका जागरित स्थान है वह वैश्वानर व्याप्ति और आदिमत्त्व के कारण प्रणव की पहली मात्रा अकार है।

स्वप्न जिसका स्थान है, वह तैजस उत्कर्ष तथा मध्यवर्तित्त्व के कारण ओंकार की द्वितीय मात्रा उकार है। यथा–

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोपकर्षादुभयत्वाद् वोत्कर्षति (माण्डू०–१०)।

सुषुप्ति स्थान वाला प्राज्ञ, मान और लय के कारण तीसरी मात्रा मकार है। यथा–

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति (माण्डू०–११)।

और मात्रारहित ओंकार तुरीय है। यथा–अ मात्रा (माण्डू०–१२)।

श्रीरामोत्तरतापिनी उपनिषद् में प्रणव में षडक्षर बताया है। प्रथम अक्षर "अ", दूसरा "उकार", तीसरा "मकार", चौथा अर्ध मात्रता, पाँचवां अनुस्वार (बिन्दु), छठा नाद है।

अकाराक्षरसम्भूतस्सौमित्रिर्विश्वभावनः।

कहकर लक्ष्मण की उत्पत्ति अकार से माना है। इससे लक्ष्मण को विश्व विराट् माना गया है। मानस में इस क्रम का विपर्यय किया गया है। अर्थात् पहले अर्धमात्रा, म, उ और अ के अनुसार नामकरण किया गया है–

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परियातो अध्वरम्।
विश्वान्यन्यो भुवनान्यभिचष्टे ऋतूनन्यो विदधज्जायते पुनः॥

इस वैदिक मन्त्र को समन्वित करते हुए वाल्मीकि के प्राचीन टीकाकार गोविन्दराज ने लक्ष्मण को वसन्तऋतु तथा काल के रूप में भी बतलाया है।

अन्यः लक्ष्मणः ऋतून् विदधानःपुनर्जायते।

अयमर्थः—लक्ष्मणस्य शेषावतारत्वात् शेषस्य च कालात्मकत्वस्य। "योऽयं कालो मयाख्यातस्सोऽनन्तः" इति पुराणादवगतेः।

इस प्रकार शेष का काल के रूप में वर्णन मिलता है। पुनः—

कालस्य चाखण्डदण्डायमानस्य वसन्तप्रमुखर्तुकारणात्
ऋतून् विदधदित्युक्तम्।

इस प्रकार काल का वसन्त के रूप में भी प्रमाण उपलब्ध होता है।

तुलसीदास ने भी लक्ष्मण को काल और वसन्त के रूप में स्वीकार किया है–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कह रघुबीर समुझु जिय भ्राता। तुम कृतांत भच्छक सुर त्राता।।
सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत।

वाल्मीकि रामायण के टीकाकार गोविन्दराज ने लक्ष्मण की विशेष व्याख्या करते हुए कई महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है। लक्ष्मण–शत्रुघ्नौ में प्रथमा विभक्ति द्विवचन के प्रयोग से महर्षि ने दोनों का यमलत्व को सूचित किया है। "अर्धसमन्वितौ" कहकर "अर्द्ध" शब्द की अंशमात्र वाचक रूप में व्याख्या की गई है। "समन्वितचतुर्थभागाष्टमभागरूपौ, अन्यथा पायस–प्रदानक्रमविरोधः" भी कहा गया है।

आगे जो व्याख्या प्रस्तुत की गयी है उसमें लक्ष्मण का विराट् रूप दरसाया गया है—

"अथ भरतजन्मानन्तरं विष्णोरोङ्कारस्य अर्द्धौ अर्द्धांशौ अकाराकारौ, विश्वतेजसौ, विराड्हिरण्यगर्भौ, ताभ्यां समन्वितौ, तदात्मकाविति भावः।"

इसी सन्दर्भ में अथर्वणरामतापनीय में दी गयी प्रणव की व्याख्या का भी टीकाकार ने उल्लेख किया है—

अकाराक्षरसम्भूतस्सौमित्रिर्विश्वभावनः।
उकाराक्षराम्भूतश्शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः।।
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परियातो अध्वरम्।
विश्वान्यन्यो भुवनान्यभिचष्टे ऋतूनन्यो विदधज्जायते पुनः।।

इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए—एतौ श्रीरामलक्ष्मणौ वस्तुतः पुराण–पुरुषोत्तमौ स्वमायया=मायाभिधस्वसत्तया, शिशू=दशरथराजकुमारौ भूत्वा। अध्वरम्= विश्वामित्रयज्ञम् अनेकरक्षोविक्षिप्तं परियातः= प्राप्तौ, रक्षणाय इत्यर्थः। कथम्भूतौ, क्रीडन्तौ=ताटकासुरबाह्वादिवधप्रमुखक्रीडासक्तौ। पुनः कथम्भूतौ? पूर्वापरं चरतः = अग्रजानुजत्वं प्राप्तौ। तयोर्मध्येऽन्य एकः श्रीरामः विश्वानि= सर्वाणि भूतानि, अभिचष्टे=प्रकाशयति। स्वाध्यस्तविश्वप्रकाशहेतुरित्यर्थः।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि लक्ष्मण भी श्रीराम की तरह ही पुराणपुरुषोत्तम है, राम की तरह ही लक्ष्मण की भी शक्ति माया है। विश्वामित्र की यज्ञरक्षा में राम की तरह लक्ष्मण का भी श्रेय है। ताड़का, सुबाहु के वध में भी लक्ष्मण की क्रीड़ा है। "पूर्वापरं चरतः" का तात्पर्य अग्रज तथा अनुज के रूप में होना है, इसकी व्याख्या "लक्ष्मण" के लिये प्रयुक्त पर्याय "अनुज" की व्याख्या के प्रसङ्ग में की जायगी।

"अन्यः लक्ष्मणः ऋतून् विदधत् पुनर्जायते" की व्याख्या करते हुए लक्ष्मण के शेषावतार तथा शेष कालस्वरूप है— इस प्रकार का अर्थ लेने के कारण, वे ही वसन्त आदि ऋतुओं के सर्जक तथा नियामक हैं। पुराणों में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

''योऽयं कालो मयाख्यातस्सोऽनन्तः'' के रूप में काल को शेष तथा अनन्त के रूप में बतलाया गया है। इस मन्त्र में ''पुनः'' का तात्पर्य है—''जब जब श्रीराम जन्म लेते हैं, तब तब लक्ष्मण भी जन्म लेते हैं''।

वस्तुतः लक्ष्मण ही श्रीराम के तत्त्व को जानते हैं—

रामतत्त्वं विजानाति हनुमानथ लक्ष्मणः।

इस प्रकार उल्लेख पुराणों में मिलता है।

नारदपाञ्चरात्र में लक्ष्मण को ''क्षीरसागर'' के स्वामी के रूप में अभिहित किया गया है—

वैकुण्ठेशस्तु भरतः क्षीराब्धीशश्च लक्ष्मणः।
शत्रुघ्नस्तु स्वयम्भूमा रामसेवार्थमागताः॥

'लक्ष्मण' के पर्याय :

रामचरितमानस में लक्ष्मण के अनेक पर्याय प्राप्त होते हैं। लक्ष्मण के पर्यायों की विशिष्ट व्याख्या वर्णक्रमानुसार करते हुए कुछ पर्यायों पर आगे प्रकाश डाला जायगां। रामकथा का उपनायक होने के कारण राम के अतिरिक्त लक्ष्मण के लिये ही मानस में सर्वाधिक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग गोस्वामी जी ने किया है।

१. अनन्त—रामचरितमानस में लक्ष्मण के लिये 'अनन्त' शब्द का प्रयोग केवल लङ्काकाण्ड में किया गया है—

जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा' ॥

मेघनाद से युद्ध करते समय, मेघनादवध के पश्चात् देवताओं की स्तुति में रावण द्वारा मूर्च्छित होने पर तथा रावण—मृत्यु के पश्चात् जानकी द्वारा लक्ष्मण को 'अनन्त' शब्द से सम्बोधित किया गया है। तात्पर्य यह है कि अजेय मेघनाद पर विजय प्राप्त किये विना राम के लिये लङ्का—विजय असम्भव था। इस काण्ड में लक्ष्मण द्वारा अजेय मेघनाद का अन्त हुआ, अतः तुलसी ने इसी काण्ड में लक्ष्मण को 'अनन्त' शब्द से सम्बोधित किया है।

'अनन्त' शब्द की शब्दशास्त्रीय प्रक्रिया तथा अर्थ

संस्कृत में ''नास्ति अन्तो यस्य'' विग्रह से समास होकर न+अन्त=अनन्तः शब्द बनता है। यह पुंल्लिङ्ग शब्द है। 'अनन्त' शब्द साकाङ्क्ष होने के कारण आदि, मध्य तथा अन्त से रहित है। 'अन्त' का अर्थ विनाश भी होता है अर्थात् सबके नष्ट होने पर भी वह नष्ट नहीं होता। इसी भाव से प्रेरित होकर भागवतकार ने—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"लोके नष्टे द्विपरार्द्धावसाने भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः।"

कहकर ईश्वर को ही 'अनन्त' नाम से अभिहित किया है। इस प्रकार अक्षय, विभु, नित्य, निस्सीम– इन अर्थों में 'अनन्त' शब्द की शक्ति मानी जाती है।

मेदिनीकोश में अनन्त का अर्थ विष्णु स्वीकार किया गया है।

हेमचन्द्र ने बलदेव तथा अनन्तजित नामक जैन व्यक्ति भी अर्थ स्वीकार किया है।

शब्दमाला में अनन्त का अर्थ वासुकि लिया है।

राजनिघण्टु में "सिन्दुरवार वृक्ष" अर्थ अनन्त का स्वीकार किया गया है[१२]।

महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव के प्रथम श्लोक में 'अनन्त' शब्द का प्रयोग दो अभिप्रायों से किया है–(१) अपरिमित, अक्षय, निस्सीम अर्थ में, तथा (२) मङ्गलवाचक मानकर मङ्गल के रूप में।

जैसे–

"अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्" (१/३)।

'अनन्त' के अन्य अर्थ :

'अनन्त' के और भी अर्थ होते हैं जो इस प्रकार हैं–१–शिव, २–नागों का पति वासुकि, ३–बादल, ४–कहानी, ५–चौदह ग्रन्थियों से युक्त रेशमी डोरा, जो अनन्त चतुदर्शी के दिन दक्षिण भुजा पर बाँधा जाता है, ६–स्त्रीलिङ्ग होने पर पृथ्वी, ७–अन्तहीन, ८–एक ही सङ्ख्या, ९–पार्वती, १०–अनन्तमूल दूर्वा, ११–आकाश, १२– वातावरण, १३–असीमता, १४–मोक्ष, १५–परब्रह्म, १६–इन्द्र, १७–शेषनाग, १८–अनन्तशय्या पर नारायण, १९–विजय शब्द के साथ युधिष्ठिर का शङ्ख, २०–पार शब्द के योग में विस्तारयुक्त २१–तृतीया के योग में वैशाख, भाद्रपद और मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की तृतीया अर्थ लिया जाता है[११], २२–काल आदि।

'लक्ष्मण' के लिये अनन्त की सङ्गति

उपर्युक्त अर्थों में प्रयुक्त 'अनन्त' शब्द अनेक दृष्टियों से लक्ष्मण के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

१–'अनन्त' का अर्थ जहाँ शेषशायी महाविष्णु है, उसी अर्थ में लक्ष्मण के लिये प्रयुक्त यह शब्द सार्थक है। सर्वमान्य सिद्धान्त की दृष्टि से स्वयं ब्रह्म अंशों के सहित अवतरित होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा[९]।।

यह अंशांशिभाव वस्तुतः ब्रह्म के तादात्म्य को सिद्ध करता है। ब्रह्म की पूर्णता का विभाजन असम्भव होने के कारण तादात्म्य सम्बन्ध से प्रत्येक अंश भी पूर्ण ब्रह्म है। इसी सिद्धान्त की पुष्टि ईशावास्योपनिषद् में भी की गयी है–

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।। (ई०उ०, १/१)

अतः शेषाधीश महाविष्णु के रूप में लक्ष्मण के लिये प्रयुक्त 'अनन्त' शब्द सार्थक है।

२– रामचरितमानस के अनुसार ब्रह्मा की स्तुति पर ब्रह्म द्वारा आकाशवाणी हुई थी कि–

हरिहउं सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई[१]।।

किन्तु वन्दना–प्रसङ्ग में लक्ष्मण के लिये कहा गया है–

सेष सहस्रसीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन[१]।।

तथा विनयपत्रिका में लक्ष्मण की स्तुति करते हुए तुलसीदास कहते हैं–

जयति लक्ष्मणानंत भगवंत भूधर भुजंगराज, भुवनेश भूभारहारी[१]।।

तात्पर्य यह कि इस स्तुति के अन्तर्गत भी भूभारहरण का कार्य लक्ष्मण द्वारा ही प्रतिपादित किये जाने का उल्लेख है। प्रत्यक्षतः लक्ष्मण को भुजगराज, शेषाधीश, भूधर, भुवनेश, साक्षात् भगवान् कहकर लक्ष्मण के लिये अनन्त की सङ्गति प्रतिपादित की गयी है।

२–अनुज–मानस में लक्ष्मण के लिये 'अनुज' शब्द का प्रयोग असङ्ख्य बार हुआ है। 'अनु=पश्चात् जायते' इस अर्थ में अनु+जन+ड या क प्रत्यय से अनुज शब्द बना है[११]। कनिष्ठ भ्राता, अवरज, कनीयान्, पीछे उत्पन्न हुआ आदि अर्थ में 'अनुज' शब्द का प्रयोग किया गया है[१२]। यों तो समस्त अग्रजों के बाद उत्पन्न होने वाले सभी भ्राताओं को 'अनुज' ही कहा जाता है, किन्तु लक्ष्मण के लिये प्रयुक्त अनुज या रामानुज शब्द में अधिक वैशिष्ट्य है। लक्ष्मण को सही अर्थ में अनुज या रामानुज इस आधार पर कहा गया है। पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा प्राप्त दिव्य चरु का दशरथ ने अर्ध भाग कौशल्या को, चतुर्थ भाग कैकेयी को तथा अवशिष्ट चतुर्थ भाग के दो भाग कर दशरथ ने पुनः कौशल्या तथा कैकेयी को दिया। कौशल्या द्वारा सुमित्रा को दिये हवि के अष्टम अंश से लक्ष्मण का जन्म हुआ। अतः रामानुज कहलाने के अधिकारी एकमात्र लक्ष्मण ही हुए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

३. अनुग– मानस में भरत पर आक्रोश करते समय लक्ष्मण ने स्वय अपने लिये रामानुग शब्द का प्रयोग किया–"छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जग जान[१]"। सम्पूर्ण रामचरितमानस में लक्ष्मण द्वारा एक ही स्थल पर यह शब्द प्रयुक्त किया गया है। अतः लक्ष्मण के लिये "अनुग" शर्ब्द प्रासङ्गिक दृष्टि से अपने स्थान पर विशेष महत्व रखता है।

व्याकरण की दृष्टि से "अनुगच्छति" विग्रह के अनुसार अनु+गम्+अ प्रत्यय होकर यह शब्द बनता है।[११] जिसका अर्थ अमरकोश के अनुसार अनुचर, दास, अनुसर, अन्वक, अन्वक्ष, अनुपद आदि होता है। महाभारत के अनुसार अनुग का अर्थ अनुसर लिया जाता है–

येषां शास्त्रानुगा बुद्धिर्न ते मुह्यन्ति भारत!

यों तो पीछे चलने वाले सभी प्राणी 'अनुग' कहलाते हैं, किन्तु लक्ष्मण के लिये 'अनुग' शब्द विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि प्रत्येक परिस्थिति में राम का ही अनुगमन करना लक्ष्मण की विशेषता थी। जिस प्रकार छाया किसी भी परिस्थिति में व्यक्ति से पृथक् नहीं हो सकती, उसी प्रकार लक्ष्मण अपने पूरे जीवनकाल में छायावत् राम का अनुगमन कर राम से पृथक् नहीं हुए। लक्ष्मण की इसी विशेषता को दृष्टि में रख तुलसी ने लक्ष्मण को राम की परछाई से उपमित किया है–

जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं।

४–दाशरथि–'दशरथस्यापत्यं पुमान्' इस अर्थ में दशरथ से "अत इञ्" सूत्र (पा०सू०पा० ४/१/९५) से इञ् प्रत्यय या अण् प्रत्यय होकर दाशरथि शब्द बना है, जिसका अर्थ "दशरथ का पुत्र" होता है। ऐसे तो दशरथ के चारों पुत्रों (रघु० १०/४४) के लिये विशेषरूप से राम (रघु० १२/४५) के लिये यह शब्द अधिक प्रयुक्त हुआ है, किन्तु लक्ष्मण के लिये भी इस शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है।

यथा यथा दाशरथिर्धर्ममेवाश्रितोऽभवत्।
तथा तथा प्रकृतयो रामं पतिमकामयत[१]।।

किन्तु महाकवि तुलसीदास ने अपने सम्पूर्ण साहित्य में विनयपत्रिका के अन्तर्गत केवल लक्ष्मण के लिये 'दाशरथि' शब्द का प्रयोग केवल एक बार किया है–

जयति दाशरथि समर–समरथ सुमित्रासुवन
शत्रुसूदन राम भरत बंधो[१]।

५–प्रभु–"प्रभवतीति प्रभुः" इस अर्थ में 'प्र" उपसर्ग "भू" धातु से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"विप्रसम्भ्यो ड्वसंज्ञायाम्" इस पाणिनि–सूत्र (३/२/१८०) से "ड्ड" प्रत्यय होकर प्रभु शब्द बना है, जिसका अर्थ अमरकोशकार की दृष्टि में –१– अधिपति, २–स्वामी, ईश्वर, ३– पति, ४–ईशत, ५– अधिभू, ६–नायक ७–नेता, ८–परिवृढ़, ९–अधिप, १०–पालक आदि हैं।

'प्रभु' शब्द का प्रयोग १–बलवान्, २–दृढ़, ३–शक्तिशाली अदि अर्थ में भी होता है–

१–ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः। (रघु०–२/६२)

२–समाधिभेदप्रभवो भवन्ति। (कुमार०३/४०)

३–प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः। (शिशु०१/४९)

इनके अतिरिक्त क–राज्यपाल, ख–शासक, ग–स्वामी, घ–मालिक ङ–पारा, च–विष्णु, छ–शिव, ज–ब्रह्मा, झ–इन्द्र, ञ–भक्त (अपने स्वामी मे अनुरक्त), ट–राजभक्त आदि अर्थों में भी 'प्रभु' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है।

कार्य–सम्पादन में शक्तियुक्त, निग्रह और अनुग्रह में समर्थ, करने न करने या सब कुछ करने में समर्थ, ईश्वर, कामप्रद, अति सामर्थ्यसम्पन्न– अर्थो में भी यह महत्त्वपूर्ण शब्द प्रयुक्त हुआ है[1]।

रामचरितमानस के अन्तर्गत तुलसीदास ने लक्ष्मण के लिये चार बार 'प्रभु' शब्द का प्रयोग किया है–

१. तुलसी प्रभुहिं सिख देई आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।

२. तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना।।

३. प्रभु कहं छांडेसि सूल प्रचंडा। सर हति कृत अनंत जुग खंडा।।

४. जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा।।

तात्पर्य यह है कि तुलसी ने लक्ष्मण के लिये 'प्रभु' शब्द का प्रयोग करके राम ही के समान लक्ष्मण का सामर्थ्य व्यक्त किया है।

६–भगवन्त–संस्कृत के मूल के रूप 'भगवत्' शब्द का विसर्गरहित बहुवचन रूप "भगवन्त" अवधी में प्रयुक्त हुआ है। भग शब्द से नित्ययोग में मतुप् प्रत्यय करके मकार को वकार आदेश होने पर यह शब्द बना है, जिसकी परिभाषा शब्दकल्पद्रुम के अनुसार इस प्रकार प्राप्त होती है–

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य (वीर्यस्य) यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीर्यते[2]।।

इस श्लोक के अनुसार–१–समग्र ऐश्वर्य, २–धर्म (कहीं–कहीं पाठभेद

1 वाचस्पत्यम्, भाग ६, तथा शब्दकल्पद्रुम, भाग–३, पृष्ठ–२८३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से धर्म के स्थान पर वीर्य=पराक्रम का पाठ भी मिलता है), ३–यश, ४–श्री=शोभा, लक्ष्मी, ५–ज्ञान, ६–वैराग्य इन छह गुणों से युक्त भगवत् कहलाता है।

कतिपय विद्वानों के मतानुसार–उत्पत्ति, प्रलय, जीवों को अगति गति देने की क्षमता, अविद्या–विद्या का ज्ञाता ही भगवान् कहलाता है–

उत्पत्तिं प्रलयं चैव जीवानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति।।

शब्दकल्पद्रुम तथा संस्कृत हिन्दी कोश के अनुसार भगवत् शब्द के अर्थ १–यशस्वी, २–प्रसिद्ध, ३–सम्मानित, ४–श्रद्धेय, ५–दिव्य, ६–पवित्र, ७–भगवान्, ८–वासुदेव, ९–विष्णु, शिव, बुद्ध, जिन का विशेषण, १०–नित्य, ११– विभु आदि है।

कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, चतुर्व्यूह का जो यौगिक स्वरूप है, जिसमें बलराम लक्ष्मण के स्थानापन्न है, भगवत्तत्व के प्रतिपादक हैं, इसी कारण से लक्ष्मण के लिये यह शब्द–प्रयोग समुचित है।

तुलसीदास ने लक्ष्मण के लिये 'भगवन्त' शब्द का प्रयोग विनयपत्रिका के अन्तर्गत केवल एक बार किया है–

''जयति लक्ष्मणानन्त भगवन्त भूधर, भुजगराज, भुवनेश, भूभारहारी।

मानस में 'भगवन्त' शब्द का प्रयोग अनेक बार प्राप्त होता है, किन्तु लक्ष्मण के लिये यह शब्द प्रयुक्त न होकर केवल राम के लिये प्रयुक्त हुआ है। भगवन्त शब्द की नित्यता को दृष्टि में रखकर तुलसी ने विनयपत्रिका में भगवन्त के पूर्व तथा मानस में भगवन्त के पश्चात् अनन्त शब्द का प्रयोग किया है–

''जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय।।

७– सौमित्रि–''सुमित्राया अपत्यं पुमान्'' इस विग्रह से ''बह्वादित्वात्'' से इञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि होकर ''सौमित्रि'' शब्द बना है; जिसका अर्थ ''सुमित्रा का पुत्र है।'' सुमित्रा के पुत्र शत्रुघ्न भी हैं, किन्तु विशेषता यह है कि ''सौमित्रि'' या ''सौमित्र'' शब्द केवल लक्ष्मण के लिये ही प्रयुक्त हुआ है; क्योंकि मातृगुण का विशेष प्रभाव लक्ष्मण में ही परिलक्षित होता है। संस्कृत वाङ्मय में भी सौमित्रि तथा सौमित्र शब्द अधिक संख्या में लक्ष्मण के लिये प्रयुक्त हैं–

''सौमित्रेरपि पत्रिणामविषये तत्र प्रिये क्वासि मे।'' (उत्तर०३/४५)

''सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना
रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः[२३]।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुलसीदास ने प्रमुख रूप से दो अभिप्रायों को दृष्टि में रखकर लक्ष्मण के लिये "सौमित्रि" शब्द का प्रयोग किया है। जैसी कि मान्यता है– कौशल्या भक्तिस्वरूपा, कैकेयी क्रियास्वरूपा और सुमित्रा उपासनास्वरूपा हैं। "सौमित्रि" कहकर लक्ष्मण को उपासनाशक्ति से उत्पन्न माना गया है। सुमित्रा ने अपने पुत्र लक्ष्मण को सांसारिक सुखों से पृथक् कर राम की सेवा में सदा रत रहने की शिक्षा दी तथा रामपद–रति–वृद्धि का उन्हें आशीर्वाद दिया–

सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू।।

— — — — — — — — —

रति होउ अविरल अमल सिय रघुवीर पद नित नित नई।

इस प्रकार "सौमित्र" कहकर सुमित्रा के उक्त गुणों का स्मरण कराया गया है।

गीतावली में भी सुमित्रा लक्ष्मण को राम और सीता की सेवा में रत रहने की शिक्षा देती हैं–

सिय रघुबर सेवा सुचि ह्वै हौ तौ जानिहों सही सुत मोरे। (पद–११)

८–शेष–"शिष् वधे" धातु से भाव में घञ् प्रत्यय होकर अथवा "शिष्" से अच् प्रत्यय होकर 'शेष' शब्द निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ अनन्त, सर्पराज, सर्पजाति, विशेष, अवशेष, गज, काल, विष्णु–शय्या, सहस्त्र फणवाला नाग (जो पृथ्वी को धारण किये हुए हैं) से किया जाता है[1]। पुराणों में 'शेष' शब्द प्रयुक्त हुआ है। कूर्मपुराण के ४८वें अध्याय में वर्णित काल का शेष के रूप में वर्णन मिलता है।

महर्षि पाणिनि के सूत्र "शेषे षष्ठी" की व्याख्या में महर्षि पतञ्जलि ने "उक्तादन्यः शेषः" कहकर, कहे हुए से अवशिष्ट को 'शेष' माना है। प्रसाद, उच्छिष्ट भोजन, बुढ़ापा आदि अर्थो में भी 'शेष' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

भूधर, भुजगराज, महीधर, अहीश तथा सहस्त्रशीष पर्यायों को भी तुलसी ने लक्ष्मण के लिये प्रयुक्त किया है जो शेष के ही समानार्थक हैं। अतएव लक्ष्मण के लिये प्रयुक्त इन पर्यायों का विश्लेषण पृथक् रूप से नहीं किया गया है। तुलसीदास ने लक्ष्मण के लिये भूधर, भुजगराज का प्रयोग केवल विनयपत्रिका में तथा शेष के समानार्थक अन्य पर्यायों का प्रयोग मानस में किया है–

"– – – – – – – भूधर भुजगराज भुवनेश भूभारहारी।'

"जो सहसशीष अहीस, महिधर, लखन सचराचर धनी।।"

---

1 मुद्राराक्षस, २/१८, कुमारसम्भव, ३/१३ एवं ६/६८, मेघदूत, श्लो० ११०, रघुवंश, १०/१३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्ष्मण के लिये शेष एवं सहस्त्रशीष के प्रयोग का विशिष्ट अभिप्राय यह है कि वन्दना–प्रसङ्ग में लक्ष्मण को १–सहस्त्रशीष वाले शेष, २–जगत्कारण विष्णु, ३–द्विभुज गौरवर्ण वाले कहा है[1]। प्रथम स्वरूप में लक्ष्मण प्रभु के शयन के समय पहरा देते हैं, निषाद को उपदेश देते हैं, पञ्चवटी में राम से प्रश्न करते हैं। दूसरे स्वरूप में जगत्कारण विष्णु रूप से युद्ध करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। तीसरे स्वरूप से प्रभु की सेवा में रत रहते हैं।

मानस में चार कल्प की कथा का निरूपण हुआ है। प्रत्येक कल्प के अवतारों में लक्ष्मण के भिन्न भिन्न रूपों का चित्रण किया गया है। ब्रह्म का अवतार जो मनुशतरूपा के लिये हुआ, उसमें लक्ष्मणजी नित्य हैं और शेषादि के कारण हैं। जहाँ विष्णु का अवतार है वहाँ लक्ष्मणजी शेष हैं।

इस सन्दर्भ में यह प्रश्न होता है कि यदि लक्ष्मण को केवल शेष माना जाय तो निम्नलिखित चौपाई के भावों का विरोध स्पष्ट रूप से होता है–

दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला।।
राम चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा।।

अतः लक्ष्मण केवल शेष ही नहीं, शेष के कारण अर्थात् शेषी हैं। लक्ष्मण को केवल शेषावतार मानने से उनका स्वरूप अनित्य हो जायगा। जब कि–

सोई रघुबर सोई लछिमन सीता। देखि सती अति भई सभीता।।

कह कर तुलसी ने लक्ष्मण के स्वरूप का निरूपण नित्य, अखण्ड, एकरस के रूप में किया है। वसिष्ठसंहिता में देवताओं द्वारा की गयी लक्ष्मण की स्तुति जो इन विचारों को पुष्ट करती है, इस प्रकार है–

जयानन्तधराधरः शेषकारणविग्रहः।
कोटिकन्दर्पदर्पघ्नः सच्चिदानन्दरूपकः।।

नारद पाञ्चरात्र में भी लक्ष्मण को शेषशायी क्षीराब्धीश श्रीमन्नारायण कहा गया है[1]।

दिव्य लोक–यात्रा–प्रसङ्ग में लक्ष्मण के तीनों स्वरूप पृथक् पृथक् रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। लक्ष्मण का शेषरूप सरयू में प्रवेश कर पाताल को चला जाता है, विष्णुरूप चतुर्भुज धारण कर दिव्य विमान पर बैठ कर

1. वैकुण्ठेशस्तु भरतः क्षीराब्धीशस्तु लक्ष्मणः।
शत्रुघ्नस्तु स्वयं भूमा रामसेवार्थमागताः।।
(नारदपाञ्चरात्र)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैकुण्ठ को तथा द्विभुज गौरवर्ण लक्ष्मण प्रभु के साथ दिव्य साकेत चले जाते हैं[1]।

तुलसी—साहित्य में प्रयुक्त लक्ष्मण के विशेषण :

वस्तुतः लक्ष्मण नायक राम के अनुज और उनके परम सहयोगी रहे हैं। राम के साथ छाया की भाँति रहने वाले लक्ष्मण के लिये मानस में प्रायः उन सभी विशेषणों और उपमानों का प्रयोग तुलसीदास ने किया, जिनका प्रयोग राम के लिये किया जा सकता है, कुछ एक को छोड़कर। उपमानों के विषय में पृथक् से विचार किया जायगा, यहाँ लक्ष्मण के लिये प्रयुक्त विशेषणों का उल्लेख ही अपना प्रतिपाद्य है।

रामचरितमानस में तुलसीदास ने लक्ष्मण को ८५ विशेषणों से विभूषित किया है जिनमें से कुछ उनके गुण, कर्म, स्वभाव और कुछ स्वरूप से सम्बद्ध हैं। गुणों से सम्बद्ध शीतल, सुभग, गुणाकर, अतिगम्भीर, मतिधीर, लक्षणधाम, मुनि के धन, जन के सर्वस्व, शिव के प्राण, अखिल विश्वकारणकरण, महानिधि, रूपशीलबलधाम, सुखनिधान, सुषमासदन, सुखधाम, गुणसागर, नागर, वरवीरा, शठ, मन्द, कुटिल, कालबस निजकुलघालक, भानुवंशराकेशकलंक, निपट निरंकुश, अबुध, अशंकू, कटुवादी, सहज टेढ़; नीच, मीचसम, खोट बड़भारी, मनमलीन, बैरी, जड़, क्षमामन्दिर, तेजनिधान, रामसम, महीधर, सचराचरधनी, लालन जोग, पुरजनप्रिय, पितु—मातु दुलारे, सीय रघुवीरहिं प्राणपियारे, मृदुमूरति, सुकुमार—स्वभाव, अत्यन्त बलवान्, विज्ञान के धाम, शोभा के धनी, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेद से वन्दित, गो—ब्राह्मण के प्रिय, रघुकुल में श्रेष्ठ, हितकारी, सामर्थ्यशाली, दयाशील, सुर नर अग जग से सेवित, सुतघाती, त्रिभुवनधनी, कृतान्तभक्षक, सुरत्राता, कृपाला और क्षुभित—इन विशेषणों का प्रयोग तुलसीदास ने किया है। इन गुणों में प्रायः सभी सद्गुण हैं और कुछ विशेषण लक्ष्मण के चरित्र में कलङ्क (धब्बे) की तरह लगते हैं; जैसे—मंद, कुटिल, निजकुलघालक आदि।

I. *एकेन सरयूमध्ये प्रविवेश कृपानिधिः।*
सहस्रशीर्षा भगवान् शेषरूपी रसाश्रयः।।
रामानुजश्चतुर्बाहुर्विष्णुस्सर्वगुहाशयः।
ऐन्द्रं रथं समारुह्य वैकुण्ठमगमद्द्विभुः।।
यानस्थो रघुनन्दनः परपुरीं प्रेम्णागमद् भ्रातृभि—
र्लोकानां, शिरसि स्थितां मणिमयीं नित्यैकलीलाप्रदाम्।
सौमित्रिश्च तदा बलेन प्रथमं रामाज्ञया वर्त्तते,
तेनैव क्रमकेण बन्धुमिलितो रामेण साकं गतः।। (ब्रह्मरामायण)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन विशेषणों का प्रयोग परशुराम ने क्रोधावस्था में लक्ष्मण के लिये किया है; क्योंकि शिवधनुषभङ्ग के पश्चात् परशुराम क्रोधाग्नि में जल रहे थे और लक्ष्मण के व्यङ्गय–वाक्य घृत का काम कर रहे थे। ऐसी स्थिति में मनुष्य अपना विवेक खो देता है, उसकी मनःस्थिति असन्तुलित हो जाती है और वह अविवेकपूर्ण कार्य कर बैठता है और क्रोध की समाप्ति पर वह अपने पूर्वकृत कार्य पर पश्चात्ताप भी करता है। परशुराम के साथ भी वैसा ही हुआ, जब उनकी क्रोधाग्नि शान्त हो गयी और राम, लक्ष्मण को उन्होंने पहचान लिया, तब उन्होंने कहा–

अनुचित बहुत कहेउं अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता।

तदनन्तर वे प्रस्थान कर गये। इस प्रकार 'क्षमा–मन्दिर' विशेषणसे लक्ष्मण को उन्होंने विभूषित किया।

रावण ने लक्ष्मण को "सुतघाती" विशेषण से विभूषित किया है। युद्ध–स्थल में मेघनाद की मृत्यु के बाद क्रोधित रावण ने लक्ष्मण को देखकर ऐसे विशेषण का प्रयोग किया। यहाँ पुत्रशोक से विक्षिप्त रावण कुछ भी कह सकता है, अतः लक्ष्मण को देखते ही उसके मुख से निकल पड़ा–

खोजत रहेउं तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावऊँ छाती।।

इन दो स्थलों को छोड़कर लक्ष्मण के लिये प्रयुक्त सभी विशेषण उनके गुण और यश को प्रकट करने वाले हैं। सभी की व्याख्या यहाँ अपेक्षित नहीं जान पड़ती; किन्तु विषय की गम्भीरता के स्पष्टीकरण के लिये दो एक स्थलों की व्याख्या आवश्यक सी प्रतीत हो रही है–

सीतल सुभग[1]– "सीतल" और "सुभग" लक्ष्मण के चरणों के विशेषण हैं। वे चरण पाप ताप माया का हरण करते हैं, इसलिये 'शीतल' हैं और ध्यान करने वालों के चित्ताकर्षक होने से सुभग हैं। शीतल और 'सुभग' को लक्ष्मण का विशेषण स्वीकार करने पर वे शीतल स्वभाव है और सुन्दर गौर शरीर है। यथा–

"सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे।"

और भी–

"चारु चम्पक वरण, बसन भूषन धरन, दिव्यतर भव्य लावण्यसिन्धो।[1]

जगकारन[1]– जाग्रत् अवस्था के विभु होने के कारण लक्ष्मण को 'जगकारण' कहा गया है। यथा–

सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित बिराजहीं।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भूमिभय टारन[१]– लक्ष्मण का अवतार भू–भारहरण के लिये हुआ था, इसलिये इन्हें 'भूमिभय टारन' कहा गया, यथा–

जयति लक्ष्मणानन्त भगवन्त भूधर भुजगराज भुवनेश भूभारहारी।

कृपासिन्धु[१]– भक्त सुखदाता होने के कारण लक्ष्मण को 'कृपासिन्धु' कहा गया है। वस्तुतः ये कृपा के आगार हैं। भक्तों पर तो सभी कृपा करते हैं, किन्तु लक्ष्मण की विशेषता है कि भक्तों के अतिरिक्त शत्रुपक्ष पर भी कृपा करते हैं। यथा–

पालक कृपालु आपने पन के[१]।

और भी–

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हंसि तुरत छोड़ाये।।

गुणाकर[१]– ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, धर्म, श्री, शोभा, वीर्य, तप आदि आन्तरिक गुण एवं क्षत्रियत्व, तेजस्विता, ओजस्विता आदि गुणों की खान लक्ष्मण हैं, अर्थात् जिस प्रकार आकर से नाना प्रकार के रत्न प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार लक्ष्मण में उपर्युक्त सभी गुण विद्यमान हैं, अतएव इनके लिये 'गुणाकर' शब्द प्रयुक्त किया गया है। यथा–

कृपासिन्धु सौमित्रि गुनाकर।

विशेष द्रष्टव्य यह है कि 'गुणाकर' शब्द का प्रयोग रामचरितमानस में केवल लक्ष्मण के लिये ही प्रयुक्त हुआ है।

गम्भीर[१]– शक्तिमोह–प्रसङ्ग में लक्ष्मण को 'अति गम्भीर' कहा गया है, वस्तुतः लक्ष्मण का आभ्यन्तर स्वरूप अतिशय गम्भीर है, अतः मेघनाद वध करने हेतु प्रस्थान से पूर्व प्रभु के समक्ष उसके वध की प्रतिज्ञा मेघ की भाँति गम्भीर वाणी में करते हैं। यथा–

प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गंभीरा।।

लक्ष्मण के स्वरूप से सम्बद्ध विशेषण

लक्ष्मण के स्वरूप से सम्बद्ध विशेषणों की भी कमी नहीं है। तुलसीदास ने लक्ष्मण के स्वरूप के निम्नाङ्कित विशेषणों को गिनाया है। लक्ष्मण के लिये, भगत सुख दाता, सहस्त्र शीश वाले शेष, कृपासिन्धु, रामप्रिय, उदार, वेदतत्त्व, लोचन सुखद, विश्वचितचोर, लोक–लोचनसुखदाता, विराट्, धर्म, अहीस, सुकुमार, रामअनुग, माया से मनुष्य का रूप धारण किये हुए, सीता के अन्वेषण में तत्पर, सामर्थ्यशाली, दयाशील, मृदुल, प्रभु, सजल नेत्रवाले और दामिनिवरन आदि विशेषण रामचरितमानस में आये हुए हैं।

वेदतत्त्व[१]– नामकरण के पश्चात् महर्षि वशिष्ठ ने दशरथ से कहा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि तुम्हारे चारों पुत्र वेद के तत्त्व हैं। भावार्थ यह है कि वेद का तत्त्व प्रणव है। प्रणव में चार मात्रा होती है, अ, उ, म्, और अर्धमात्रा। अकार जाग्रत् अवस्था के विराट् रूप लक्ष्मण हैं, उकार स्वप्नावस्था के विभु हिरण्यगर्भरूप शत्रुघ्न हैं। मकार सुषुप्ति के विभु ईश्वर रूप भरत हैं और अर्धमात्रा तुरीय के विभु ब्रह्म साक्षात् राम हैं। इस भाँति प्रणव रूप होने से चारों भाई वेदतत्त्व हैं। अन्यत्र भी आया है–

सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं।।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् के अनुसार भी–

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः।
उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः।।
प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः।।

इस प्रकार लक्ष्मण प्रणवं मन्त्र के ''अ'' कार स्वरूप विराट्तत्व हैं।

लोचन सुखद[1]– तुलसी के लक्ष्मण सौन्दर्य की पराकाष्ठा हैं। अतएव इनके दर्शनमात्र से भक्तों के नेत्र सफल हो जाते हैं। मिथिलानगर के दर्शन की उत्कृष्ट अभिलाषा होने पर विश्वामित्र ने यही कहा कि–

जाइ देखि आवहु नगर, सुखनिधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सबके नयन, सुंदर बदन देखाइ।।

हुआ भी यही, जब मिथिलानगरवासियों को ज्ञात हुआ कि दो राजकुमार नगर–दर्शनहेतु पधारे हैं तो वे अपने समस्त ऐश्वर्य का पूर्णतः परित्याग कर रङ्क की भाँति दौड़ पड़े। इस स्थल पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानों रामलक्ष्मण रूपी निधि को लूट लेने के लिये जनकपुरवासी रङ्क, घर का सभी काम–काज छोड़कर, दौड़ पड़े हैं। रामलक्ष्मण के दर्शनमात्र से अपने नेत्र का साफल्य प्राप्त कर आनन्दमग्न हो रहे हैं–

धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुं रंक निधि लूटन लागी।।
निरखि सहजि सुंदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई।।

लक्ष्मण के दिव्यतर सौन्दर्य का निरूपण करते हुए स्वयं ग्रन्थकार कहते हैं–

चारु चंपक बरन, बसन भूषन धरन, दिव्यतर भव्य लावण्य सिंधो।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे विशेषण मानस में प्रयुक्त हुए हैं, जो लक्ष्मण के क़र्म, शील, स्वभाव आदि के वैशिष्ट्य से युक्त हैं। ऐसे विशेषणों की सङ्ख्या कम है, किन्तु नगण्य भी नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुलसी–साहित्य में प्रयुक्त लक्ष्मण के उपमान

उपमा का शाब्दिक अर्थ होता है– समीप रख कर मापना। इसके चार प्रमुख अङ्ग माने गये हैं–उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक धर्म। मानस में लक्ष्मण को उपमेय मानकर यथास्थान भिन्न–भिन्न उपमानों से समता दिखायी गयी है। समय के भेद के अनुसार निम्नाङ्कित उपमानों से उपमित किया गया है। इन उपमानों के नाम और स्थान तथा समय जान लेना अपेक्षित जान पड़ता है–

यशदण्ड– मानस के वन्दना–प्रसङ्ग में तुलसीदास के लक्ष्मण रामकीर्ति–रूपी विमल पताका को फहराने वाले दण्ड की भाँति हैं–

रघुपति कीरति विमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका।।

पुरुषसिंह– यह उपमान दोनों भाइयों के लिये मानस में प्रयुक्त हुआ है। विश्वामित्र ने यज्ञ–रक्षार्थ दोनों भाईयों की दशरथ से याचना की। पिता की आज्ञा से दोनों वीर प्रसन्नतापूर्वक यज्ञ की रक्षा के लिये मुनि के साथ चल दिये–

पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि भय हरन।

उभय वेष में ब्रह्म– जनकपुर के धनुषयज्ञ में आये हुए राम–लक्ष्मण का सौन्दर्य देखकर जनक विश्वामित्र से जिज्ञासा करते हैं कि क्या उभय वेष में यहाँ ब्रह्म तो नहीं उपस्थित हो गये हैं?–

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि की सोइ आवा।।

वृषभकन्ध– धनुष तोड़ने के पूर्व जनक की रंङ्गशाला मे बैठे हुए दोनों भाइयों का नखशिख–वर्णन विभिन्न परम्परागत उपमानों से किया गया है। यहाँ दोनों भाइयों के विशाल कन्धों की उपमा वृषभ से दी गयी है–

वृषभ कंध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु विसाल।

किशोर चकोर– राम के धनुष तोड़ने पर सभी हितैषियों को अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ। धनुष–भंग के पश्चात् मञ्च पर खड़े राम को लक्ष्मण एक टक देख रहे हैं। उनका देखना ऐसे ही था जैसे किशोर चकोर चन्द्रमा को देखता है–

रामहि लषन बिलोकत कैसें। ससिहि चकोर किसोरकु जैसें।।

किशोरसिंह– धनुष टूटने पर कुटिल राजाओं की कुटिलतापूर्ण बातें सुनकर लक्ष्मण का क्रोध धधक उठा और उन राजाओं को नष्ट करने की समग्र लालसा लेकर लक्ष्मण उनकी ओर वैसे ही देखते हैं जैसे हाथियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के समूह को सिंह का बच्चा देखता है। यहाँ लक्ष्मण के क्रोधपूर्ण ओज और बल का वर्णन दर्शनीय है–

अरुन नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुं मत्त गजगन निरखि, सिंह किसोरहि चोप।।

कनकघट– धनुष भंग के पश्चात् क्रोधातुर परशुराम ने लक्ष्मण के व्यङ्ग्य बौछारों से उद्दीप्त हो जाने के कारण उन्हें "विषरस भरा कनक घट" बतलाया है। क्रोध की स्थिति में मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। यही स्थिति यहाँ परशुराम की हुई जिससे उन्होंने लक्ष्मण के लिये कहा–

मनु मलीन तनु सुंदर कैसें। विषरस भरा कनक घट जैसें।।

विश्वविभूषण– धनुष टूटने पर जनक जी ने अपने दूत को विवाह की सूचना के साथ दशरथ के पास भेजा। दशरथ के अपने पुत्रों के विषय में पूछने पर जनक के दूतों द्वारा राम–लक्ष्मण "विश्वविभूषण" बतलाये गये है–

सुनहु महीपति मुकुटमनि, तुम्ह सम धन्य न कोउ।
रामु लखनु जिन्ह के तनय, विस्व विभूषन दोउ।।

कनक– जनकपुर में चारों भाइयों में से राम और भरत को मरकत तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न को कनक वर्ण कहा गया है–

मरकत कनक बरन बर जोरी।

प्राण– दशरथ बरात लेकर भरत और शत्रुघ्न के साथ जनकपुर पहुँचते हैं। पिता के आगमन का समाचार पाकर राम–लक्ष्मण पिता को प्रणाम करते हैं और दशरथ उनको गले से लगाकर सुख का अनुभव करते हैं। उस समय दशरथ के मृतक जैसे शरीर के लिये राम और लक्ष्मण प्राण की भाँति लगे–

सुत हियं लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे।।

अपवर्ग– बारात जनकपुर में जा रही है। बरात में चारों भाई ऐसे सुशोभित हो रहे हैं जैसे सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य– चारों मोक्ष शरीर धारण करके चल रहे हों–

सोहत साथ सुभगसुत चारी। जनु अपबरग सकल तनुधारी।।

विराट्– अवस्थाएँ चार है–जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय और उनके विभु हैं क्रमशः विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्म। राजा जनक के मण्डप में स्थित अवस्थाएँ अपने विभुओं के साथ सुशोभित हुई। यहाँ उर्मिला जाग्रत् अवस्था और उसका विभु विराट् स्वयं लक्ष्मण हैं। इसलिये यहाँ लक्ष्मण को जाग्रत् अवस्था के विभु विराट् से उपमित किया गया–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुंदरी सुंदर बरन सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं।।

रामसम— विवाह के पश्चात् भोजन के निमित्त बुलाये गये चारों भाइयों में से, जनक ने सर्वप्रथम राम का चरण अपने हाथ से धोया और पुनः तीनों भाइयों को, राम के समान समझकर, उनके चरणों को भी धोया—

तीनिउ भाइ राम सम जानी। धोए चरन जनक निज पानी।।

धर्म— क्रियाओं के चार फल होते हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। फलरूप होने से मोक्ष और काम क्रम से राम और भरत हैं और साधनरूप होने से धर्म और अर्थ क्रमशः लक्ष्मण और शत्रुघ्न हैं। अतः चारों भाइयों को एक साथ देखकर दशरथ को चारों फलों की प्राप्ति एक साथ हो गयी। इस स्थल पर लक्ष्मण को धर्म से उपमित किया गया है—

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

पीयूष, सुरतरु, हरिपद:—चारों भाइयों का दर्शन करने से जनकपुर निवासियों को अनेक प्रकार का सुख मिला। उस सुख के सम्बन्ध में नगर-निवासियों का कथन उल्लेख्य है—

मरनसीलु जिमि पाव पिऊषा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा।।
पाव नारकी हरिपदु जैसें। इन्ह कर दरसनु हम कहं तैसें।।

मीन— राम वनवास का समाचार सुनकर लक्ष्मण का हृदय बिलख उठा, उनके मन में तड़पन होने लगी और वे राम के चरण को पकड़ कर बिलखने लगे, किन्तु कुछ कह नहीं सके। उस समय उनकी दशा जल से पृथक् मीन की भाँति हो गयी—

कहि न सकत किछु चितवत् ठाढ़े। मीनु दीन जनु जलतें काढ़े।।

तामरस— जब राम ने लक्ष्मण को समझाया कि तुम अयोध्या में रहकर माता पिता और गुरुजनों की सेवा करो और प्रजा की रक्षा करना भी तुम्हारा कर्तव्य है, अन्यथा प्रजा अनाथ हो जायगी, तब लक्ष्मण का हृदय इस प्रकार सूख गया जिस प्रकार पाला पड़ने से कमल कुम्हला जाता है—

सिअरें बचन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसें।।

अन्ध— विवश होकर लक्ष्मण को राम अपने साथ वन में ले चलने के लिये सन्नद्ध हो गये, किन्तु उन्होंने कहा कि अपनी माँ से आज्ञा ले आओ। राम प्रफुल्लित हुए मानों अन्धे को पुनः आँखें मिल गयी हों—

हरषित हृदय मातु पहिं आये। मनहुं अंध फिरि लोचन पाये।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मृग— सुमित्रा ने जब प्रसन्नतापूर्वक लक्ष्मण को राम के साथ वन में जाने की आज्ञा दे दी तब लक्ष्मण का हृदय प्रसन्नता से भर गया। जिस प्रकार कठिन बन्धन को तोड़कर मृग बड़ी तेजी से जङ्गल की ओर भागता है, उसी भाँति लक्ष्ण माता की आज्ञा पाकर राम के पास भागे—

मातु चरन सिरु नाइ, चले तुरत संकित हृदय।
बागुर विषम तोराइ, मनहुँ भाग मृगु भाग बस।।

दामिनिवरन— लक्ष्मण गौरवर्ण के हैं। उनके शरीर की कान्ति तेजोमय है. इसलिये उसे दामिनि से उपमित किया गया है—

दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जी के।।

जीव— वन में जाते हुए लक्ष्मण राम और सीता के साथ सुशोभित हो रहे हैं। इस स्थल पर राम को ब्रह्म, लक्ष्मण को जीव और सीता को माया से उपमित किया गया है। यह उपमा आध्यात्मिक है—

उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें।।

मधु (वसन्त)— गोस्वामी जी इसी प्रसङ्ग में राम, लक्ष्मण और सीता की उपमा काम, वसन्त और रति से देते हैं। यह उपमा गोस्वामी जी की आधिभौतिक उपमा है—

बहुरि कहउं छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई।।

बुध— एक ग्रह है जिसे पौराणिक कथानुसार रोहिणी का पुत्र माना जाता है। चन्द्रमा और रोहिणी पति—पत्नी हैं। उनके साथ बुध पुत्रवत् सुशोभित होता है। अतः गोस्वामी जी ने लक्ष्मण को बुध से उपमित किया है। यह आधिदैविक उपमा है—

उपमा बहुरि कहउं जियं जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही।।

परछाईं— राम को सीता और लक्ष्मण दुःख में दुःखी और सुख में देख सुखी हो जाते हैं। अतः परछाईं जिस प्रकार पुरुष का अनुसरण करती है उसी प्रकार लक्ष्मण भी राम की मनोदशाओं का अनुसरण करते हैं—

लखि सिय लषन बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहिं अनुसर परछाहीं।।

अविवेकी— वन में जाकर लक्ष्मण निशिवासर राम की सेवा करते रहे। लक्ष्मण की इस सेवापरायणता को गोस्वामी जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं और बतलाते हैं कि उन्होंने राम की सेवा इस प्रकार चेतन होकर की, जिस प्रकार अविवेकी पुरुष शरीर की सेवा करता है—

सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहिं। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जयन्त— चित्रकूट में राम और सीता के साथ लक्ष्मण ऐसे सुशोभित हैं जिस प्रकार स्वर्ग में इन्द्र अपनी पत्नी शची और पुत्र जयन्त के साथ सुशोभित होते हैं—

रामु लखन सीता सहित सोहत परम निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत॥

रणरस— भरत जब राम को मनाने के लिये चित्रकूट में आये तब उन्हें देखकर लक्ष्मण को भ्रम हो गया कि शायद भरत राम से युद्ध के लिये आ रहे हैं। इतना आभास होते ही लक्ष्मण नीतिरस भूल गये। उनके रहते प्रभु को युद्ध करना पड़े, यह लक्ष्मण सहन नहीं कर सके। भरत को युद्ध में राम का मुख देखना ही न पड़े— ऐसा स्मरण करते ही उनमें रणरस का आविर्भाव हुआ, लक्ष्मण ऐसा पुलकित हो उठे, मानों रणरस रूपी वृक्ष के लिये बहार आ गयी। लक्ष्मण जी मानों स्वयं रणरस हैं और पुलकित होना उनका पुष्पित हो उठना है—

एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटप पुलक मिस फूला॥

बाज— इसी प्रसङ्ग में लक्ष्मण को बाज से भी उपमित किया गया—

जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहिं भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउं खेता॥

चंग— जब लक्ष्मण का भ्रम दूर हो गया कि भरत राम को मनाने आये हैं तब उनके मन में भरत के प्रति प्रगाढ़ प्रेम उमड़ा। भरत—आगमन के समय वे राम की सेवा कर रहे थे। सेवा में लगे रहने से तथा भाई के सरस प्रेम के खिंचाव से मन उस ओर से इधर नहीं आ पाता है। इस स्थल पर चंग (पतंग) उपमान है और मन उपमेय। लक्ष्मण जी की उपमा पतंगबाज से दी गयी है, सेवा परेता है और उसमें लक्ष्मण की मनोवृत्तिरूपी धागा लिपटा हुआ है—

रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारु॥

वैराग्य— राम, सीता और लक्ष्मण चित्रकूट में अपनी कुटी में विश्राम कर रहे हैं। कवि द्वारा यहाँ लक्ष्मण को वैराग्य से उपमित किया गया है। राम ज्ञान हैं, सीता भक्ति और लक्ष्मण वैराग्य हैं—

सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर॥

हिमगिरि सा तनु— मेघनाद से युद्ध के लिये प्रस्तुत क्रोधयुक्त लालिमा के कारण लक्ष्मण के शरीर का वर्णन मानस में निम्नांकित रूप मे किया गया है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला।।

युद्ध में प्रस्थान करते समय कुछ क्रोध के कारण आँखें रक्तवर्ण की हो जाने से लालिमा उनके सम्पूर्ण शरीर में आ गयी थी, जो हिमालय की लालिमा की भाँति सुशोभित हो रही थी।

पंख, मणि, शुण्ड— लक्ष्मण को शक्ति लग जाने से वे अचेत हो जाते हैं। उन्हें अचेतावस्था में देख राम, विलाप करते हुए, कहते हैं कि जिस प्रकार पङ्खविहीन पक्षी, मणिविहीन सर्प और शुण्डविहीन गजराज जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार मैं लक्ष्मण के विना जीवित नहीं रह सकता—

जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना।।
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ देव जिआवै मोही।।

चन्द्र— जनकपुर में गुरु के सन्ध्यावन्दनार्थ पुष्प—चयन के लिये जनक की पुष्पवाटिका में राम—लक्ष्मण लताकुञ्जों से होकर बाहर निकले तो उन दोनों भाईयों के सौन्दर्य में और अधिक वृद्धि हो गयी। जिस प्रकार बादलों के आवरण (ओट) से चन्द्रमा बाहर निकल आता है तथा अत्यधिक शोभा को प्राप्त होता है, उसी प्रकार राम—लक्ष्मण लताकुञ्जों से बाहर आकर अत्यधिक सुशोभित होते हैं—

लता भवन तें प्रकट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल विधु जलद पटल बिलगाइ।।

रामचरितमानस में तुलसीदास ने विभिन्न उपमानों का प्रयोग लक्ष्मण के लिये किया है। इसी प्रकार मानसेतर ग्रन्थों में जिनका विषय रामकथा है और जहाँ लक्ष्मण—चरित्र को विकसित होने का अवसर मिला है, वहाँ भी नये नये उपमानों से उन्हें उपमित किया है। विनयपत्रिका के दो पदों में लक्ष्मण की वन्दना की गयी है जिसमें अनेक विशेषण और उपमान आये हैं, जिनके द्वारा उन का रूप, गुण, कर्म उद्भासित होता है। मानसेतर ग्रन्थों में उपमानों के लिये सबसे अधिक प्रशंसनीय ग्रन्थ "गीतावली" है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें लक्ष्मण के लिये अनेक उच्चकोटि के उपमान प्रयुक्त हैं जिनकी "मानस" या उससे पूर्व के ग्रन्थों में चर्चा तक नहीं हुई। गोस्वामी जी के ये उपमान मौलिक है और साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

वैशाख— विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के लिये राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों की याचना दशरथ से करते हैं। दशरथ से पुत्रों को पाकर विश्वामित्र का मन पुलकित हो जाता है। उनके साथ राम—लक्ष्मण की शोभा चैत्र और वैशाख के रूप में चित्रित की गयी है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुलसी प्रभु जोहत पोहत चित, सोहत मोहत कोटि मयन।
मधु–माधव–मूरति दोउ संग मानों दिनमनि गवन कियो उतर अयन।
(गी० १/४९)

रूपजलधि के रत्न— राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ जनकपुर में पहुँचते हैं। मुनि के साथ दो अतिसुन्दर बालकों को देखकर राजा जनक उनकी सुन्दरता की ओर अति चकित दृष्टि से देखते हैं और कल्पना करते हैं कि ये दोनों सुन्दर बालक रूप–जलधि के रत्न हैं। ये सुछबि–तिय–लोचन हैं, या अश्विनीकुमार हैं या स्वयं ब्रह्मा और शिव हैं। इस पक्ष में लक्ष्मण के लिये रूपजलधि के रत्न, सुछवि–तिय–लोचन और अश्विनीकुमार तथा शिव–इन चार उपमानों का प्रयोग किया गया है—

रूप–जलधि के रतन, सुछवि–तिय–लोचन ललित ललाए।
किंधौं रबि–सुवन, मदन–ऋतुपति, किंधौं हरि हर वेष बनाए।
किंधौं आपने सुकृत–सुरतरु के सुफल रावरेहि पाए। (गी० १/६३)
इस प्रसङ्ग में इन्हें कल्पवृक्ष भी कहा गया है।

विहग— वनगमन के लिये माता सुमित्रा से आज्ञा लेने के लिये लक्ष्मण उनके पास जाते हैं। माँ सुमित्रा उन्हें सहर्ष आज्ञा प्रदान करती हैं और मन, कर्म और वचन से राम की सेवा करने का निर्देश देती हैं। इसे सुनकर लक्ष्मण इतनी तेजी से राम के पास भागे जिस तेजी से वधिक के भय से पक्षी भागता है—

कीजहु इहै बिचार निरंतर राम समीप सुकृत नहिं थोरे।
तुलसी सुनि सिष चले चकित–चित, उड्यो मानो बिहग बधिक भए भोरे।
(गी० २/११)

सुप्रेम— वन–मार्ग में गमन करते हुए राम–लक्ष्मण और सीता को ग्रामवधुओं ने देखा और उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो गयीं। यहाँ गोस्वामी जी ने राम, लक्ष्मण और सीता को काम, वसन्त और रति से उपमित किया है। ये उपमान इन्हीं तीनों के लिये रामचरितमानस में भी आ चुके हैं, पर यहाँ एक नया उपमान श्रृंगार, सुप्रेम और सौन्दर्य क्रमशः राम, लक्ष्मण और सीता के लिये प्रयुक्त किया गया है—

मानहुं रति ऋतुनाथ सहित मुनि–वेष बनाए है मैन।
किंधौ सिंगार–सुखमा–सुप्रेम मिलि चले जग–चित–वित लैन।।
(गी०२/२४)

स्वर्णहार— वन–मार्ग में ग्रामबाला अपनी प्रिय सखी को इङ्गित करके कहती है— हे सजनि! देखो इन तीनों की ऐसी शोभा है मानों धरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन्द्रनील, हाटक और मुक्तामणि का हार पहने हो। यहाँ राम, लक्ष्मण और सीता क्रमशः पृथ्वी के इन्द्रनील, सुवर्ण और मुक्तामणि के हार की छवि दे रहे हैं—

जुगुल बीच सुकुमारि नारि इक राजति बिनहि सिंगार।
इन्द्रनील, हाटक, मुकुतामनि जनु पहिरे महि हार। (गी०२/२९)

रथ—चीर (वस्त्र का पुतला)— राम की आज्ञा से लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ने के लिये जाते हैं। वहाँ सीता को अकेली छोड़कर जब वे अयोध्या— प्रस्थान के लिये रथ पर बैठे तब स्पन्दनहीन हो गये। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग जड़वत् हो गये। उस समय लक्ष्मण क्रिया—शून्य हो गये थे, तभी तुलसीदास ने उनको वस्त्र के पुतले से उपमित किया है—

गौने मौनही बारहि बार परि—परि पाय।
जात जनु रथ चीर कर लछिमन मगन पछिताय।। (गी०७/३१)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चतुर्थ अध्याय

लक्ष्मण का दार्शनिक स्वरूप

- लक्ष्मण का बीजतत्त्व
- अवतारवाद के सन्दर्भ में लक्ष्मण का स्वरूप और प्रयोजन
- दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में लक्ष्मण का स्वरूप
- पुरुषार्थचतुष्टय और लक्ष्मण
    - अर्थ
    - धर्म
    - काम
    - मोक्ष
- ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का स्वरूप और लक्ष्मण
- लक्ष्मण–गीता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चतुर्थ अध्याय

लक्ष्मण का दार्शनिक स्वरूप

लक्ष्मण का बीजतत्त्व:

पुत्रेष्टियज्ञ— वृद्धावस्था में सन्तान का अभाव दशरथ के लिये विषाद और सन्ताप का कारण बन गया। बहुत दिनों तक अपनी आन्तरिक वेदना को छिपाये रहने के बाद एक दिन उन्होंने राजगुरु वशिष्ठ के समक्ष अपनी हृदयस्थ पीड़ा को व्यक्त किया। एक चक्रवर्ती सम्राट् के आर्त वचन सुनकर राजगुरु वशिष्ठ का हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने राजा दशरथ को पुत्रेष्टि यज्ञ कराने की मन्त्रणा दी। राजा ने पुत्रेष्टि यज्ञ की तैयारी आरम्भ की। यज्ञ का सम्पादन परम मेधावी और वेदों के ज्ञाता तपस्विराज शृंङ्गी ऋषि ने किया। उन्होंने अथर्ववेद के मन्त्रों से पुत्रेष्टि यज्ञ पूर्ण किया। श्रौतविधि से अग्नि में आहुति देने से देवता, सिद्ध, गन्धर्व, महर्षिगण अप्रकट रूप से अपना अपना भाग ग्रहण करने के लिये वहाँ उपस्थित हुए। यज्ञ के पूर्ण होने पर हवनकुण्ड से एक दिव्य महापुरुष का आविर्भाव हुआ, जिनके द्वारा राजा को हविष् (खीर) दिया गया। राजा दशरथ ने अपनी रानियों में उस खीर को बाँट दिया जिसके प्राशन से उनकी तीनों रानियाँ गर्भवती हो गयीं तथा उपयुक्त समय पर उनके गर्भ से राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न— ये चार पुत्र उत्पन्न हुए।

खीर का अनुपात— खीर के अनुपात के अनुसार ही चारों पुत्रों में ईश्वर का अंश वर्तमान था। खीर के अनुपात का उल्लेख भिन्न–भिन्न रामकाव्यों में भिन्न–भिन्न प्रकार से दिया गया है। यहाँ कुछ प्रसिद्ध काव्यों के मत उद्धृत किये जा रहे हैं जिनके आधार पर लक्ष्मण के बीजतत्त्व का निरूपण किया जा सकता है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार राजा दशरथ ने सम्पूर्ण क्षीर का आधा भाग कौशल्या को दे कर शेष भाग का आधा सुमित्रा को दे दिया। शेष बचे भाग में से आधा भाग कैकेयी को और उससे शेष बचे भाग को, बहुत विचार करने के बाद, पुनः सुमित्रा को दिया। वाल्मीकि के शब्दों में हवि (खीर) का विभाजन निम्नाङ्कित रीति से सम्पन्न हुआ—

कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा।
अर्धादर्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कैकेय्यै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात्।
प्रददौ चाविशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम्॥
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः।
एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक्[1]॥

इसके अनुसार सम्पूर्ण हवि (खीर) का १/२ भाग कौसल्या, ३/८ भाग सुमित्रा को तथा १/८ भाग कैकेयी को मिला। अतः विष्णु के अर्धांश से राम और आठवें अंश से भरत तथा ३/१६ अंश से लक्ष्मण और शत्रुघ्न अवतरित हुए। किन्तु आगे चलकर वाल्मीकि ने स्वयं कहा है कि १/४ अंश से लक्ष्मण, १/४ अंश से भरत और १/४ अंश से शत्रुघ्न का अवतार हुआ—

अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत् सुतौ।
वीरौ सर्वास्त्रकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ[1]॥

पुनः भरत को भी "विष्णोश्चतुर्भागः" कहा—

भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः।
साक्षाद् विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः[1]॥

वाल्मीकि रामायण में यज्ञ के चरु और अंश में स्वयं विसङ्गति है, अतः इनके आधार पर विष्णु के किस अंश से लक्ष्मण का अवतार हुआ? इसे निश्चित रूप से कह सकना कठिन है।

अध्यात्मरामायण के रचयिता ने उसमें जो चरु–वितरण की व्यवस्था बतलायी है, रामचरितमानस की चरु–वितरणव्यवस्था से वह कुछ अंशों में मिलती है। यह समता क्रमशः दो है—

१. सुमित्रा से पहले चरु का कैकेयी को प्राप्त होना।

२. कौसल्या–कैकेयी द्वारा अपने हाथों सुमित्रा को चरु देना।

परन्तु अध्यात्मरामायण में हवि के अंश–विभाजन का जो वर्णन है तथा रामचरितमानस में "हवि–अंश–विभाजन" का जो उल्लेख है उन दोनों में भेद है।

इन तीन पक्षों के अतिरिक्त अध्यात्मरामायण में चरु–वितरण–व्यवस्था के सन्दर्भ में एक चतुर्थ पक्ष यह उठ खड़ा होता है कि अग्नि की आज्ञा से शृङ्गी ऋषि, वशिष्ठ जी के अनुमोदन पर, दशरथ द्वारा चरु कौसल्या और कैकेयी में बँटवाते हैं, अर्थात् शृङ्गी ऋषि ने वशिष्ठ की सहमति से चरु केवल दो रानियों में बँटवाई। महाराज दशरथ ने अपने हाथों से केवल कौसल्या और कैकेयी को सम्पूर्ण हवि का आधा आधा भाग बाँट दिया। चरु–वितरण के समय सुमित्रा वहाँ अनुपस्थित थी, "ततः सुमित्रा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्प्राप्ता"[२३] के अनुसार सुमित्रा बाद में आती है और कौसल्या तथा कैकेयी से आधा–आधा हवि प्राप्त कर लेती हैं। अतः सम्पूर्ण हवि का १/४ कौसल्या १/४ कैकेयी और १/२ भाग सुमित्रा को मिलता है। जन्म–प्रसङ्ग में विष्णु के अंशों का विभाजन नहीं मिलता, किन्तु हवि के १/४ भाग से जन्म लेने के कारण विष्णु का चतुर्थांश लक्ष्मण को कहा जा सकता है।

आनन्दरामायणकार ने इस प्रसङ्ग को बहुत ही अस्पष्ट रखा है। "राज्ञा विभक्तं स्त्रीभ्यस्तत्"[२६] कह कर चरु का विभाजन तो ३३$\frac{1}{3}$ से प्रत्येक को होना बता दिया है जिसमें कैकेयी का भाग तो गृध्री ले गयी, शेष दोनों के पास बचे ६६$\frac{2}{3}$ में से दोनों ने कैकेयी को थोड़ा–थोड़ा दिया जिसका कोई निश्चित परिमाण नहीं बताया जा सकता[२६]। इसके अनुरूप ही जन्म–प्रसङ्ग में भी विष्णु के कितने अंशों से किसकी उत्पत्ति हुई? –इसका कोई उल्लेख नहीं है।

इस ग्रन्थ में लक्ष्मण को स्पष्टतः शेषावतार बताया गया है[२६]। विष्णु के पार्षद शङ्ख और चक्र क्रमशः भरत और शत्रुघ्न के रूप में अवतरित हुए[२६]। आनन्दरामायण के अनुसार लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न से ज्येष्ठ थे–

सुमित्रातनयं नाम्ना लक्ष्मणं गुरुरब्रवीत्।
ततो भरतशत्रुघ्ननामनी प्राह वै गुरुः[२६]॥

रघुवंश महाकाव्य के प्रेणता महाकवि कालिदास के अनुसार चरु अग्निदेव ने नहीं, "प्राजापत्य" अर्थात् प्रजापति–सम्बन्धी पुरुष ने दिया–

प्राजापत्योपनीतं तदन्नं प्रत्यग्रहीन्नृपः।
वृषेव पयसां सारमाविष्कृतमुदन्वता॥ (रघु०, १०/५२)

यह चरु विष्णुसम्बन्धी तेज था–

स तेजो वैष्णवं पत्न्योर्विभेजे चरुसंज्ञितम्।
द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रमहर्पतिरिवातपम्॥ (रघु०१०/५४)

इस चरु को दशरथ ने कौसल्या, कैकेयी के लिये दो भागों में विभक्त किया, जैसे सूर्य अपने प्रकाश को पृथ्वी और आकाश के लिये विभक्त करता है। दशरथ ने स्वयं अपने हाथों से सुमित्रा को चरु नहीं दिया। दशरथ अपनी अभिषिक्ता कौसल्या तथा प्रिया कैकेयी के हाथों, सुमित्रा को चरु दिलाकर अधिक सम्मानित करना चाहते थे–

ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः।
चरोरर्धार्धभागाभ्यां तामयोजयतामुभे॥ (रघु०, १०/५६)

सुमित्रा के अपमान को कवि ने बचाने का प्रयास किया है। उसने बतलाया है कि हाथी के कपोल–मण्डल से चू रही दो मदधाराओं (कौसल्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और कैकेयी) के बीच भ्रमरी (सुमित्रा) दोनों मदधाराओं को बराबर प्रेम करती है–

सा हि प्रणयवत्यासीत् सपत्न्योरुभयोरपि।
भ्रमरी वारणस्यैव मदनिस्यन्दरेखयोः।। (रघु०, १०/५७)

अर्थात् सुमित्रा ईर्ष्यारहित तथा अपनी दोनों सौतों से स्नेहयुक्त व्यवहार रखने वाली थीं।

रघुवंश में भी अध्यात्मरामायण के समान ही चरु–विभाजन क्रमशः कौसल्या १/४, कैकेयी १/४ तथा सुमित्रा १/४+१/४=१/२ हुआ है। जन्म के सन्दर्भ में विष्णु के अंशों के अवतार का उल्लेख इसमें नहीं है। लक्ष्मण एक चतुर्थांश विष्णु–तेज से, शत्रुघ्न के साथ यमज के रूप में, भाइयों में तीसरे भाई के रूप में, विद्या से उत्पन्न प्रबोध के समान जंन्मे–

सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रा सुषुवे यमौ।
सम्यगाराधिता विद्या प्रबोध–विनयाविव।। (रघु० १०/७१)

पद्मपुराण से अनुकृत होने का आभास मिलता है।

श्रीमद्भागवत के प्रणेता ने नवमस्कन्ध के दशम अध्याय में न तो पुत्रेष्टि यज्ञ का नाम लिया और न चरु–विभाजन को चर्चा की। जन्म के प्रसङ्ग में केवल एक श्लोक में राम के लिये लिखा है कि "साक्षात् ब्रह्ममयो हरिः"। वहाँ यह भी उल्लिखित है कि देवताओं द्वारा प्रार्थित अंशांशों से युक्त चार भागों में पुत्रों के रूप में ब्रह्म ने जन्म लिया है–"रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया"। इस श्लोक के क्रम में राम के बाद लक्ष्मण का ही नाम दिया गया है। नामों को इस क्रम में रखने का तात्पर्य अनुगामी भाव लक्ष्य रहा हो, समास–सुविधा की दृष्टि रही हो, ज्येष्ठकनिष्ठ–निरूपण का अभिप्राय भी अन्य ग्रन्थों की भाँति हो सकता है। राम को साक्षात् ब्रह्ममय कहकर राम को पूर्ण माना गया तो शेष कोई अंश बचा ही नहीं, फिर भी "अंशाशेन चतुर्भागात्"[२७] के अनुसार लक्ष्मण विष्णु के १/४ एक चतुर्थांश से उत्पन्न माने गये। "अंशाशेन" के यद्यपि अनेक अर्थ हो सकते हैं, फिर भी इस शब्द से चरु–विभाजन की एक कल्पना ग्रन्थकार के मन मे अवश्य रही होगी।

नृसिंहपुराण के अनुसार "सुवर्णपात्रस्थ"[२८] हवि को लेकर किसी देवता के "वह्निकुण्ड"[२८] से प्रकट होने का उल्लेख मिलता है। "सुवर्णपात्र" का उल्लेख अधिकांश राम–कथा प्रणेताओं ने किया है, किन्तु तुलसी–साहित्य में कहीं भी सुवर्ण–पात्र का उल्लेख नहीं मिलता। "पायस हवि" को मुनियों ने ग्रहण किया और मन्त्र से उसको दो पिण्ड भाग में विभक्त किया[२८]। उन अभिमन्त्रित दोनों पिण्डों को कौसल्या और कैकेयी को दिया[२८]। दशरथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ने न तो हवि को ग्रहण किया है और न बाँटा है, यह समस्त कार्य मुनियों ने किया है। पिण्ड–वितरण के समय यहाँ भी सुमित्रा अनुपस्थित पायी जाती है, किन्तु पिण्ड–प्राशन के समय दोनों अपने भाग में से थोड़ा–थोड़ा (अल्पं–अल्पं) अंश सुमित्रा को देती हैं[२८]। इस "अल्पं–अल्पं" का कोई निश्चित परिमाण न बतलाने के कारण जन्म–प्रसङ्ग में विष्णु के अंशों का विभाजन यद्यपि निश्चित नहीं, फिर भी लेखक ने चार अंश स्वीकार किये हैं। इस प्रकार चारों अंशों का यद्यपि कोई निश्चित परिमाण नहीं मिलता, फिर भी सामान्य रूप से 'चतुर्द्धा' शब्द से लक्ष्मण की उत्पत्ति चतुर्थांश (१/४ भाग) से मानी जा सकती है। उत्पत्ति के सम्बन्ध में राम के बाद ही लक्ष्मण का नाम आ जाता है,[२८] जबकि "हविर्भाग" सुमित्रा को बाद में प्राप्त हुआ है। नाम को इस क्रम में रखने का तात्पर्य आगे के श्लोकों में अत्यन्त स्पष्ट रूप से बता दिया गया है। "मन्त्रपिण्ड" के कारण ही लक्ष्मण सदा राम के साथ रहे, यह अनागामी भाव ही नाम–क्रम का कारण हो सकता है अथवा ज्येष्ठ–कनिष्ठ भाव के ध्यान से भी वैसे हो सकता है।

अग्निपुराण के अनुसार ऋष्यशृङ्ग के द्वारा दिये गये पायस से चारों भाइयों की उत्पत्ति हुई[२९]। रावण आदि के वध के लिये स्वयं हरि चार अंशों में अवतीर्ण हुए[२९]। यद्यपि जन्म के सन्दर्भ में अवतरित अंशों का कोई निश्चित परिमाण नहीं मिलता है, फिर भी 'चतुर्द्धा' शब्द से सामान्यतः लक्ष्मण की उत्पत्ति चतुर्थांश (१/४भाग) से मानी जा सकती है। जन्मक्रम से राम के बाद भरत का नाम तथा तृतीय पुत्र के रूप में लक्ष्मण का नाम आता है[२९]। सुमित्रा से ही लक्ष्मण की उत्पत्ति स्वीकार की गयी है।

नृसिंह–पुराण में"राजपत्नीषु त्रिषु दशरथाज्जातविष्णुः" कहकर किस माता से किस पुत्र की उत्पत्ति हुई? इस तथ्य का कोई क्रम नहीं बताया गया है। किन्तु अग्निपुराण में प्रत्येक माता से उत्पन्न पुत्रों का क्रमबद्ध स्पष्ट उल्लेख मिलता है[२९]।

पद्मपुराण के अनुसार यज्ञकुण्ड से लक्ष्मी के साथ विष्णु के आविर्भाव का उल्लेख मिलता है[३०]। लक्ष्मी के हाथ पर रखे हुए सुवर्णपात्र को विष्णु ने अपने हाथ से लक्ष्मी से लेकर दशरथ को दिया[३०] और पायस को पत्नियों को देने का आदेश भी विष्णु ने ही दिया[३०]।

उपर्युक्त सभी विचार अन्य पुराणों से भिन्न एवं सर्वथा नवीन है। विष्णु के अन्तर्हित होने पर राजा ने वहीं ज्येष्ठा और कनिष्ठा रानियों को समक्ष देखकर, पायस को दोनों में बाँट दिया[३०]। यद्यपि ग्रन्थ में विभाजन के परिमाण का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, फिर भी "विभज्य" शब्द से 'आधा–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आधा' अर्थ लिया जा सकता है। इस प्रसङ्ग में मध्यमा सुमित्रा की विभाजन के समय अनुपस्थिति तथा आगे उनके आने का वर्णन मिलता है[३०]। इस श्लोक में 'पुत्र–कामा' शब्द से सुमित्रा के आने का कारण स्पष्ट ही है। सुमित्रा के आने पर कौसल्या, कैकेयी ने अपने भाग का आधा–आधा पायस सुमित्रा को दिया–

तां दृष्ट्वा तत्र कौशल्या कैकेयी च सुमध्यमा।
अर्द्धमर्द्धं प्रददतुस्ते भागं पायसं स्वकम्[३०]।।

यद्यपि इस श्लोक में चरु–विभाजन के निश्चित परिमाण का उल्लेख नहीं है, फिर भी प्रसङ्गानुरूप लक्ष्मण की उत्पत्ति १/४ अंश से स्पष्ट मानी जा सकती है। इसी अध्याय के ५६वें श्लोक में "तनया उत्पत्स्यन्ते मदंशजाः" उल्लिखित है, जिसमें अंशों का कोई परिमाण नहीं है, परन्तु चारों भाईयों की उत्पत्ति चतुर्थांश चतुर्थांश (प्रत्येक की १/४अंश) से हुई है।

जन्मप्रसङ्ग में कैकेयी से पाञ्चजन्य के अंश के रूप में भरत की, अनन्तांश से सुमित्रा में लक्ष्मंण की, सुदर्शनांश से सुमित्रा में ही शत्रुघ्न की उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है–

कैकेय्यां भरतो जज्ञे पाञ्चजन्यांशसम्भवः।
सुमित्रा जनयामास लक्ष्मणं शुभलक्ष्मणम्।।
शत्रुघ्नं च महाभागा देवशत्रुप्रतापनम्।
अनन्तांशेन सम्भूतो लक्ष्मणः परवीरहा।
सुदर्शनांशाच्छत्रुघ्नः सञ्जज्ञेऽमितविक्रमः[३०]।।

इस प्रसङ्ग में लक्ष्मण को विष्णु के अंश, नित्यपार्षद, विष्णु के आधार शेष (शय्या) के रूप में चित्रित किया गया है, जबकि भरत के सम्बन्ध में एक पंक्ति लिखी गयी, पर लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न के लिये दो दो पंक्तियाँ लिखी गयी हैं। प्रसङ्गानुसार लक्ष्मण तृतीय पुत्र हैं।

लक्ष्मणोत्पत्ति का विवेचन पूर्वकथित सभी राम–कथाकारों की अपेक्षा रामचरितमानस में अत्यन्त स्पष्ट, विलक्षण और श्रेष्ठ है। तुलसीदास ने अपनी प्रतिज्ञानुसार अपने से पूर्व रचित ग्रन्थों की सभी घटनाओं का आश्रय रामचरितमानस की रचना के लिये लिया था जो "नानापुराणनिगमागमसम्मतं" से स्पष्ट है, परन्तु इसके बाद भी उन्होंने इस महाकाव्य में अपनी विशेषता अक्षुण्ण रखी है। अन्य लेखकों ने बताया है कि पुत्रेष्टि यज्ञ के निमित्त महाराज दशरथ ने ऋष्यशृङ्ग को बुलाया, किन्तु तुलसीदास के अनुसार दशरथ ने अपना दुःख–सुख गुरु वशिष्ठ को सुनाया और उन्होंने ऋष्यशृङ्ग को बुलाकर शुभ पुत्र–काम यज्ञ कराया। भक्तिपूर्वक मुनि ने आहुति दी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्मरण रहे कि अन्य ग्रन्थकारों ने ''विधिपूर्वक'' ''मन्त्र'' आदि के साथ आहुति देने का उल्लेख किया है, परन्तु तुलसीदास ने भक्ति के साथ आहुति देने का वर्णन किया है। इसके द्वारा तुलसीदास ने कर्म से भक्ति का उत्कर्ष दरसाया है। आराधना का मूल श्रद्धा और भक्ति माना जाता है।

तुलसीदास के अनुसार अग्निदेव स्वयं चरु लेकर प्रकट हुए हैं, जबकि वाल्मीकि के अनुसार तेजस्वी महाबली, पराक्रमी, लाल वस्त्र धारण किये, लाल मुँहवाला, सिंह के समान, दाढ़ी–केशवाला, पर्वत के समान विशाल, सूर्य के समान तेजस्वी, जलती हुई अग्नि के समान असह्य प्रकाशवाला, दिव्य पुरुष हाथ में उत्तम स्वर्ण–पात्र में दिव्य पायस लिये प्रकट हुआ[५]।

अन्य रामकथाकारों ने यज्ञकुण्ड से लक्ष्मी के साथ विष्णु के अथवा दिव्य पुरुष के या प्रजापति, ब्रह्मा के दूत के प्रकट होने का उल्लेख किया है। कुछ ग्रन्थकारों ने हवि, पायस और चरु के रूप में सुवर्णपात्र में स्थित यज्ञीय वस्तु का वर्णन किया है, किन्तु तुलसीदास ने 'चरु' शब्द का ही प्रयोग किया है।

रामचरितमानस में अग्निदेव ने ही चरु–विभाजन तथा वशिष्ठ के हृदय के विचारों की सिद्धि का आदेश दिया। वशिष्ठ के हृदय का विचार आशीर्वाद के रूप में दशरथ को स्वतः प्राप्त था ही–

धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत भय हारी।।

जैसा कि ऊपर वर्णित है, हवि–वितरण का आदेश कहीं वशिष्ठजी द्वारा, कहीं ऋष्यशृङ्ग द्वारा, कहीं अग्नि द्वारा, कहीं विष्णु द्वारा और कहीं दिव्य पुरुष द्वारा दिया गया है, किन्तु तुलसीदास के अनुसार हवि–वितरण का स्पष्ट आदेश प्रकट हुए अग्निदेव द्वारा ही दिया गया है–

यह हवि बाँटि देहु नृप जाई।

''जाई'' शब्द से स्पष्ट है कि रानियाँ यज्ञशाला में उपस्थित नहीं थीं। वाल्मीकि रामायण के अनुसार भी दशरथ को महल में जाकर हविष्यान्न बाँटना पड़ा था[५]। राजा दशरथ ने अपनी रानियों को बुलाकर चरु वितरित किया–

तबहिं रायँ प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं।।

और यथायोग्य हवि का विभाजन कर रानियों में चरुवितरण का आदेश अग्निदेव ने दिया था–

यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई।।

स्पष्ट रूप से मानस में चरु का वितरण निम्नाङ्कित ढंग से सम्पन्न हुआ है–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा।।
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ।।
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि[१]।।

अर्थात् कौसल्या को १/२, कैकेयी को १/४ तथा सुमित्रा को १/८+१/८=१/४ भाग मिला। इस प्रसङ्ग में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हविष्यान्न सुमित्रा को दशरथ के द्वारा नहीं दिया गया, अपितु कौसल्या और कैकेयी के द्वारा दिया गया।

टीकाकार पं० रामकुमार के अनुसार वशिष्ठ त्रिकालज्ञ थे। ब्रह्माजी ने उनसे अंशों सहित ब्रह्म के अवतार का उल्लेख किया था, अत: वशिष्ठजी को यह ज्ञात था कि कौन सा अंश किस रानी के द्वारा प्रकट होगा। उन्होंने तदनुसार ही दशरथ से हविष्यान्न के भाग बनवाये और रानियों में वितरित करवाये। यदि ऐसा न होता तो "जथा जोग जेहि भाग बनाई" का अभिप्राय महाराज दशरथ गुरु वशिष्ठ से अवश्य पूछते।

कौसल्या को प्रथम अर्द्ध भाग प्राप्त हुआ था जिससे कौसल्या से राम ज्येष्ठ पुत्र के रूप में अवतरित हुए। चतुर्थ भाग से भरत की उत्पत्ति हुई और शेष चतुर्थ भाग के आधे–आधे से लक्ष्मण और शत्रुघ्न की उत्पत्ति। इस प्रकार लक्ष्मण की उत्पत्ति अष्टमांश से हुई है। कौसल्या के द्वारा दिये गये पायस से लक्ष्मण और कैकेयी द्वारा दिये गये पायस से शत्रुघ्न की उत्पत्ति हुई, जिसके फलस्वरूप लक्ष्मण रामानुगामी और शत्रुघ्न भरतानुगामी हुए। इसीलिये मानस में लक्ष्मण को 'रामानुज' और शत्रुघ्न को 'भरतानुज' कहा गया है।

कौसल्या के ले लेने के बाद जो हविष्यान्न का उच्छिष्ट (अवशिष्ट) अंश था उसी में तीन भाग हुए थे, इसी से भ्राताओं में भी स्वामी–सेवक, शेषी–शेष, अंशी–अंश भाव सिद्ध है, अर्थात् लक्ष्मण सेवक, शेष और अंश हैं।

विद्वानों का यह भी मत है कि कौसल्या को अभिषिक्ता के कारण कैकेयी को अतिप्रिया के कारण दशरथ ने चरु दिया। पर उसी समय सुमित्रा के वहाँ आ जाने के कारण दशरथ बहुत असमञ्जस में पड़ गये। यदि सुमित्रा को चरु न दिया गया तो उनका अपमान हो जायगा। अत: उन्होंने बचे भाग के दो विभाग कर दिये। एक भाग कैकेयी को दिया। पुन: महाराज दशरथ ने सोचा कि यदि कैकेयी और सुमित्रा को बराबर भाग मिला तो कैकेयी ईर्ष्या करेंगी। अतएव उन्होंने बचे हुए एक चतुर्थांश भाग का दो भाग किया। क्रमश: कौशल्या और कैकेयी के हाथों में वे दोनों भाग देकर सुमित्रा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को देने का निर्देश दिया। इस पर दोनों ने वह एक अष्टमांश भाग दशरथ को देकर, सुमित्रा को देने के लिये कहा और दशरथ ने वह भाग स्वयं सुमित्रा को दे दिया।

सुमित्रा को दिये जाने वाले चरु के दो भाग करने का तात्पर्य आकाश–वाणी और वशिष्ठ–वांणी को सत्य करना था कि दशरथ को चार पुत्र होंगे। अतः दो पुत्रों के लिये दो भाग बनाना आवश्यक था। दशरथ द्वारा कैकेयी को चरु का दिया जाने वाला भाग तीन हिस्सों में विभक्त किया गया, जिसे उन्होंने विलक्षण चतुरता के साथ कैकेयी और कौसल्या को देकर पुनः उनसे प्राप्त कर लिया और सुमित्रा को दे दिया। कौसल्या और कैकेयी से प्राप्त हुए शेष चरु लक्ष्मण और शत्रुघ्न के बीजतत्त्व हुए। उसी बीजतत्त्व द्वारा कौशल्या तथा कैकेयी में गर्भाधान हुआ। इसीलिये लङ्काकाण्ड में राम ने "मिलइ न जगत सहोदर भ्राता" कहकर इसी बीजतत्त्व की पुष्टि की है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि बीज रूप में लक्ष्मण ब्रह्म के आठवें भाग हैं और राम का सहोदर होने के कारण वे उनके अनुगामी और सेवक बने जिससे उन्हें "रामानुज" की संज्ञा मिली।

अवतारवाद के सन्दर्भ में लक्ष्मण का स्वरूप और प्रयोजन

अवतार के सन्दर्भ में लक्ष्मण के स्वरूप–निरूपण के लिये अवतारवाद को समझना अपेक्षित है। "अवतार" ब्राह्मणधर्म में प्रचलित एक महत्त्वपूर्ण विचार–धारा है जिसके अनुसार ईश्वर शरीर धारण कर इस पृथ्वी पर कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अवतरित होता है। अवतारनिरूपण तुलसीदास द्वारा प्रतिपाद्य चरित्र–चित्रण का एक मुख्य अंग है। "अवतार" शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ है–"उतरना"। भक्त का भगवान् सर्वव्यापक होते हुए भी वैकुण्ठ–सदृश विशिष्ट स्थान में निवास करता है, जिसकी कल्पना भूर्लोक से ऊपर की गयी है। आवश्यकता पड़ने पर वह भक्त के कल्याण के लिये भूतल पर उतर आता है। वैकुण्ठ से जगत् में भगवान् का आगमन ही उसका "अवतार" है–"अवतरणं वैकुण्ठादागमनम्" (सुबोधिनी–१/१/२ पर टिप्पणी)। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे[१]॥ (भ०गी०४/ ७)

जिसके अनुसार वह निराकार विग्रह सच्चिदानन्दघन परमात्मा समय समय पर आवश्यकतानुसार दिव्य जन्म तथा दिव्य कर्म के साथ अवतरित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता है। वह निराकार ब्रह्म साकार स्वरूप में क्यों अवतार लेता है? इसके सम्बन्ध में स्वयं गोस्वामीजी ने लिखा है–

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई।।

अपनी–अपनी भावना और विचार के अनुसार ईश्वरावतार के अनेक कारण वर्णित किये गये है–

राम जनम के हेतु अनेका। परम विचित्र एक तें एका।।

भगवान् शङ्कर ने विष्णु के अवतार के चार कारण माने हैं, जिनमें राक्षसों का मर्दन, देवताओं का संवर्धन, वेदों की रक्षा और जगत् में अपनी कीर्ति की स्थापना है–

असुर मारि, थापहिं सुरन्हं, राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग विस्तारहिं बिसद जस, राम जन्मि कर हेतु।।

भगवान् के अवतार के कारणों[१] की व्याख्या भी उन्हीं के स्वरूप के अनुसार दुरूह व इन्द्रियातीत है। उनके अवतार के कारणों को भी मनुष्य अपने भावानुकूल ही मानता है। धर्मनिष्ठ महात्मा भगवान् को अपने धर्म की रक्षा के निमित्त,[१] देवता स्व–रक्षा हेतु[१] एवं राक्षसगण अपने को गति देने के निमित्त[१] अवतरित हुआ समझते हैं। कार्यकारणातीत परमात्मा यद्यपि सहज ही अवतीर्ण होता है, पर उसकी इस सहजशीलता से अपरिमित कल्याण तथा लोकसंग्रह के क्षेत्र में सन्मार्ग–प्रदर्शन होता है[२]। ब्रह्मानन्द में परिनिष्ठित[१] निराकारोपासक अमलात्मा परमहंसों को निज साकार विग्रह का साक्षात् दिव्य दर्शन देकर भक्ति की प्रवृत्ति कराना भी ईश्वर के अवतरित होने का हेतु है और वे ब्रह्मनिष्ठ, वेदज्ञ, तत्त्वज्ञ, महान् ऋषिगण उस अवतरित दिव्य विग्रह की दर्शनानुभूति में अपना परमतत्त्व भी विस्मृत कर "कोटि कन्दर्प कमनीय" स्वरूप–दर्शन को निर्निमेष निहारते रहने[१] में ही अपना कर्तव्य मानते हैं। उस अवतरित आनन्दविग्रह के सम्मुख निराकार ब्रह्मसुख, जो उनका एकमात्र परम धर्म है, को त्यागने में रञ्चमात्र भी सङ्कोच न करके उस दिव्य रूप–माधुरी का पान करने में ही अपने को कृतकृत्य मानते हैं। ब्रह्मनिष्ठ जनक इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं[१]।

अनेक धर्म–ग्रन्थों में प्रभु अवतार के इन्हीं कारणों का विवेचन किया गया है, परन्तु ये धर्म–ग्रन्थ भी अवतार–कारणों का सम्यक् वर्णन करने में असमर्थ हैं। जगत्स्रष्टा ब्रह्मा भी उस अवतरित रूप का, अवतार के कारणों का पूर्णतः वर्णन करने में अपने को असमर्थ पाते हैं[२७]। अवतारवाद के रहस्य का वेत्ता भी कोई विरला साधक हो सकता है जो उनके जन्म और कर्म को सम्यक् रीत्या जान सकता है तथा उनकी दिव्यता का ज्ञाता भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्रूप ही बनकर मुक्त हो जाता है[२]। उस प्रभु का अवतार न कर्मप्रेरित होता है और न मायाजनित। कर्म की स्थिति मायाजनित है और प्रभु मायातीत है, अतः वे कर्म से परे हैं[२]; क्योंकि उनका शरीर निर्मित न होकर सच्चिदानन्दमय होने के कारण अनामय एवं दिव्य हुआ करता है। इसी कारण उनका प्राकट्य और अदृश्य होना पञ्चभूत निर्मित भूतों की भाँति न होकर स्वतन्त्र है। इसका प्रमाण उनका यत्र तत्र प्रकट होना है[१], अन्तर्धान होना है, तथा इच्छानुसार रूपपरिवर्तन कर लेना है[I]। उनका जन्म[II] और उनकी मृत्यु[III] साधारण नहीं, अपितु अलौकिक है।

अवतारविषयक दो प्रमुख शङ्काएं हैं–प्रथम यह कि सर्वशक्तिमान् प्रभु विना अवतरित हुए भी उपर्युक्त कार्यों की पूर्ति कर सकता है, उसके अवतार की क्या आवश्यकता? दूसरी यह कि सर्वत्र व्याप्त ईश्वर सर्वदेशीय होने के कारण एकदेशीय कैसे हो सकता है? सत्यतः ईश्वर अपनी परमशक्तिमत्ता से अघटितघटनापटीयसी माया द्वारा सृष्टि का सर्जन, पालन, संहार या हित सभी कुछ करने में सर्वथा समर्थ हैं, परन्तु "भगत प्रेमबस सगुन सो होई"। विना अवतार धारण किये हुए उसकी दिव्यलीला–माधुरी का रसास्वादन नहीं हो सकता और विना उस दिव्य रसपान के जीव कृतार्थ नहीं होता, उसका कल्याण नहीं होता। परमतत्त्व के लिये सम्भव असम्भव कुछ भी नहीं, वह एकदेशीय उसी प्रकार हो सकता है, जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त निराकार अग्नितत्व साधनों द्वारा प्रकट पूर्ण शक्ति के साथ दृश्य भी है। वह एक स्थल पर इसी अग्नि की भाँति प्रकट होता है और अन्यत्र भी उसकी सत्ता स्थित रहती है।

नारद ने भगवान् कृष्ण को विभिन्न स्थानों पर एक ही समय में भिन्न–भिन्न कार्य करते देखा–

इत्याचरन्तं सद्धर्मान् पावनान् गृहमेधिनाम्।
तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह॥ (भा०, १०/६९/४१)

अवतारविग्रह वस्तुतः उस परम प्रभु का स्वरूप ही है तथा पूर्ववर्णित

I. "राम के जन्म के समय "निज आयुध भुज चारी" रूप का दर्शन कराकर निज जननी की विनीत प्रार्थना (तजहु तात यह रूपा) पर "सुनि बचन सुजाना, रोदन ठाना, होइ बालक सुरभूपा"।

II. इसी के कारण उनके जन्म के समय उनका प्रकट होना वर्णित किया गया है, "जग निवास प्रभु प्रकटे" (मानस, १/१९१) तथा "भए प्रकट कृपाला" (मानस०, १/१९१/छंद–१) कहा गया है।

III. परमधाम गमन के समय पर मानव देह की भाँति न कहकर इस प्रकार कहा गया है–

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम्।
योगधारण याग्नेय्या दग्ध्वा धामाविशत्स्वकम्॥
(भा०, ११/३१/६)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सच्चिदानन्दघन का ही अवतार राम के रूप में है। भगवान् कृष्ण स्वयं अपने को "धर्म का स्वरूप"[२] बताकर अपने को उस धर्म का परमाश्रय भी बताते हैं जिसके बल पर समस्त पृथ्वी आधृत है, प्रतिष्ठित है—"धर्मेण धार्यते पृथ्वी"। उसी धर्म के ह्रास के सङ्कटमय अवसर पर प्रभु को जगत्प्रतिष्ठा हेतु अवतरित होना पड़ता है[२७]।

रामचरितमानस में भी—

नाथ धरेउ नर तनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू।।

उमा के ऐसा प्रश्न करने पर भगवान् शङ्कर उत्तर देते हैं—

जब-जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

रामावतार का यही कारण है, अपितु इसमें प्रमुख भक्तरञ्जन की भावना निहित है। भक्तों के अनन्य प्रेम के कारण ईश्वर निराकार से साकार हो जाते हैं—

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।

अवतार के सन्दर्भ में स्वयं ग्रन्थकार का मत निम्नलिखित है—

व्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना।।
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी।।

निषाद को उपदेश देते हुए लक्ष्मण भगवान् के अवतार के हेतुओं में भगवान् की अहेतुकी कृपा को ही सर्वोपरि स्थान प्रदान करते हैं—

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल।।

रामभक्ति-पथ के परम प्रवीण काकभुशुण्डि भी रामावतार के हेतु भक्तहित ही मानते हैं—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।

कृपानिधान की कृपा ही अवतार-कारणों में सर्वप्रमुख हैं। आकर की अपार निधि ही उसकी अहेतुकी दया है। वही उसकी परमकामना "निज इच्छा"[१] है। भक्तों पर विशेष अनुग्रह प्रदर्शन ही उन्हें शरीर-विग्रह में सीमित कर प्रणत भक्त के सम्मुख दयार्द्र, करुणार्द्र बना देता है। उसी की प्रेरणा के कारण भक्त अपनी भक्ति की ओर प्रवृत्त होकर साकार अवतरण का सम्बल पा कर जीवन्मुक्त बन जाता है। इसलिये "अध्यात्मरामायण" में उनके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अवतार का हेतु "भक्तानां भक्तिसिद्धये"[२३] भी कहा गया है। इसका प्रमाण हम उनको "भक्तवत्सल" रूप में पाकर उनकी इच्छा के पूर्णकर्ता का दर्शन पूर्णरूपेण करते हैं। यही है उनकी निष्कामता और उनका आप्तकाम स्वरूप।

भक्तानुग्रह के पश्चात् रामावतार का दूसरा हेतु भू–भारहरण है,[२३] जिसके अन्तर्गत दो प्रधान कर्मों की विकीर्ण रश्मियाँ उनके अवतार स्वरूप को प्रकाशित करती हैं। वे हैं–साधु–रक्षा और असाधु–दलन[२३]। राम को इन्हीं दो कर्तव्यों का पालन करते हुए हम आजीवन पाते हैं। अरण्यकाण्ड में मुनियों की रक्षा[१] और युद्धकाण्ड में निशाचरों की सद्गति[१] इसके परिचायक हैं। भगवान् का अवतरण सात्त्विक, तामस दोनों विरोधी प्रवृत्तियों को परमगति देने के लिए होता है। इस प्रकार पृथ्वी के भारस्वरूप अधर्म का निवारण भी भगवान् के अवतार का प्रमुख हेतु है और साथ ही अपना परमाश्रय देकर देवों को अभय करना भी है–

हरिहउं सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई।।

यह कार्य उनकी "विश्व कल्याण"[१] की भावना का मूल है, परन्तु केवल सङ्कटनिवारण से तो कार्य की इतिश्री नहीं होती। यह तो केवल विश्वमञ्च को निर्विघ्न करने की पृष्ठभूमि ही है। अतः इस हेतु से आगे भी कुछ करणीय है। और वह है उनका शास्त्रोक्त मर्यादा–पालन कर उस रङ्गमञ्च पर आदर्श अनुकरणीय अनुभव। वाल्मीकि की सूक्ष्म दृष्टि, आशुग्राहिणी एवं दूरदर्शिनी बुद्धि, उनका रूप देखते ही कह उठती है–

"श्रुति सेतु पालक राम तुम"

अवतार के इस हेतु का व्यापक रूप उनके मर्यादापुरुषोत्तमत्व में दर्शनीय है, जिस पर परमादर्श का अनुसरण कर समस्त प्रजा भी तद्रूप आदर्शमय बन गयी[१]। वाल्मीकि के मतानुसार पुत्रेष्टियज्ञ के समय अपने भाग को ग्रहण करने के लिये आये हुये अप्रकट ऋषियों, किन्नरों और देवताओं ने भगवान् विष्णु से अवतार लेने के लिये प्रार्थना की[५] और विनय किया कि रावणादि राक्षसों का वध करके वे पृथ्वी को निष्कण्टक बना दें–

त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया।
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम्।।
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम्[५]।

देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने चार रूपों में विभक्त होकर अवतार लेने का सङ्कल्प किया[५]। अध्यात्मरामायण में देवताओं के स्थान पर स्वयं ब्रह्मा ने इन्द्रनीलसम श्यामवर्ण श्रीवत्सकौस्तुभादि से प्रकाशित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विष्णु की प्रार्थना कर उनसे मनुष्य रूप में अवतरित होकर त्रिलोकविध्वंसक रावण का वध करने की प्रार्थना की[२३]। ब्रह्मा की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने स्वयं चार भागों में विभक्त होकर अवतार लेने का सङ्कल्प किया[२३]।

दोनों रामायणों में विष्णु के चतुर्भाग की चर्चा हुई है, किन्तु इस तथ्य का स्पष्टीकरण गोस्वामी जी ने "मानस" में भलीभाँति किया है। इनके ब्रह्म रूप में अवतरित होने के पूर्व "अंसन्ह सहित" अवतरित होने की घोषणा करते हैं[१] तथा उन अंशों की सद्य: व्याख्या भी करते हैं–

तिन्हके गृह अवतरिहउं जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई।।

इस प्रकार राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न सभी चतुर्भाग हैं, जिनका संकेत ऊपर किया गया है।

इस तथ्य का स्पष्टीकरण हो जाने पर कि लक्ष्मण भी उसी ब्रह्म के अंश के अवतार हैं, जिसके राम; ऐसी स्थिति में अब लक्ष्मण के अवतार का स्वरूप और प्रयोजन दूसरी विचारणीय बात रह जाती है।

वाल्मीकि रामायण से लक्ष्मण के स्वरूप का कोई स्पष्टीकरण नहीं हो पाता; केवल विष्णु के चार रूपों में विभक्त होकर अवतरित होने का प्रसङ्ग मिलता है।

अध्यात्मरामायण के अनुसार लक्ष्मण शेष हैं[२३]। लक्ष्मण त्रिभुवन के आधार हैं[२३]। लक्ष्मण त्रैलोक्य के रक्षक हैं[२३]। लक्ष्मण लोकाधार हैं[२३]। वे संसाररूपी नाटक के सूत्रधार हैं[२३]। लक्ष्मण संसार में उत्पन्न समस्त शक्तियों के आधार तथा भगवान् विष्णु के आधारभूत शेष के अंशावतार हैं। लक्ष्मण सम्पूर्ण जगत् के सार, परमेश्वर, विराट् पुरुष तथा निखिल लोकाधार विष्णु हैं[२३]।

आनन्दरामायण के अनुसार राम विष्णु के, लक्ष्मण शेष के, भरत शङ्ख के तथा शत्रुघ्न चक्र के अवतार हैं[२६]।

नारदपाञ्चरात्र के अनुसार वैकुण्ठाधीश का भरत रूप में, क्षीरशायी श्रीमन्नारायण का लक्ष्मण रूप में तथा भूमा पुरुष का शत्रुघ्न रूप में श्रीराम की सेवार्थ अवतार हुआ–

वैकुण्ठेशस्तु भरत: क्षीराब्धीशस्तु लक्ष्मण:।
शत्रुघ्नश्च स्वयं भूमा रामसेवार्थमागता:।।

परन्तु तुलसीदास ने लक्ष्मण को शेष का अवतार स्वीकार किया है, इसलिये इन्होंने लक्ष्मण को "शेष सहस्रसीस जगकारन[१]" तथा "जगदाधार शेष किमि उठै चलै खिसिआइ"[१] कहा है। महर्षि वाल्मीकि ने राम–लक्ष्मण–जानकी की वन्दना करते समय लक्ष्मण को "अहीस" कहा है–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।

मानस और विनयपत्रिका में लक्ष्मण के लिये अनन्त, भगवन्त, भूधर, भुजगराज, भुवनेश, सकल जगदाधार, सचराचरधनी, त्रिभुवनधनी, जगत् के कारण–करण, विराट् आदि विशेषणों को देकर उनके स्वरूप को स्पष्ट कर दिया गया है कि वे शेष के अवतार हैं[१]। इस विशेषणों में से कुछ ऐसे भी विशेषण हैं जिनका प्रयोग अनिवार्य रूप से राम के लिये ही होता है।

राम के साथ लक्ष्मण के अवतार का क्या प्रयोजन है?–इस सम्बन्ध में देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मवाणी को ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है–

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउं दिनकर बंस उदारा।।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीनों ब्रह्म के अंश माने गये हैं–

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना।।

अतः ब्रह्म के साथ उनके ये अंश भी अवतरित हुए। सत्त्वगुणाधीश–पालक विष्णु के अंश भरत जी, रजोगुणाधीश्वर ब्रह्मा के अंश शत्रुघ्न जी तथा तमोगुणाधीश्वर शङ्कर के अंश लक्ष्मण जी हैं। गोस्वामी जी के शब्दों में–

बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।।
जाके सुमिरन तें रिपुनासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा।।
लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार।।

अवतार के प्रयोजन के लिये ब्रह्म ने स्वयं कहा कि सम्पूर्ण भूमि के भार का मैं हरण करूँगा। और ब्रह्म के इस कार्य में लक्ष्मण का बहुत बड़ा योगदान है, इसलिये उन्हें "भू भारहारी" और "भूमि भय टारन" कहकर, उनकी वन्दना की गयी। इससे स्पष्ट है कि लक्ष्मण का अवतार ब्रह्मसङ्कल्प की पुष्टि के लिये हुआ था। मनु और शतरूपा को मिले वरदान को सत्यापित करने के लिये भी लक्ष्मण का अवतार आवश्यक था। विश्वावसु भगवान् ने मनु और शतरूपा से कहा था–

अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउं चरित भगत सुखदाता।।

लक्ष्मण का चरित्र ऐसा है जो भक्तजन को सुख और शान्ति प्रदान करता है, इसलिये तुलसीदास ने "सीतल सुभग भगत सुखदाता" कह कर लक्ष्मण की वन्दना की। लक्ष्मण के चरित्र से विश्वामित्र, गौतम तथा जनक जैसे अनेक रामभक्तों को सुख मिला–

जयति गाधेय गौतम जनक सुख जनक, विस्व कंटक कुटिल कोटि हंता[१]।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राम की कीर्ति को फैलाने के लिये लक्ष्मणावतार अत्यन्त आवश्यक था, ऐसा इसलिये कि लक्ष्मण के द्वारा राम की पावन कीर्ति का विस्तार हुआ–

रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जांका[1]।

जन्म से लेकर प्रयाण तक लक्ष्मण ने राम का अनुगमन किया और अपने तेज और प्रताप के बल पर रामकीर्तिरूपी पताका को कहीं झुकने नहीं दिया। राम–कीर्ति के धूमिल होने की कल्पना से भी लक्ष्मण अपना सर्वस्व अर्पण के लिये तत्पर रहे। अतः लक्ष्मण का अवतार सप्रयोजन और विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु हुआ था। मूल रूप में कहा जा सकता है कि राम का अवतार भक्तों के हितार्थ हुआ था और लक्ष्मण का अवतार राम के हितार्थ। राम के लिये कहा गया है–

"राम भगत हित नरतनु धारी।"

– – – – – –

"सो केवल भगतन हित लागी।"

किन्तु लक्ष्मण का अवतार इससे भी बढ़कर एक विशेष उद्देश्य "राम–हित" के लिये हुआ था। विनयपत्रिका में तुलसीदास ने स्पष्ट कह दिया है–

जयति संग्राम–सागर–भयंकर–तरन, रामहित–करन बरबाहु सेतू[1]।

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि राम के हित के लिये लक्ष्मण का अवतार हुआ था।

दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में लक्ष्मण का स्वरूप

"दृश्" धातु का अर्थ है 'देखना'। स्थूल नेत्र से स्थूल तत्त्वों को देखना, सूक्ष्म नेत्र से सूक्ष्म तत्त्वों को देखना। (करण–व्युत्पत्ति से दर्शन का अर्थ है– जिसके द्वारा देखा जाय अर्थात् ज्ञान प्राप्त किया जाय। भाव–व्युत्पत्ति से इसका अर्थ है–ज्ञान (बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृष्ठ–३–४)। देखने के तीन रूप हो सकते हैं–ऐन्द्रिय प्रेक्षण, परिकल्पनात्मक ज्ञान अथवा सहजानुभव। इन्हें हम तथ्यों का निरीक्षण, तार्किक जिज्ञासा अथवा आत्मा की अन्तर्दृष्टि भी कह सकते हैं। साधारणतः दर्शन का व्यवहार आलोचनात्मक व्याख्यान, तार्किक पर्यवेक्षण अथवा वेदान्त आदि चिन्तन के लिये होता है। अपने पारिभाषिक अर्थ में दर्शन, तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान या परमात्मज्ञान का वाचक है। गीता (३/१२) बृहदारण्यकोपनिषद् (२/४/५), मुण्डकोपनिषद् (५/२/८), मनुस्मृति (६/७४), भागवतपुराण (१/६/३४) में भी ज्ञान या तत्त्वज्ञान इसी दर्शन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। दर्शन आध्यात्मिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रत्यक्ष है, अनुभव का प्रमाणपूर्वक उपस्थापन एवं उसकी तर्कसम्मत मीमांसा है–"दर्शनं तत्त्वज्ञानसाधनशास्त्रम्" *(सर्वतन्त्रसिद्धान्त–पदार्थलक्षणसंग्रह, पृ०९७)*। संसार के मर्म का, जीवन–मरण के रहस्य का, अपने स्वरूप का, पुरुष की प्रकृति का जिस ज्ञान से दर्शन हो जाय वह दर्शन हैं।............सब शास्त्रों के सार को, तत्त्व को पहचानने की शक्ति हो जाय, सबमें एक ही अर्थ, एक ही परमात्मा की विचित्र–विचित्र अनन्त कला दीख पड़ने लगे, समदर्शिता हो जाय, सब असङ्ख्य धर्मों, रूचियों का विरोधपरिहार और सच्चा समन्वय हो जाय, सब बातों के भीतर एक ही बात दीख पड़े, वह सच्चा दर्शन है *(डॉ० भगवानदास, दर्शन का प्रयोजन, पृ०–२०)*। तुलसीदास ने दर्शन के लिये ब्रह्म–विचार, तत्त्व–विचार[१] आदि और दार्शनिक के लिये ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मवादी, परमार्थवादी, परमार्थचिन्तक, तत्त्वदर्शी, अद्वैतदर्शी"[१] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार उनके अनुसार परमार्थरूप ब्रह्म राम, उनके अंशभूत जीव तथा जगत्, उनकी भक्ति और भक्तिसाधनों का सम्यग्ज्ञान दर्शन है। इसी दृष्टि से उन्होंने अपने साहित्य में इन विषयो का निरूपण किया है।

यही कारण है कि रामचरितमानस के प्रत्येक पात्रों में दार्शनिक दृष्टि से कुछ निजी विशेषताएँ हैं। तुलसीदास की दृष्टि में दर्शन का बना हुआ रूप पात्रों के माध्यम से प्रस्फुटित हुआ है। लक्ष्मण का चरित्र हमारा प्रतिपाद्य है, अतः दार्शनिक दृष्टिकोण से लक्ष्मण की विवेचना अपेक्षित है।

वेद–तत्त्व और लक्ष्मण–वेद का प्राण है प्रणव, और प्रणव एकाक्षर ब्रह्म है। "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म[२]" कहकर गीता में भी इसकी पुष्टि की गयी है। कालिदास की उपमा में यह दर्शनीय है–

आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव। (रघु०, १/११)।

स्वयं तुलसीदास ने "प्रणव" को वेद का प्राण माना है[१]। यह वेद–प्राण "ओम्" है जिसमें चार मात्राएँ हैं–अ, उ, म्, और अर्धमात्रा। ये चार मात्राएँ ब्रह्म की चार अवस्थाएँ हैं–जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। इन चारों अवस्थाओं के चार विभु होते हैं–विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और साक्षात् ब्रह्म।

रामोत्तरतापनीयोपनिषत् के अनुसार प्रणव के अ, उ, म् और अर्ध मात्रा के अनुसार ही गुरु वशिष्ठ ने चारों भाइयों का नामकरण किया था–

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः।
उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः।।
प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस दृष्टि से विचार करने पर लक्ष्मण वेदतत्त्व के प्रथम अ से साक्षात् सम्भूत वेद–प्राण हैं। मानस में इस तथ्य को जानने वाले सर्वज्ञ वशिष्ठ ने नामकरण के पश्चात् राजा दशरथ से स्पष्ट कर दिया था कि हे नृप! तुम्हारे पुत्र वेद के तत्त्व हैं–

धरे नाम गुर हृदय बिचारी। वेदतत्व नृप तव सुत चारी।।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि चार अवस्था–जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय के क्रमशः चार विभु–विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और साक्षात् ब्रह्म हैं। इस प्रकार लक्ष्मण का स्वरूप विराट् है, जिसका स्पष्टीकरण तुलसीदास ने कर दिया है–

सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित बिराजहीं।।[1]

यहाँ जाग्रत् अवस्था उर्मिला है जिसके विभु विराट् लक्ष्मण हैं। जाग्रत् अवस्था से तुरीय (समाधि) की अवस्था प्राप्त होती है, स्वप्न या सुषुप्ति से नहीं। समाधि की अवस्था त्यागने पर साधक को जाग्रत् अवस्था प्राप्त होती है। इसी कारण मानस में लक्ष्मण और राम का अभिन्न प्रेम मानस में प्रदर्शित है। जाग्रत् व्यक्तावस्था है, जिसका प्रतीक रूप लक्ष्मण का रङ्ग गौर है। तुरीय अव्यक्तावस्था है, जिसके प्रतीक रूप राम का रङ्ग श्याम है।

विराट् ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही विराट् है। अतएव लक्ष्मण और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं माना जाता। इस तरह से लक्ष्मण और राम एक ही तत्त्व हैं। अध्यात्मरामायण में लक्ष्मण के इसी स्वरूप को दृष्टि में रखकर उन्हें परमेश्वर, विराट्, अखिलभुवनेश विष्णु कहा गया है। मानस में 'वेदतत्त्व' कह कर लक्ष्मण को भी ब्रह्मस्वरूप माना गया है। माण्डूक्योपनिषद् के अन्तर्गत ब्रह्म के चतुष्पाद रूप में वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ और कल्याण रूप आते हैं[1]। ओङ्कारमय अविनाशी ब्रह्म है, उसकी महिमा को प्रत्यक्ष लक्षित कराने वाला यह सम्पूर्ण विश्व है। यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म ही है, यह आत्मा भी ब्रह्म है और यह आत्मा चार चरणों वाला है, जिसके द्वारा प्रकट ज्ञान इस बाह्य संसार में प्रसारित है, जो इस स्थूल विश्व का भोगने वाला है; वह वैश्वानर उस ब्रह्म का प्रथम चरण है। जो सूक्ष्म विश्व का भोक्ता और ज्योतिर्मय है, वह उस ब्रह्म का द्वितीय चरण है। सोता हुआ भोग–कामनाओं

---

1 क–जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्रा। *(माण्डू०, श्लो०९)*
ख–स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रा। *(वही, श्लो० १०)*
ग–सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीयां मात्रा। *(वही, श्लो० ११)*
घ–अमात्रश्चतुर्थो व्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवाद्वैत एवायमोंकारः। *(वही, श्लो०१२)*

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से रहित, स्वप्नों से रहित, सुषुप्तावस्था ब्रह्म का तृतीय पाद है। प्रपञ्चरहित कल्याणकारी अद्वैत सर्वथा शान्त ब्रह्म का चतुर्थ चरण है। इस क्रम से लक्ष्मण ब्रह्म के प्रथम पाद हैं; क्योंकि जाग्रत् अवस्था के विभु विराट् या वैश्वानर लक्ष्मण ही है। वैश्वानर ब्रह्म के स्वरूप का ही विराट् तत्त्व है, इसलिये लक्ष्मण साक्षात् ब्रह्म, जगदाधार, जगत्कारण हैं।

पुरुषार्थचतुष्टय और लक्ष्मण

भारतीय दर्शन में अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष–इन्हीं चारों को पुरुषार्थ–चतुष्टय कहा गया है। पुरुषार्थ उस सार्थक जीवन शक्ति का द्योतक है जो व्यक्ति को सांसारिक सुख–भोग के बीच अपने धर्म–पालन के माध्यम से ईश्वर मार्ग–प्राप्ति या मोक्ष का रूप दिखलाता है। पुरुषार्थ इहलोक को परलोक से मिलाता है, सीमित मानव जीवन को असीम तथा पूर्ण परमात्मा से परिचित करवाता है और मनुष्य की भौतिक, बौद्धिक शारीरिक तथा नैतिक उन्नति का पथ प्रशस्त करता है। इस अर्थ में पुरुषार्थ उन मानवीय गुणों का समन्वय है जो भौतिक सुख और आध्यात्मिक उन्नति के बीच एक सन्तुलन की सृष्टि करता है। पुरुषार्थ–सर्जनशीलता का वह मूल आधार है जिसकी सहायता से व्यक्ति भौतिक पदार्थों को ही नहीं, सन्तानों व सद्गुणों को भी जन्म देता है और अन्त में संसार की सङ्कीर्ण परिधि से बाहर निकलकर अनन्त शक्ति में अपने महामिलन के लिये उद्योगी होता है। अतः स्पष्ट है कि पुरुषार्थ के चार आधार हैं जो मानव जीवन के चार प्रमुख उद्देश्यों को भी व्यक्त करते हैं। वे हैं–अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। मोक्ष मानव–जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। पर इस लक्ष्य की प्राप्ति तब तक सम्भव नहीं है जब तक व्यक्ति का मन सांसारिक सुखभोग से पूर्णतः तृप्त न हो जाय। चरम तृप्ति के बाद ही विरक्ति (वैराग्य या उदासीनता) का जन्म हो सकता है। इस तृप्ति को प्राप्त करने के लिये ही अर्थ तथा काम की आवश्यकता भी जीवन के लिये कम नहीं है; परन्तु मनुष्य अर्थ और काम में कहीं पूर्णतया निमग्न न हो जाय, इस कारण, उसके पथप्रदर्शन के लिये धर्म की आवश्यकता होती है। धर्म वह नैतिक नियम व आदर्श है जो व्यक्ति को भौतिक सुख तथा सांसारिक भोग–विलास के बीच भी जीवन के उच्चतर लक्ष्यों के प्रति जागरूक एवं सचेत रखता है और उसके व्यवहारों को नियन्त्रित व निर्देशित करता रहता है। अतएव धर्म मानव जीवन का आधार तथा मार्गदर्शक है, अर्थ तथा काम सांसारिक कर्मों तथा इच्छाओं की तृप्ति के साधन हैं, तथा मोक्ष जीवन का चरम एवं परम लक्ष्य है। जिस मानव जीवन में इन चारों का सन्तुलित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समन्वय है, वही पुरुषार्थ का प्रतीक है। गोस्वामी तुलसीदास हिन्दू–जीवन–दर्शन तथा सामाजिक व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे और उन्होंने भी पुरुषार्थचतुष्टय को मान्यता प्रदान की है।

१. अर्थ— अर्थ का साधारण भाव धन, धाम और ऐश्वर्य से लिया जाता है, किन्तु पुरुषार्थ के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग अधिक व्यापक अर्थ में किया गया है। 'अर्थ' शब्द धन, सम्पत्ति या मुद्रा का पर्यायवाची ही नहीं, अपितु वह भौतिक सुखों की सभी आवश्यकताओं और साधनों का भी द्योतक है। अर्थ मनुष्य की शक्ति एवं ऐश्वर्य प्राप्त करने की इच्छा के लिये भी प्रयुक्त हुआ करता है। तुलसी ने "अर्थ" को इन्हीं अर्थों में प्रस्तुत किया है। उन्होंने अर्थप्राप्ति के इन साधनों का रामचरितमानस में यथास्थान वर्णन किया है–

"अब सुख सोवति सोच नहिं, भीख मांगि भव खाहिं[१]।
वहुत काल मैं कीन्हिं मजूरी। आजु दीन्हिं विधि बनि भलि भूरी"॥
"कृषी निरावहिं चतुर किसाना[१]।"
"विद्या निधि कहँ विद्या दीन्ही[१]।"
"दिन चलि गये व्याज बहु बाढ़ा[१]।"
"फिरहु बनिक जिमि मूरि गवाईं[१]।"

२. धर्म— हिन्दू–जीवन–दर्शन तथा सामाजिक व्यवस्था में धर्म अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं अतिप्रभावशाली अवधारणा है। पुरुषार्थ के एक पक्ष के रूप में धर्म का जिस रूप में प्रयोग होता है उस रूप में इसका क्षेत्र वास्तव में विस्तृत है और मानव के सम्पूर्ण नैतिक जीवन को यह बद्ध करता है। "धर्म" कोई ईश्वरीय मत या विश्वास नहीं है और न ही किसी अलौकिक, असामाजिक शक्ति से सम्बद्ध है। यह तो केवल मनुष्य के नैतिक कर्तव्यों की ओर संकेत करता है। साधारणतया धर्म के अर्थ कर्तव्य, सत्कार्य एवं गुण होते हैं। धर्मशास्त्रानुसार—

"धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः"

अर्थात् धारण करने वाले को धर्म कहते हैं, धर्म प्रजा को धारण करता है। वैशेषिक दर्शन में कहा गया है कि "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"। अर्थात् जिससे इस लोक में अभ्युदय (लौकिक उन्नति) और परलोक में परम कल्याण (पारलौकिक कल्याण) की प्राप्ति हो, वह धर्म है।

तुलसीदास ने धर्मसम्बन्धी अपनी तीन मान्यताएं दी हैं। वह कर्म जिसका करना किसी सम्बन्ध अथवा गुण के विचार से उचित और आवश्यक हो उसे सामान्य धर्म की संज्ञा दी है। इसके अन्तर्गत वेदविहित यज्ञादिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर्म, वर्णाश्रमधर्म, माता–पिता–पुत्रादि सभी के धर्म आते हैं। विशेष धर्म के लिये तुलसीदास ने कहा है कि जिसके पालन न करने से मनुष्य स्वयं ही शोचनीय हो जाता है। इसके अतिरिक्त तुलसीदास ने कहा है कि जिस प्रकार विहित का अनुष्ठान धर्म है उसी प्रकार निषेध का वर्जन भी धर्म है।

मानस में तीनों प्रकार के धर्मों का यथावत् चित्रण हुआ है; जैसे–

सामान्य धर्म :

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
परम धरम श्रुति विदित अहिंसा।

विशेष धर्म :

सोचिअ बिप्र जो वेद बिहीना।

निषेध का वर्जन :

जे अघ मातु पिता सुत मारे।
तिन्ह कर गति मोहि संकर देऊ।

३. काम–पुरुषार्थ के अन्तर्गत "काम" मानव जीवन का तृतीय प्रमुख उद्देश्य है। 'काम' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हो सकता है–एक तो सङ्कुचित अर्थ में, जिसके अनुसार "काम" इन्द्रिय–सुख या यौन प्रवृत्तियों की सन्तुष्टिमात्र है। दूसरा अर्थ विस्तृत है, जिसके अनुसार काम के अन्तर्गत मनुष्य की समस्त प्रवृत्तियों, इच्छाओं तथा कामनाओं का समावेश है। इससे स्पष्ट हो गया कि मानव के मूल–प्रवृत्त्यात्मक या यौनसम्बन्धी जीवन को व्यक्त करना काम का सङ्कुचित अर्थ है और भावुक एवं सौन्दर्यात्मक जीवन को व्यक्त करना काम का बृहद् अर्थ है। मानस में 'काम' का अर्थ 'कामना' लिया गया है जो विशाल अर्थ का स्वयं द्योतक है। मानस में दशरथ, सती, पार्वती, विश्वामित्र, जनकपुरवासी, शबरी, सुग्रीव, दण्डकारण्य के ऋषिगण, विभीषणादि की कामना को भी 'काम' के अन्तर्गत ग्रहण किया गया है।

दशरथ की कामना :

सृंगी रिषिहिं बसिष्ठ बोलावा। पुत्र काम सुभ जग्य करावा॥

सती की कामना :

तौं मैं बिनय करहु कर जोरी। छूटहु बेगि देह यह मोरी।

– – – –   – – – –   – – – –

तो सबदरसी सुनिय प्रभु, करो सो बेगि उपाइ।
होइ मरनु जेहिं बिनहि श्रम, दुसह बिपत्ति बिहाइ॥

विश्वामित्र की कामना :

गाधितनय मन चिन्ता ब्यापी। हरि बिनु मरहि न निसिचर पापी॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा।।
— — — — — — — — — — — —
बहु बिधि करत मनोरथ, जात लागि नहिं बार।।

जनकपुरवासियों की कामना :

एहिं लालसाँ मगन सब लोगू। बरु साँवरो जानकी जोगू।।

विभीषण की कामना :

देखिहऊँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुख दाता।।

४. मोक्ष—जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है। भारतीय शास्त्रकारों ने मोक्ष का पृथक्–पृथक् विश्लेषण किया है। भारतीय षड्दर्शन—न्यायवैशैषिक, साङ्ख्ययोग, मीमांसा और वेदान्त, सभी ने अपने–अपने ढंग से मोक्ष की व्याख्या की है। इसके अतिरिक्त जैन और बौद्ध के तत्सम्बन्धी अपने पृथक्–पृथक् विचार हैं। वेदों और उपनिषदों में तथा गीता में भिन्न–भिन्न रूप से मोक्ष पर अवधारणाएँ हैं। इन सब मतान्तरों के होते हुए यद्यपि बाह्य दृष्टिकोण से मोक्षसम्बन्धी अवधारणाओं में अन्तर है, किन्तु आन्तरिक रूप में उनमें कोई स्पष्ट विरोध देखने को नहीं मिलता; क्योंकि मोक्ष का अर्थ है जन्म–मरण से मुक्त हो जाना।

रामचरितमानस में जन्म–मरण की मुक्ति को ही मोक्ष की मान्यता दी गयी है। इसके अनुसार धर्म मोक्ष का साधन माना गया है। गृध्रराज जटायु, खरदूषणादि, विराध, शरभङ्ग, शबरी तथा निशाचरों को मोक्ष की प्राप्ति हुई; क्योंकि राम ने विशेष कृपा करके इन लोगों को अपने धाम (वैकुण्ठ) भेज दिया—

जटायु— तनु तजि तात जाहु मम धामा।
खरदूषण— राम राम कहि तनु तजहि, पावहिं पद निर्वान।
विराध— मिला असुर विराध मग जाता।
आवत ही रघुबीर निपाता।।
तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा।
देखि दुखी निज धाम पठावा।।
शबरी— जातिहीन अध जन्म महि, मुक्त कीन्हि अस नारि।

अर्थ और काम दोनों को धर्म नियन्त्रित करता है, इसीलिये धर्म को अर्थ और काम के मध्य रखा गया है। मानस में राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों भाइयों को प्रतीक रूप में ग्रहण किया गया है। इसी कारण विवाह के बाद चारों भाइयों को चार फल तथा बहुओं को चार क्रिया (कर्म) कहा गया है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुदित अवधपति सकल सुत, वधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाये महिपाल मनि, क्रियन्ह सहित फल चारि।।

चारों भाई अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के रूप में चारों क्रियाओं– व्यावृत्ति, सुकृति, रति और भक्ति के साथ सुशोभित हैं। रामचरितमानस के टीकाकार श्री विजयानन्द त्रिपाठी के अनुसार "धर्म की क्रिया सुकृति है, अर्थ की क्रिया व्यावृत्ति है, काम की क्रिया रति और मोक्ष की क्रिया भक्ति है। फलरूप होने से मोक्ष और काम क्रमशः राम और भरत हैं, और साधनरूप होने से धर्म और अर्थ लक्ष्मण और शत्रुघ्न हैं" (विजया टीका, भाग–१, पृ०–५४२)। तुलसीदास ने राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को मोक्ष, धर्म, काम और अर्थ रूप में ग्रहण किया है। इसीलिये बार–बार इस उपमा को प्रयोग में लाते हैं–

नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धर्मादिक तनुधारी।।

तुलसीदास ने लक्ष्मण को धर्म के रूप में प्रतिष्ठापित किया है।

उनका यह विचार विनयपत्रिका में खुल कर अधिक स्पष्ट हो गया है। वहाँ उन्होंने लक्ष्मण को निरुपाधि धर्म की धुरी को धारण करने वाला कहा है[१]। लक्ष्मण पूर्णरूप से धार्मिक आचरण करने वाले हैं, किन्तु उनका सम्पूर्ण धर्माचरण रामहित के लिये होता है। धर्म का प्रयत्न ही सदा मोक्ष की ओर प्रवृत्त करना होता है। "धरम धुर धीर" कह कर लक्ष्मण को धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करना तुलसीदास का परम लक्ष्य रहा है।

ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के स्वरूप और लक्षण

१. ज्ञान–"ज्ञान" का शाब्दिक अर्थ है–प्रकाश, मान, अवगम आदि। पारिभाषिक दृष्टि से उसके दो अर्थ हैं। करण व्युत्पत्ति से उसका अर्थ है–वह साधन जिसके द्वारा विषय की प्रतीति हो[२]। यह ज्ञानवृत्ति (वृत्तिरूप ज्ञान) है। भाव–व्युत्पत्ति से ज्ञान का अर्थ है–आत्मा आदि तत्त्वों का अवबोध[३]। यह ज्ञानस्वरूप हैं। ब्रह्म को इसी अर्थ में ज्ञानस्वरूप कहा गया है। इस प्रकार "ज्ञान" शब्द भाववृत्ति से तत्त्वज्ञान का भी व्यञ्जक है करणवृत्ति से उसके साधन का भी–

ज्ञायतेऽनेनेति करणव्युत्पत्त्या वृत्तिज्ञानम्।
ज्ञप्तिर्ज्ञानमिति भावव्युत्पत्त्या संविज्ज्ञानम्।।
(सर्वतन्त्रसिद्धान्तपदार्थलक्षणसंग्रह, पृ० ८९)

ज्ञान के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिये कि ईश्वरवादियों के मतानुसार ज्ञानस्वरूप की प्राप्ति भगवान् की कृपासे किसी विरले को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही होती है, सभी को स्वाभाविक रूप से नहीं (ब्रह्मसूत्र, ३/२/५ शाङ्करभाष्य)।

तुलसीदास के मतानुसार ईश्वर, माया और जीव इन तीन तत्त्वों के स्वरूप का अवबोध "ज्ञान" है। राम ब्रह्म हैं, परमतत्त्व या परमार्थ हैं, वेदान्तवेद्य हैं[१]। अतः उनका ज्ञान ही जिज्ञासु का चरम लक्ष्य है। अज्ञान को जाने विना ज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती–

"ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास"

(दोहावली, दो० २४१)।

अतएव अज्ञान (अविद्यारूप माया) का ज्ञान होना भी आवश्यक है। आत्मस्वरूप को भूल जाने का कारण ही जीव जड़वत् होकर क्लेशग्रस्त है, अतः स्वरूपज्ञान भी अपेक्षित है। तुलसी की दृष्टि में उक्त तीनों अन्योन्याश्रित हैं। उनमें से किसी एक या दो का ज्ञान हो जाय और शेष एक या दो का ज्ञान न हो–ऐसा नहीं हो सकता[३१]। राम का ज्ञान होने के साथ ही आत्मस्वरूप और संसार की मायिकता का, आत्मज्ञान के साथ ही संसार की व्यावहारिकता और राम की परमार्थता का, तथा संसार के मिथ्यात्व के साथ ही अपने दासत्व और राम के स्वामित्व का ज्ञान हो ही जाता है[१]।

गीता में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को "ज्ञान" कहा गया है[२]। क्षेत्र का अर्थ है शरीर और क्षेत्रज्ञ का अर्थ है आत्मा (जीवात्मा तथा परमात्मा)[२]। बालि की मृत्यु पर तुलसी के राम ने तारा को इसी ज्ञान का उपदेश कराया था[१]। सापेक्ष दृष्टि से उक्त दोनों तत्त्वों की तुलना में परमात्मा ही मुख्य रूप से ज्ञेय हैं[२]। तुलसी की मान्यता है कि जिसको राम का ज्ञान नहीं हुआ, उसका समस्त ज्ञान व्यर्थ है (कविता०, ७/३९)। तत्त्वतः परमात्मा ज्ञाता और ज्ञानस्वरूप हैं। व्यावहारिक दृष्टि से ही उसे 'ज्ञेय' कहा जाता है।

स्वरूप की दृष्टि से ज्ञान दो प्रकार का होता है–वाक्य–ज्ञान और अनुभवरूप ज्ञान[१]। शास्त्रों के अध्ययन की साधना से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे 'वाक्यज्ञान' कहते हैं और योगसाधना से उत्पन्न ज्ञान को 'अनुभवरूप ज्ञान' कहते हैं। पुराण आदि के श्रवण से लब्ध बोध केवल तोता–रटन्त ज्ञान है[१]। जिस प्रकार दीपमात्र की चर्चा से अन्धेरे घर का अन्धकार दूर नहीं हो सकता, चित्रगत कल्पवृक्ष या कामधेनु से विपत्ति का नाश सम्भव नहीं है, षड्रस व्यञ्जन के कथन मात्र से क्षुधा–निवृत्ति नहीं हो सकती, उसी प्रकार अनुभव के विना वाक्यज्ञान मात्र से अज्ञान नहीं मिट सकता[१]।

व्यावहारिक एवं पारमार्थिक ज्ञान को जिसे तुलसीदास ने स्वार्थ–ज्ञान और परार्थ–ज्ञान कहा है[१], ज्ञेय पदार्थ की दृष्टि से ज्ञान के दो भेद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं[१+१]। देशकाल का विचार तथा लोकव्यवहार का बोध व्यावहारिक ज्ञान है[१]। इसके ज्ञान से केवल लौकिक सिद्धि मिलती है। अनुभवरूप ज्ञान ही आभ्यन्तर ज्ञान है, जिसके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। आभ्यन्तर ज्ञान के दो सोपान हैं—ज्ञान और विज्ञान। मोक्षसाधकों तथा भगवान् के प्रेमपात्रों के तारतम्य-निरूपण[१] तथा रामचरितमानस के पञ्चम तथा षष्ठ सोपान की पुष्पिकाओं से यह सिद्ध है कि ज्ञान की उच्चतर अवस्था का नाम विज्ञान है। अध्यात्मरामायण और शङ्कराचार्य ने दोनों का भेद-निरूपण करते हुए बतलाया है कि ज्ञान के साक्षात् अनुभव को 'विज्ञान' कहते हैं[I]।

ज्ञान चित्त की दीप्ति है। वह प्रकाशस्वरूप है, उसके प्रभाव से मोहान्धकार मिट जाता है[१]। उसके इस स्वरूप और कार्य के आधार पर ही उसे दीपक का उपमेय कहा गया है[१+१]। स्वप्नकारिणी मोहनिशा का नाशक होने के कारण वह सूर्य है[१]। ज्ञान, चेतन जीव का स्वाभाविक धर्म है, किन्तु साथ ही साथ अज्ञान भी उसका धर्म है; क्योंकि माया के कारण उसका स्वरूपज्ञान विस्मृत हो जाता है। यही ज्ञान का नाश है। माया का आवरण हट जाने पर वह अपने स्वरूप को पहचान लेता है[१+१]। यही ज्ञान की उत्पत्ति है। तुलसीदास के "बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि"[१] का यही तात्पर्य है। यह ज्ञान के सङ्कोच-विकास की अवस्था है—"ज्ञानस्य नित्यत्वे 'ज्ञानमुत्पन्नं ज्ञानं नष्टम्' इति व्यवहारः कथम् इति चेत्, न; ज्ञानस्य सङ्कोचविकासावस्थामादाय तत्सम्भवात्"।। (यतीन्द्र, पृ०-८७) वस्तुतः ज्ञान के नाश और उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता।

ज्ञान मोक्षप्रद है[५], भवसम्भव खेद को दूर करने वाला है[१], परमपद कैवल्य का साधक है[१]। पाप, कर्म एवं पुनर्जन्म के आत्यन्तिक नाश, भवबन्धन से मुक्ति, तथा अमरत्व, ईश्वरत्व और ब्रह्मत्व की प्राप्ति के लिये ज्ञान की साधनता असन्दिग्ध है। विभिन्न उपनिषदों एवं पुराणों में ज्ञान के स्वरूप को उद्घाटित करने वाले इन सारभूत तत्त्वों का सम्यक् विवेचन मिलता है।

२. वैराग्य—"अखिल विश्व में जड़-चेतन-स्वरूप जो ब्रह्म है, वह

I. बुद्धिप्राणमनोदेहाहंकृतिभ्यो विलक्षणः।
चिदात्माहं नित्यशुद्धो बुद्ध एवेति निश्चयम्।।
येन ज्ञानेन संवित्तिस्तज्ज्ञानं निश्चितं च मे।
विज्ञानं च तदैवैतत्साक्षादनुभवेद्यदा।।(अ०रा०, ३/४/३८-३९)
ज्ञानं शास्त्रत आचार्यतश्च, आत्मादीनामवबोधो विज्ञानम्। (गीता०, ३/४१ पर शां०भा०)
ज्ञानं शास्त्रोक्तपदार्थानां परिज्ञानम्, विज्ञानं तु शास्त्रतो ज्ञातानां तथैव स्वानुभवकरणम्
(गीता०, ६/८ पर शां० भा०)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वव्याप्त ईश्वर से परिपूर्ण है। उसे साथ रखते हुए इस विश्व को त्यागपूर्वक भोगते रहो, लालच न करो''—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जंगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥ (ई० उ०१)

उपनिषद् के मतानुसार वैराग्य ज्ञानपूर्वक निर्लिप्त भाव से ईश्वर की ऐसी साधना है जिसके अन्तर्गत जीव संसार के किसी प्रकार के प्रलोभन से मुक्त होकर ईश्वररत रहता है। वैराग्य का शाब्दिक अर्थ है—विरागस्य भावः। अर्थात् सांसारिक वासनाओं या इच्छाओं का अभाव, सांसारिक बन्धनों से उदासीनता या विरक्ति। वैराग्य अभय है जो काम, क्रोध, मद, मोहादि शत्रुओं का विनाश कर देता है; क्योंकि जीव को बन्धन में जकड़ने के लिये ये सहायक होते हैं, जिनके कारण जीव मोहरूपी और अज्ञानान्धकार में डूब जाता है। वैराग्य पर इनका वश नही चलता और वैराग्य के द्वारा जीव को ईश्वर (ब्रह्म) ज्ञान का प्रकाश मिलता है, इसीलिये ''वैराग्यमेवाभयम्'' कहा गया है। सांसारिक वासनाओं का त्याग ही वैराग्य है। विषय दो प्रकार का होता है—एक दृष्ट और दूसरा आनुश्राविक। जो इस लोक में सुना जाता है वह 'दृष्ट' कहलाता है, जैसे—शब्द, रूपादि। 'अनुश्रव' वेद को कहते हैं, अतः जिसका ज्ञान वेद से होता है, उसे 'आनुश्राविक' कहते हैं, जैसे स्वर्गादि। दोनों के परिणाम विरसत्व को देखने से जिनको इनका लोभ नहीं रह गया, वे इन विषयों के वश्य नहीं होते, विषय ही उनके वश में रहते हैं। ऐसे जीव को विरागी कहते हैं। यथा—

एहि तन कर फल बिषय न भाई। सरगहु स्वल्प अंत दुखदाई॥

इस विषय—विषयक वैराग्य वालों को परम विरागी नहीं कहते, किन्तु जो अणिमादिक अष्ट—सिद्धि तथा सत्त्व, रज और तम का त्याग चुका हो, वह परम विरागी है[1]। गुणविषयक वैराग्य ही सच्चा वैराग्य है; क्योंकि देहधारी निराहारी रहता है। तब उसके विषय मन्द पड़ जाते हैं, परन्तु विषयरस समूल नष्ट नहीं होता, वह रस तो ईश्वर के साक्षात्कार से ही समूल नष्ट होता है[2]। तब उसे स्वर्गादिक सुखों और सिद्धियों की चाह नहीं रह जाती। यही कारण है कि परम वैराग्यवान् स्वायम्भुव मनु ने ईश्वर का दर्शन करके सत्त्व, रज एवं तमोगुण सम्बन्धी सुख तथा सिद्धियों का त्याग कर दिया——

बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आएं बहु बारा॥
माँगहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥

विषयोपभोग से विषय की तृप्ति नहीं होती। मनु ने स्वयं कहा है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूयः एवाभिवर्धते।।

हवि पाकर अग्नि की भाँति वह अधिक बढ़ता है। विषय का विराग, विषय की विरसता का ज्ञान होने से भी पूर्णरूपेण नहीं होता। जब मन हरिचरणों की ओर प्रवृत्त होता है तब विषय से विरक्ति होती है और जीव सम्पूर्ण जगत् को मृगतृष्णा समझने लगता है (वै० सं०–छं०–१४), कञ्चन–कामिनी के मोह से वह मुक्त हो जाता है अर्थात् कञ्चन को वह तृणवत् और कामिनी को पाषाणवत् या काष्ठवत् समझने लगता है (वै० सं०–दो०–२७)। परम शान्ति के लिये वैराग्य नितान्त आवश्यक है, क्योंकि वैराग्य शान्ति का भूषण है–

रैनि को भूषन इन्दु है, दिवस को भूषन भानु।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञानु।।
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन सांतिपद, तुलसी अमल अदाग।।
(वै०सं०–दो०४३,४४)

जीव के देहरूपी राज्य में 'मोह' और 'विवेक' नामक दो राजा रहते हैं। मोह के सहायक कामादि तथा विवेक के सहायक वैराग्य एवं ज्ञान हैं। दोनों में सदा सङ्घर्ष होता रहता है। इसलिये जब विवेक वैराग्य और ज्ञान को पाकर शक्तिशाली होता है तब वह मोह के सहायक मद, लोभ, क्रोध, कामादिकों का विनाश कर पाता है; जिसके परिणामस्वरूप जीव में विराग उत्पन्न होता है और हरिचरणों में भक्ति उत्पन्न होती है–

विरति चर्म असि ग्यान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति, देखु खगेस विचारि।।

जहाँ विवेक राजा और वैराग्य मन्त्री होता है, वहाँ मोह का साम्राज्य स्वयमेव नष्ट हो जाता है और राज्य में सर्वत्र सुख और शान्ति छा जाती है, यथा–

सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू।।

सन्त या संन्यासी के लिये दोनों प्रकार की विषय–वासना का त्याग परम आवश्यक है, अन्यथा वह उपहास का पात्र बनकर रह जाता है[1]। जो संन्यासी प्रपञ्च में पड़ा रहता है, विवेक और वैराग्य का आश्रय छोड़कर संसार में लिप्त रहता है, जो संसार को ब्रह्ममय नहीं समझता, त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत नहीं करता, यति होने पर भी प्रपञ्च में पड़कर ज्ञान और वैराग्य को खो देता है वह 'वान्ताशी' है; क्योंकि उसने जिस वस्तु का त्याग किया था, उसे ग्रहण कर लिया। यथा–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोचिअ जती प्रपञ्च रत बिगत बिबेक बिराग।।

३. भक्ति–भक्ति का अर्थ है–सेवा, आराधना, श्रद्धा, अनुरागविशेष, विभागादि। भक्ति का व्युत्पत्त्यर्थ आगे चलकर "प्रेमपूर्वक देवसेवा" में सङ्कुचित हो गया और उपासना का व्युत्पत्त्यर्थ देवता के समीप बैठने अर्थात् भजन करने में सङ्कुचित हो गया। संहितायुग में ही "भज्" और "उप + आस्" पूजन करने के अर्थ में पर्याय हो चले थे। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद में "महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे" (१/१५६/३) एवं यजुर्वेद में "यस्य विश्वं उपासते" (२५/१३) का उल्लेख किया जा सकता है। आधुनिक युग में भी ये दोनों समशील माने जाते हैं। विष्णुपुराण, पत्रगीता, भागवतपुराण और मुक्ताफल आदि ग्रन्थों में प्रायः जो भक्ति की परिभाषा दी गयी है उसका सारांश यही है कि किसी भी उपाय से भगवान् में मन का स्थिरीकरण "भक्ति" है। शाण्डिल्य ने भक्तिसूत्र में ईश्वरविषयक परानुरक्ति को भक्ति कहा है–"सा पराऽनुरक्तिरीश्वरे" (१/१/२)। नारद के अनुसार भी ईश्वर के प्रति परमप्रेम "भक्ति" है–"सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा" (भक्तिसूत्र, २)। नारदपाञ्चरात्र के अनुसार तत्परता के साथ हृषीक (इन्द्रियों) के द्वारा हृषीकेश की निर्मल एवं सभी उपाधियों से विनिर्मुक्त सेवा "भक्ति" है–

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।।

रामानुज ने उपनिषदों और महाभारत का प्रमाण प्रस्तुत करके भक्ति की दार्शनिक व्याख्या की है। उनके अनुसार "उपासना" वह प्रवाह है जिसके कारण आत्मा परमात्मा के द्वारा वरणीय हो जाता है। स्मर्यमाण विषय की अत्यन्त प्रियता के कारण यह स्मृति–प्रवाह भी अत्यन्त प्रिय रूप है। स्नेहपूर्वक किये गये अनवरत ध्यान को "भक्ति" कहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता पर रामानुज भाष्य के अध्याय सात की अवतरणिका के अनुसार–

स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः।

ईसा की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में भक्ति की धारा इतनी शक्तिशाली और व्यापक हो गयी कि अद्वैतवादी वेदान्त भी उससे परिप्लावित हो गया। तुलसीदास के समकालीन काशीनिवासी मधुसूदन सरस्वती ने "भक्ति रसायन" नामक भक्तिशास्त्रीय ग्रन्थ लिखा। साम्प्रदायिक आग्रह से रहित इस अद्वैतपरक ग्रन्थ में भक्ति की शास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक एवं तर्कयुक्त मीमांसा प्रस्तुत की गयी[३१]। उनका भक्तिविवेचन, भक्तिसिद्धान्त तक पहुँचने के लिये एक निश्चित सोपान है। उन्होंने "भक्ति" की परिभाषा की है कि भगवद्धर्म के कारण द्रुत चित्त की सर्वेश के प्रति धारावाहिक वृत्ति को 'भक्ति' कहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकताङ्गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते।। (१/३)

रामचरितमानस में भक्ति का विविध प्रकार से निरूपण किया गया है। स्वयं तुलसीदास ने "भगति निरूपन बिबिध बिधाना[१]" कह कर इस तथ्य का समर्थन किया है। प्रयोजन तथा अधिकारिभेद से अनेक विधान हैं। जैसे विषाद–नाश के लिये भक्ति–विधान[१], भगवत्कृपा–सम्पादन के लिये भक्तियोग[१], जन्म–फलप्राप्ति के लिये भक्तिमार्ग[१], सर्वसाधारण के लिये नवधाभक्ति[१], ज्ञानी जिज्ञासु, अर्थार्थी और आर्त के लिये गौणी भक्ति[१]।

'भक्ति' एक मानसिक स्थिति है। फिर भी 'भक्ति' शब्द का प्रयोग भक्ति के साधन रूप–व्यापार एवं भक्ति–भाव की अभिव्यक्ति का रूप (श्रवण आदि) के लिये किया जाता है। भक्ति के इस क्रियात्मक स्वरूप को व्यक्त करने के लिये तुलसीदास ने "भजन" संज्ञा तथा "भजना" क्रिया का प्रयोग किया है। उन्होंने 'श्रद्धा' के अर्थ में भी भक्ति का प्रयोग किया है। इसका कारण है 'भक्ति' शब्द की नानार्थकता। शास्त्रीय दृष्टि से दोनों को तत्त्वतः भिन्न माना जाता है। दोनों में साध्य–साधन सम्बन्ध है। यही कारण है कि भक्ति–प्राप्ति के सहायक भवानी–शङ्कर श्रद्धा–विश्वास के रूप हैं[१]।

भक्ति के अर्थ की व्यञ्जना के लिये तुलसी ने अनेक शब्दों का व्यवहार किया है—अनुराग, प्रीति, प्रेम, रति, स्नेह आदि। तुलसीदास की भक्ति प्रेमरूपा है। "प्रेमभगति", "भगति प्रेम" या "भाव भगति" आदि युगल शब्दों का व्यवहार उन्होंने साधनभक्ति की तुलना में साध्यभक्ति के प्रेमस्वरूप को अधिक महत्व देने के लिये ही किया है[१]। तुलसीदास ने प्राचीन भक्तिशास्त्रियों के ही अनुसार प्रेम पर अधिक बल दिया है। भरत की अनवरत प्रीति के कारण ही उन्हें स्नेह की अवधि और मूर्तिमान् स्नेह तथा प्रेमरूप कहा गया है[१]। प्रेम का अतिरेक व्यक्त करने के लिये ही तुलसीदास ने कहा है–

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोंहि राम।।

अधोलिखित अर्द्धाली में "लय" भी इसी तल्लीनता का ज्ञापक है–

मन तें सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी।।

भक्ति के लिये सात्त्विकता की अपेक्षा अनिवार्य है। रावण तक ने इस बात का अनुभव किया था कि तामस देह से भगवान् का भजन नहीं हो सकता–

---

1. मानस०, १/३६/२, ७/३४, ७/४९/३, विनयपत्रिका, २०३/१६, दोहावली, दो० १२५, कवितावली, ७/६९।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रमं बचन मंत्र दृढ़ एहा।।

इस प्रेम के लिये अमायिकता और सच्चाई भी अत्यन्त आवश्यक है[1]। इसीलिये तुलसीदास ने रामचरितमानस आदि काव्य–ग्रन्थों में मनसा, वाचा, कर्मणा अर्थात् सर्वात्मना की गयी भक्ति पर विशेष ध्यान दिया है[1]। प्रीति के लिये प्रतीति अनिवार्य है, इसीलिये तुलसीदास ने दोनों का साथ–साथ बारम्बार प्रयोग किया है। भगवान् एवं उसकी भक्ति ही भक्त का एकमात्र साध्य और प्रयोजन है[1]। रामविषयक परम प्रेम को व्यक्त करने के लिये तुलसीदास ने अनेक उपमानों का आश्रय लिया है–मृग, सर्प, कमल, मीन, लोभी, कामी आदि[1,1]। उनकी दृष्टि में अनुरक्ति की अनन्यता का महत्तम आदर्श चातक है। राम अपने भक्त के प्रेम को एकाङ्गी रहने नहीं देते। वे प्रीति की रीति को समझते हैं—जानत प्रीति रीति रघुराई[1]। उसका उचित सम्मान करते हैं[1]। प्रीति ही उन्हें प्रिय है[1]। वे "भक्त" के प्रेम के वशीभूत हैं[1]।

तुलसीदास अपने अभिमत भक्तिमार्ग को श्रुतिसम्मत एवं विरतिविवेक–संयुक्त हरिभक्तिपथ कहते हैं–

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिवेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक।।

वह श्रुतिसम्मत है, प्राचीन आप्त ग्रन्थों पर आश्रित है। तुलसी ने उन विशेषज्ञ मनीषियों के ज्ञान और अनुभव का अपने भक्ति–निरूपण में समुचित उपयोग किया है। "दूसरी बात यह है कि भारतवासियों के लिये वही भक्तिपथ वाञ्छित है जिसका सम्बन्ध भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषा से हो। यह सम्बन्ध तभी स्थापित हो सकता है, जब श्रुतिसम्मत हरिभक्तपथ की ही चर्चा की जाय; क्योंकि श्रुतिग्रन्थ ही आर्य भाव और भारतीय संस्कृति तथा भारतीय भाषा के सच्चे कोष हैं[32]"। बौद्धों, जैनों, शाक्तों, सूफियो निर्गुण सन्तों आदि के वेद–पुराण विरोधी मार्गों के निराकरण के लिये भी तुलसीदास ने "श्रुति संमत" पर जोर दिया है। विरति, विवेक को भक्ति के दो रूपों में संयुक्त माना जाता है। साधारणजन्या भक्ति में वे सहायक रूप हैं। कृपाजन्या भक्ति में उनका रूप सहचर का सा है; क्योंकि उनमें भगवद्–रति, विषय–विरति एवं भजनीय का माहात्म्य ज्ञान–इन तीनों का उदय साथ–साथ होता है[31]। तुलसीदास की भक्तिविषयक कुछ अपनी मौलिक मान्यताएँ हैं और कुछ शास्त्रसम्मत। रामचरितमानस में प्रायः तीन प्रकार की भक्ति का निरूपण किया गया है।

1. मानस०, २/१३१/४, २/२५९/१, ३/१६/५, विनयपत्रिका, ४२/३, एवं ११२/४, कवितावली, ७/७९।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१. प्रथम भक्ति रागानुगा है। जब प्रभुचरणों में क्षण–क्षण अविच्छिन्न आसक्ति बढ़ती जाय, गुणों की कामना न रहे, ऐसे परमानन्द शान्तिमय अनुभव–रूप निरोध को तब प्रेमाभक्ति कहते हैं–

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी।।
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउं कहाँ नहिं बूझा।।
कवहुंक फिरि पाछें पुनि जाई। कवहुंक नृत्य करइ गुन गाई।।
अविरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई।।

इसके अन्तर्गत प्रेमा भक्ति, सिद्धा भक्ति, फलरूपा भक्ति, अविरल भक्ति, अनुपायिनी भक्ति, विशुद्धा भक्ति आदि आती हैं। सभी प्रकार की भक्ति का समर्थन रामचरितमानस में स्थान–स्थान पर दृष्टिगोचर होता है।

२.भावभक्ति दूसरी भक्ति है, जो तुलसीदास द्वारा समर्थित और उनकी अपनी मौलिक देन है। द्रवीभूत चित्त में जब राम का रंग चढ़ जाता है तब उसे भाव–भक्ति कहते हैं। यह भावभक्ति साधनभक्ति से उत्पन्न होती है और रागानुगा भक्ति में परिणत हो जाती है। अतः साधनभक्ति से रागानुगा भक्ति तक पहुँचने का यह आवश्यक सोपान है। काकभुशुण्डि के पूर्व जन्म में इस भावभक्ति का पूर्णरूपेण विकास, परिपाक हुआ, फलस्वरूप प्रेमाभक्ति उत्पन्न हुई–

चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई।।
खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला। करउँ सकल रघुनायक लीला।।
प्रौढ़ भएं मोहि पिता पढ़ावा। समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा।।
मन तें सकल वासना भागी। केवल राम चरन लय लागी।।
कहु खगेस अस कवनं अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी।।
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई।।
भए कालबस जब पितु माता। मैं वन गयउं भजन जनत्राता।।

३. तीसरी साधनभक्ति है। साधनभक्ति के अन्तर्गत नवधा भक्ति आती है। मानस में नवधा भक्ति दो रूपों मे दरसायी गयी है। एक शास्त्रसम्मत तथा ''भागवत''–प्रतिपादित है। भागवत–प्रतिपादित भक्ति अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय है–

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्[३४]।।

शिवपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, आदिपुराण आदि में उसका प्रायः अविकल उल्लेख किया गया है। तुलसीदास ने भी इस नवधा भक्ति का समर्थन किया है। मानस में राम के द्वारा लक्ष्मण को इस भक्ति का उपदेश कराया गया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। नवधा भक्ति का मौलिक रूप तुलसीदास ने शबरी के प्रसङ्ग में राम के द्वारा कहलवाया है जो भागवत की नवधा भक्ति से भिन्न है–

नवधा भगति कहउं तोहिं पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।
छठ दम सींल बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।।
सातवं सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।।
आठवं जथालाभ संतोषा। सपनेहुं नहिं देखई परदोषा।।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियं हरष न दीना।।

लक्ष्मण का सम्पूर्ण चरित्र ज्ञान, भक्ति और वैराग्य से परिपूर्ण है। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की पूर्णरूपेण व्याख्या को समझनेवाले लक्ष्मण के सम्पूर्ण क्रिया–कलापों में ये तीनों भाव रहस्यात्मक रूप में छिपे हैं। उनके चरित्र के बाह्य आवरणों को हटा देने पर ज्ञान, वैराग्य और भक्ति स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती हैं।

ज्ञान और लक्ष्मण–ज्ञान के बीज लक्ष्मण में जनकपुर में राम के वार्तालाप–प्रसङ्ग में प्रस्फुटित होते दिखलायी पड़ते हैं। राम के रामत्व और लक्ष्मण के ज्ञान का उदय इसी प्रसङ्ग में होता है। राम साकेत में दो प्रकार के भक्तों की गणना करते हैं–ज्ञानी और जिज्ञासु। क्योंकि अयोध्या में दो ही प्रकार के भक्त होते हैं। लक्ष्मण को ज्ञात है कि भक्त चार प्रकार के होते हैं–ज्ञानी, जिज्ञासु, अर्थार्थी और आर्त; ये चारों प्रकार के भक्त जनकपुर में विद्यमान हैं। अतः लक्ष्मण मे कहा–

कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना।।
ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटे धनुष सुखारे।।

यहाँ कमल ज्ञानी, कोक जिज्ञासु, मधुकर अर्थार्थी और नाना खग आर्त्त के प्रतीक हैं। अतः लक्ष्मण का भक्तिविषयक ज्ञान असीम था। इन चार प्रकार के भक्तों की गणना शास्त्रसम्मत है।

गीता में भी इन्हीं चार प्रकार के भक्तों का उल्लेख भगवान् श्रीकृष्ण ने किया है। उन्होंने वहाँ ज्ञानी भक्त को उच्च कोटि का बतलाया है–

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन!।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ![1]।।

रामचरितमानस में भी–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृति चारिउ अनघ उदारा।।"

कह कर गीतासम्मत चार प्रकार के भक्तों को प्रतिष्ठापित किया गया है। लक्ष्मण में बीज रूप में स्थिर ज्ञान यहीं से प्रस्फुटित होता है और उत्तरोत्तर ज्ञान का पूर्ण परिपाक इनके चरित्र में होता ही गया है। ज्ञानी भक्त माया, ब्रह्म और जीव को भलीभाँति समझकर कमल की भाँति कीचड़ से उत्पन्न होकर पङ्करहित, स्वच्छ और निर्मल मनवाले होते हैं। माया का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। अपनी दिव्य दृष्टियों से ये लोग माया को पहचान लेते हैं। लक्ष्मण का चरित्र भी उज्ज्वल गुणों से युक्त कमल की भाँति निर्मल है। पञ्चवटी में निवास करते हुए अपने ज्ञान के बल पर लक्ष्मण ने मारीच को पहचान लिया था।

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग–अंग सुमनोहर बेषा।।

माया से युक्त सीता को ही माया का मृग दिखलायी पड़ा, लक्ष्मण को नहीं। तुलसी ने इसे स्पष्ट तो नहीं किया है, किन्तु वाल्मीकिरामायण और अध्यात्मरामायण में लक्ष्मण ने राम को स्पष्ट समझाया है कि यह वास्तविक मृग नहीं, मायामृग है–

लक्ष्मणो राममाहेदं देवायं मृगरूपधृक्।
मारीचोऽत्र न सन्देह एवम्भूतो मृगः कुतः![23]।।

अर्थात् देव! यह मृगरूपधारी मारीच है, इसमें सन्देह नहीं; क्योंकि भला मृग ऐसा भी कहीं हो सकता है!

"वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण ने कहा है कि" मैं तो समझता हूँ कि इस मृग के रूप में वह मारीच नाम का राक्षस ही आया है। स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले इस पापी ने कपट वेष बनाकर वन में शिकार खेलने के लिये आये हुए कितने ही हर्षोत्फुल्ल नरेशों का वध किया है। यह अनेक प्रकार की माया जानता है। इसकी जो माया सुनी गयी है, वह गन्धर्वनगर के समान देखने मात्र के लिये हैं, उसमें वास्तविकता नहीं है। इस भूतल पर कहीं भी ऐसा विचित्र रत्नमय मृग नहीं है, अतः निस्सन्देह यह माया ही है"[4]। माया से निर्लिप्त प्राणी ज्ञानी और विवेकी होता है। लक्ष्मण ज्ञानी हैं और विवेकी भी।

लक्ष्मण का ज्ञान उस समय पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है, जब सीताहरण के पश्चात् रामचन्द्र विलाप करते हैं। तुलसीदास के राम मर्यादापुरुषोत्तम राम हैं। उनमें किसी प्रकार की त्रुटि दरसाना उन्हें प्रिय नहीं था। इस स्थल पर राम को विलाप करते देखकर "लछिमन समुझाए बहु भाँती" कहकर तुलसी अपने प्रसङ्ग को आगे बढ़ा देते हैं। लक्ष्मण ने राम को बहु भाँति क्या समझाया?– यह रामचरितमानस में नहीं बतलाया गया, किन्तु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसकी विवेचना करने पर लक्ष्मण के ज्ञान का पता लग सकता है। वाल्मीकि रामायण में इस स्थल पर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी कुछ पर लक्ष्मण प्रवचन देते हुए राम को उद्बुद्ध करते हैं। वे राम से कहते हैं कि आप साक्षात् ब्रह्म है, आपको मानवोचित विलाप नहीं करना चाहिये। उन्होंने आगे कहा–"राजा दशरथ की गोद से, घोर तपस्या के बाद, आप ही अवतरित हुए हैं और आपके वियोग से ही दशरथ का प्राणान्त हुआ है। यदि आप ही इस विपत्ति को सहन नहीं करेंगे तो दूसरा सांसारिक पुरुष किस प्रकार विपत्तियों को सह सकेगा! संसार में किस प्राणी पर विपत्तियाँ नहीं आतीं! आपत्तियाँ अग्नि के समान एक क्षण में स्पर्श करती हैं और दूसरे ही क्षण में दूर हो जाती हैं। विपत्तियाँ तो सब पर आती हैं। विश्ववन्दिता जगन्माता पृथ्वी हैं, उस पर भूचाल आते हैं और वह काँपती हैं। संसार के नेत्रस्वरूप सूर्य और चन्द्रमा को भी राहु का आतङ्क पीड़ित करता है। समस्त देवता भी विपत्तियों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाते। नीति अनीति के कारण तो इन्द्र तक विपत्ति में पड़ जाते हैं, इसलिये आपको दुःखी नहीं होना चाहिये। सर्वज्ञ पुरुष तो बड़ी से बड़ी विपत्ति पर भी खेद नहीं करते। वे निर्वेदरहित होकर अपनी विचारशक्ति को नष्ट नहीं होने देते। आप बुद्धि द्वारा तात्त्विक विचार कीजिये; क्योंकि बुद्धियुक्त ज्ञानी पुरुष ही शुभ और अशुभ को अच्छी तरह जानते हैं"[५]। तुलसी ने राम की मर्यादा की रक्षा के लिये अपने प्रिय ग्रन्थ अध्यात्मरामायण के अंश को छोड़ दिया है। अध्यात्मरामायण का रामचरितमानस पर बहुत अधिक प्रभाव है। इस स्थल पर अध्यात्मरामायण में भी लक्ष्मण राम को समझाते हुए पाये जाते हैं। दर्शन में ज्ञान, वैराग्य और भक्ति–तीनों का लक्ष्मण को पूर्ण ज्ञान था। लक्ष्मण ने निषाद के समक्ष ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का बहुत ही सुन्दरता के साथ विवेचन किया है। समय–समय पर लक्ष्मण द्वारा राम को दिये गये उपदेशों में इनका ज्ञान और प्रबोध परिलक्षित होता है। राम से ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और ब्रह्म, जीव तथा माया के प्रति की गयी जिज्ञासा में लक्ष्मण के एक विवेकी और सजग ज्ञानी होने का संकेत मिलता है।

वैराग्य और लक्ष्मण–रामचरितमानस में लक्ष्मण का चरित्र एक पूर्ण विरागी के रूप में चित्रित है। लक्ष्मण द्वारा वैराग्य के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने पर राम ने उनसे कहा– "वैराग्य की बात तुम क्यों पूछते हो, तुम तो पूर्ण वैरागी ही हो। मैं तुम्हें परम वैरागी का लक्षण बताता हूँ। जो सम्पूर्ण सिद्धियों और तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम) से मिलनेवाले सुखों को तृण के समान समझकर उनका त्याग कर देता है, उसे परम विरागी कहते हैं–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी।।

राम के अनुसार लक्ष्मण पूर्ण विरागी हैं; क्योंकि माया, मोह, सुख, राज्यपद, माता, पिता, पत्नी आदि किसी के भी प्रति लक्ष्मण के हृदय में किसी प्रकार का राग नहीं है। राम के वनगमन का समाचार सुनकर कातर हृदय से, विना माँ की आज्ञा लिये ही, उनके साथ चलने के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं। राम के सम्मुख उनकी उपस्थिति दर्शनीय है–

राम बिलोकि बंधु कर जोरें। देह गेह सब सन तृनु तोरें।।

राम के चरणों में अविचल भक्ति के कारण उन्हें माता–पिता, पत्नी, किसी की लेश मात्र भी चिन्ता नहीं है। इसलिये अपनी युवा पत्नी तक छोड़ राम के साथ वन में जाने के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं। इनके विराग की पराकाष्ठा उस प्रसङ्ग में और उदात्तता की ओर जा पहुँचती है, जब श्रीराम उनको समझाते हैं। राम ने जो शिक्षा दी है यद्यपि वह दोनों आसक्तियों (देह, गेह) से युक्त है, लेकिन बहुत महत्त्वपूर्ण भी है। राम ने कहा–"मनुष्य को सात्त्विक सुख के लिये यत्नशील होना चाहिये, जो प्रारम्भ में विष की भाँति कटु और परिणाम में अमृत के समान मधुर होता है। मेरे वन जाने का परिणाम बहुत उत्साहवर्धक होगा, बहुत बड़े यश की प्राप्ति होगी, अतः प्रेम के वश धैर्य का त्याग न करो। जो स्वभाव से माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा शिरोधार्य करते हैं, उनका जन्म सुफल है। अन्यथा जगत् में जन्म व्यर्थ है। ऐसा सोच कर वन में न जाकर वृद्ध माता–पिता की सेवा करो। भरत और शत्रुघ्न अयोध्या में नहीं हैं, पिताजी वृद्ध हो गये हैं और मेरे वन में जाने से उन्हें हार्दिक दुःख भी है। मेरे साथ तुम्हारे चलने से यह अयोध्या अनाथ हो जायगी। प्रजा दुःखी होगी तो उसका दोष राजा पर ही आवेगा। इस प्रकार की नीति विचार कर तुम मेरे साथ मत चलो[1]।" लक्ष्मण राम की नीतिपूर्ण बातों को सुन कर और अधिक दुःखी हो गये। इनका कोमल वदन उसी प्रकार कुम्हला गया जिस प्रकार शीतल पाला पड़ने से कमल का फूल कुम्हला जाता है।

रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी।।
सिअरें बचन सूखि गए कैसें। परसत तुहिन तामरसु जैसें।।

लक्ष्मण राम के आज्ञाकारी भी हैं, और प्रेमी भी। राम की आज्ञा है कि वन मत जाओ, परन्तु अपने प्रेम के आधिक्य से वे राम को अकेले जङ्गल में जाने नहीं देना चाहते, क्योंकि वहाँ राम के चरणों की सेवा कौन करेगा? अतः लक्ष्मण की क्या मनःस्थिति हो गयी, उसे तुलसीदास यों दरसाते हैं–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उतरु न आवत प्रेम बस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त काह बसाइ।।

लक्ष्मण में वैराग्य हो चुका है, अतः वैरागी जीव सांसारिक सुख, ऐश्वर्य, विलास, कीर्त्ति, यश, अपयश सबकी चिन्ता छोड़कर अपने आराध्य में लवलीन हो जाता है। अतः लक्ष्मण उत्तर देते हैं—

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाई। लागि अगम अपनी कदराई।।
नरबर धीर धरम धुर धारी। निगम नीति कहुं ते अधिकारी।।
मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला।।
गुर पितु मातु न जानउं काहू। कहउं सुभाउ नाथ पतिआहू।।
जहं लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई।।
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी।।
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।।
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई।।

लक्ष्मण को राम की आज्ञा स्वीकार नहीं है। वे तो मन, कर्म और वाणी से राम की सेवा करना चाहते हैं। अतः राम को प्रत्युत्तर देते हैं— ''यद्यपि आपकी शिक्षा बहुत पवित्र, बड़े उदार भाव वाली तथा सुगम है, पर मैं उसका अधिकारी नहीं हूँ। धीर पुरुष जो धर्म की धुरी को धारण करने में समर्थ हैं, वे ही वैदिकी नीति के अधिकारी है। मैं शिशु हूँ, मैं गुरु, पिता, माता को नहीं जानता। मैं हृदय का भाव कहता हूँ कि मैं संसार के प्रपञ्च से अपरिचित हूँ। जगत् में जितने नेह और नाते हैं और स्वयं वेद ने जिस प्रीति और प्रतीति का ज्ञान किया है, हे अन्तर्यामी! मेरे तो सब कुछ आप ही हैं। मुझे न कीर्ति चाहिये, न ऐश्वर्य चाहिये और न शुभ गति ही। जिन्हें इन सब वस्तुओं की अपेक्षा है, उन्हें धर्म नीति का उपदेश उचित है। मैं तो मनसा, वाचा, कर्मणा आपका दास हूँ मुझे तो छोड़ने का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिये।

लक्ष्मण की भक्ति और कर्म के समक्ष राम को अपने विचार बदल कर उन्हें अपने साथ रखना पड़ा। जो सांसारिक सुख, वैभव, ऐश्वर्य और विलास से विरत हैं उन्हें प्रभुचरणों में ही सुख है। अतः प्रभुप्रेम का मद जब जीव पर चढ़ता है तब वह संसार की नीति, धर्म, कर्म, सुख, सम्पत्ति सब का मोह त्याग देता है। मीरा इसका ज्वलन्त उदाहरण है। रसखान तो ''आठहु सिद्धि नवों निधि'' के सुख को नन्द की गाय चराने में भूल गये। लक्ष्मण का गुरु, पिता, माता, पत्नी, राजसुख का त्यागना और प्रभु के साथ शुद्ध और प्रसन्न मन से वन जाना उनके विरागी जीवन का उदाहरण है।

वन में राम और सीता की सेवा में लक्ष्मण को इतना सुख मिला कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे आनन्दसागर में डूब गये। उनको वन में राम की सेवा में संसार का सारा सुख और वैभव मिल गया। तृण पर सोने में, फल–फूल के सेवन में, नदियों का जल अञ्जलि से पीनें में, घोर जङ्गल में नंगे पाँव चलने में उन्हें एक नवीन उल्हास और नये सुख का अनुभव होता रहा । और उस सुख की अनुभूति में वे माता–पिता, भाई और पत्नी सब को भूल गये—

छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लखनु चितु बंधु मातु पितु गेहु।।

राम की सेवा में लक्ष्मण इतने तल्लीन हैं कि उन्हें किसी की चिन्ता नहीं है। जिस प्रकार देह को ही आत्मा माननेवाला अविवेकी पुरुष शरीर की सेवा करता है, वह धर्माधर्म कुछ नहीं जानता, तथा जिससे शरीर को सुख मिले वही करता है; उसी भाँति लक्ष्मण सेवाधर्म के आगे किसी धर्म को नहीं मानते—

सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि।।

वाल्मीकि रामायण में शोकसन्तप्त, व्यथित और क्रोधित राम को अनेक स्थलों पर ज्ञान और वैराग्य का उपदेश लक्ष्मण से मिला है। सीता के शोक में विलाप करते हुए विक्षिप्त राम से लक्ष्मण ने वैराग्य तथा ज्ञान से मिश्रित निवेदन किया है—

स्मृत्वा वियोगजं दु:खं त्यज स्नेहं प्रिये जने।
अतिस्नेहपरिष्वङ्गाद् वर्त्तिरार्द्रापि दह्यते[४]।।

पुनश्च—

त्यजतां कामवृत्तत्वं शोकं संन्यस्य पृष्ठत:।
महात्मानं कृतात्मानमात्मानं नावबुध्यसे[५]।।

लक्ष्मण की वाणी में विराग और भक्ति का ऐसा समन्वय हो गया कि राम की भक्ति के लिये वे पूर्ण विरागी बन गये और अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में भी राम की आज्ञा का पालन रागमुक्त होकर करते रहे। गीतावली में राम द्वारा सीता का परित्याग करते समय लक्ष्मण के स्वरूप का चित्रण तुलसी ने एक विरागी के रूप में किया है। इनके इस अनासक्तिभाव को देखकर ही तुलसी ने कहा है कि स्वयं विराग ही शरीर धारण कर इस पृथ्वी की शोभा बढ़ा रहा है—

सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परनकुटीर।
भगति ज्ञानु वैराग्य जनु, सोहत धरे सरीर।।

भक्ति और लक्ष्मण—भक्ति, ज्ञान और वैराग्य–इन तीनों में भक्ति सर्वोत्तम है, ऐसी मान्यता गोस्वामी तुलसीदास की थी। उनके मतानुसार ज्ञान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के अभिमान से ज्ञानी का पतन हो जाता है। स्वाभाविक है कि व्यक्ति को ज्ञानी होने पर स्वाभिमान का उसमें अवश्य उदय होता है और यही स्वाभिमान अभिमान में परिणत हो जाता है। इस प्रकार अभिमान आते ही ज्ञानी का पतन हो जाता है—

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।।

किन्तु भक्ति का अभिमान करने से भक्त का विकास ही होता है; क्योंकि भक्ति की अभिमत्ता से प्रभु चरणों में रति निरन्तर बढ़ती रहती है, इसीलिये सुतीक्ष्ण मुनि ने राम से विशेष आग्रह करके यह वरदान माँगा—

अस अभिमान जाई जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।

तुलसीदास भक्ति के उपासक थे। रामभक्ति पर उनकी प्रबल आस्था थी, इसलिये उन्होंने ज्ञान को नीरस कहकर भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया। रामभक्तिविहीन ज्ञान को कर्णधारविहीन जलयान कह दिया–

सोह न राम पेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू।।

यही नहीं, भक्ति विना ज्ञान तो रसविहीन रसाल की भाँति है और रसाल का रस ही प्रभुपद–प्रीति है–

सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रत बेद बखाना।।

यही कारण है कि रामचरितमानस के भक्तों ने रति की विशेष कामना की है। भरत ने प्रयागराज तीर्थ से प्रार्थना करते हुए इस रति के लिये अपने धर्म को भी छोड़ देना स्वीकार किया है। क्षत्रिय का धर्म है देना, किन्तु राम–चरणों की रति के लिये क्षत्रिय–धर्म को छोड़कर प्रयागराज से भरत याचना करते हैं–

मागउं भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू।।
अस जियं जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी।।
अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउं निरबान।
जनम जनम रति रामपद यह बरदानु न आन ।।

— — — — — — — — — — — —

सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें।।

भगवान् शिव रामराज्याभिषेक के बाद राम की स्तुति करते हुए रामभक्ति की याचना करते हैं और राम की चरण–रति चाहते हैं–

बार बार बर मागऊँ, हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी, भगति सदा सत्संग।।

ब्रह्मनिष्ठ एवं वेदज्ञ सनकादिकों ने राम की स्तुति करके उनसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वरदान माँगा है कि हे परमानन्दस्वरूप, कृपा के धाम श्रीराम! आप कृपाकर हमें अपने चरणों की अनपायिनी भक्ति प्रदान करें।

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम।।

रामभक्ति की महिमा कितनी महान् है, उसे काकभुशुण्डि के चरित्र से जाना जा सकता है। वरदान माँगने की आज्ञा पर वे श्रीराम से केवल रामभक्ति ही माँगते हैं; जबकि श्रीराम उन्हें ज्ञान, वैभव, ऐश्वर्य सब कुछ देने का आश्वासन देते हैं। काकभुशुण्डि की याचना है–

अबिरल भगति बिसुद्ध तव, श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव।।
भगत कल्पतरु प्रनत हित, कृपा सिंधु सुख धाम।
सोई निज भगति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम।।

भक्ति की महत्ता को शरभङ्ग ऋषि ने समझा और उन्होंने अपने जीवन के सम्पूर्ण योग, यज्ञ, तप, जप, व्रतादि भगवान् श्रीराम को समर्पित कर दिये। फलस्वरूप उन्होंने केवल राम की भक्ति का वरदान प्राप्त किया; क्योंकि रामभक्ति उक्त सभी कर्मों से श्रेष्ठ है–

जोग जग्य जप तप व्रत कीन्हा। प्रभु कहं देइ भगति बर लीन्हा।।

अगस्त्य मुनि अपने आश्रम में राम की विधिवत् पूजा करने के बाद राम का स्तवन करते हुए भक्ति की ही याचना करते हैं–

अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा।।

राम की स्तुति करके गृध्र ने राम से अविरल भक्ति ही माँगी–

अबिरल भगति माँगि बर, गीध गयउ हरिधाम।

निष्काम भक्त हनुमान् ने कभी किसी से कुछ नहीं माँगा। किन्तु उनको भी भक्ति की याचना करनी पड़ी–

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी।।

चक्रवर्ती सम्राट् दशरथ के पुरोहित वशिष्ठ ने राम–दर्शन के लिये पौरोहित्य स्वीकार किया। रामावतार के समय सम्पूर्ण शुभ कार्यों को सम्पादित किया और अन्तिम समय में राम–भक्ति के लिये याचक बने। रामभक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा कि वेद, उपनिषद्, शास्त्र आदि पढ़ने सुनने का फल पृथक्–पृथक् है, किन्तु वे सभी सुन्दर नहीं हैं। सुन्दर फल तो केवल प्रभु चरणों की भक्ति है, क्योंकि प्रेमाभक्ति के कारण मन का मालिन्य दूर हो जाता है। मन का मैल दूर हो जाने से ब्रह्म अपने आप प्रतिभासित होते हैं। विना वेदादि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्ययन के ज्ञान हो जाता है। अतः सब कुछ त्याग कर वशिष्ठ ने राम से उनकी भक्ति की याचना की–

सोइ सर्वग्य तग्य सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित।।
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाके पद सरोज रति होई।।
नाथ एक बर मागउं, राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभुपदकमल, कबहुँ घटै जनि नेहु।।

कवि का विश्वास है कि प्रभु–पद–रति प्राप्त कर लेने पर भक्त भवजनित त्रिविध शूल से पूर्णतया मुक्त हो जाता है–

जो पै रामचरन रति होती
तौ कत त्रिविध सूल निसि बासर सहते बिपति निसोती[1]।

इस प्रकार कवि ने भक्ति की प्रतिष्ठा करके प्रायः सभी प्रमुख सम्मानित पात्रों को रामचरण–रति का इच्छुक दरसाया है। "रति" अनेकार्थवाची शब्द है। तुलसीदास ने "रति" का जो अर्थ ग्रहण किया है उसका अर्थ है–भक्ति, अनुराग, आनन्दानुभूति आदि। अतः "रामचरण–रति" का अर्थ है– राम के कमलवत् चरणों में भक्ति या अनुराग। यह अनुराग या भक्ति बहुत दिनों की साधना (तपस्या) के बाद उत्पन्न होती है। जब रामचरणों में रति उत्पन्न हो जाती है, तब संसार के सभी सुख नीरस प्रतीत होते हैं। लक्ष्मण राम के लघु भ्राता हैं। उनके हृदय में बचपन से ही राम के चरणों में रति की कामना है। इस कामना को सफल करने के लिये लक्ष्मण को कठिन से कठिन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना पड़ा। बाल्यकाल से राम का सान्निध्य और साहचर्य लक्ष्मण को प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। उसी समय से उनके मन में रामभक्ति बीज रूप में प्रस्फुटित हुई–

बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी।।

राम के सान्निध्य में उनकी सेवा से वह लक्ष्मण के हृदय में अंकुरित हुई। विकसित होकर मीन–निष्ठा तक पहुँच गयी। इसी कारण से जब राम ने कहा कि लक्ष्मण तुमको अयोध्या में रहकर माता–पिता–गुरु और प्रजाजनों की सेवा करनी होगी, तब लक्ष्मण का हृदय मर्मान्तक पीड़ा से व्यथित हो उठा। लक्ष्मण की स्थिति जल–विहीन मीन की सी हो गयी–

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल तें काढ़े।।

व्याकुल और तड़पते हुए लक्ष्मण को राम के समक्ष नत होकर प्रार्थना करनी पड़ी कि प्रभु अपने चरणों की सेवा से पृथक् न करें, क्योंकि मैंने तो मन, वाणी और कर्म से आपकी सेवा करने का व्रत ले लिया है–

मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भक्ति को विधिवत् समझनेवाली सुमित्रा ने लक्ष्मण को आशीष रूप में राम चरणों की रति ही प्रदान की–

रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई।।

वन में लक्ष्मण मनसा, वाचा कर्मणा राम की सेवा करते हैं, परन्तु उनको विश्वास नहीं होता कि मेरे मन में राम के चरणों के प्रति रति उत्पन्न हुई या नहीं। इसलिये वे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, ब्रह्म, जीव और माया के विषय में जिज्ञासा करते हैं जिससे प्रभु चरणों में रति उत्पन्न हो सके–

ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहो समुझाइ।
जाते होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ।।

प्रभुचरणों में रति उत्पन्न करने के लिये लक्ष्मण ने अपने आराध्य के कार्यों को सहर्ष सम्पन्न किया और मेघनाद से युद्ध करते हुए अचेत हो गये। सञ्जीवनी लाते समय हनुमान् के द्वारा जब सुमित्रा को ज्ञात हुआ कि लक्ष्मण राम के लिये युद्ध करते हुए अचेत हुए हैं तब उन्हें अत्यधिक सुख की अनुभूति हुई–

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामि–काज संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरे हैं।।
सुवन–सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति–भगति बरें हैं।
छिन–छिन गात सुखात छिनहि छिन हुलसत होत हरे हैं।।

(गी०, ६/१३/१–२)।

यही कारण है कि लङ्का से अयोध्या लौटने पर सुमित्रा उन्हें हृदय से लगा लेती हैं। सुमित्रा को यह विश्वास हो जाता है कि अब लक्ष्मण में प्रभु–चरणों की भक्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है। अतः–

भेटेंउ तनय सुमित्रा राम चरन रति जानि।

तुलसीदास लक्ष्मण के हृदय में राम–भक्ति की पराकाष्ठा को देखकर उनकी वन्दना करते हैं–

जयति सीतेस–सेवासरस, विषयरस–निरस, निरुपाधि धुरधर्मधारी[1]।

लक्ष्मण राम–भक्त हैं। उनके चरित्र में राम की भक्ति, कूट कूट कर भरी है। भक्ति के अतिरिक्त वे किसी को कुछ भी महत्ता प्रदान नहीं करते। अध्यात्मरामायण में तो लक्ष्मण राम से स्पष्ट कहते हैं कि मैं आपका अनन्य भक्त हूँ, आप मुझे क्रिया–योग का उपदेश दें। यथा–

तव भक्ताय मे भ्रात्रे ब्रूहि लोकोपकारकम्[23]।।

इनकी इस भक्ति को देखकर भरत को अपने पर ग्लानि होती है कि लक्ष्मण को रामचरणों की सेवा का अवसर मिला और मैं उससे वञ्चित रह गया–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। रामपदारबिंदु अनुरागी।।

लक्ष्मणगीता—उपर्युक्त वर्णनों में शास्त्रसम्मत ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए तद्विषयक तुलसीदास की अपनी मान्यताओं का दिग्दर्शन कराया गया। लक्ष्मण के ज्ञानी, वैरागी तथा भक्त होने का यथास्थान सङ्केत भी कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त उनकी कुछ अपनी धारणा है, जो ज्ञान, भक्ति और वैराग्य को अधिक स्पष्ट करती है। रामचरितमानस में यह स्थल बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। विद्वानों ने इस प्रसङ्ग को "लक्ष्मणगीता" नाम से अभिहित किया है। गीता की भाँति ही यह उपदेश आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण है, जिसमें कर्म, ज्ञान. वैराग और भक्ति की सम्यक्व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

वन में श्रीराम और जानकी को तृणशय्या पर देखकर भक्त निषाद विचलित हो उठता है, उसे मोहजन्य विषाद उत्पन्न होता है। मोह के कारण श्रीराम के वास्तविक स्वरूप को भूलकर उनके इस प्रकार वन में आने और कष्ट उठाने का हेतु कैकेयी को समझ कर कटूक्ति कहता है—

कैकेयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहि रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह।।

इस पर निषाद के मोहजनित विषाद को दूर करने के लिये लक्ष्मण ने उसे भक्ति ज्ञान और वैराग्य परिपूर्ण आध्यात्मिक उपदेश दिया—

बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी।।

मीमांसादर्शन के अनुसार कर्म को ही प्रधान माना गया है। उसके अनुसार संसार में जो कुछ सुख और दुःख या संयोग और वियोग, हास–विलास है, सब मनुष्य के अपने कर्मों के फल हैं। लक्ष्मण ने अपने प्रथम वाक्य में ही मीमांसा के कर्म–सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता।।

कर्म का सिद्धान्त भारतीय दर्शन का प्रतिष्ठित सिद्धान्त है। गीता, पद्मपुराण आदि ग्रन्थ तो कर्मसिद्धान्त के प्रतिपादन के लिये ही लिखे गये हैं। अध्यात्मरामायण में भी कर्मसिद्धान्त का समर्थन किया गया है। उसके अनुसार मनुष्य का पूर्वकृत कर्म ही उसके सुख अथवा दुःख का कारण होता है, किसी अन्य के द्वारा कोई दुःख या सुख का भागी नहीं होता। "कोई अन्य दुःख या सुख देता है" यह समझना कुबुद्धि है। "मै करता हूँ" यह वृथा अभिमान है, क्योंकि लोग अपने–अपने कर्मों की डोरी में बँधे हुए हैं। मनुष्य स्वयं ही पृथक्–पृथक् आचरण कर उसके अनुसार सुहृद्, मित्र, शत्रु, उदासीन, द्वेष्य, मध्यस्थ और बन्धु आदि की कल्पना कर लेता है। अतः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनुष्य को चाहिये कि प्रारब्धानुसार सुख या दु:ख जो कुछ जैसे–जैसे प्राप्त हो उसे वैसे ही भोगते हुए सदा प्रसन्नचित्त रहें। हमें न तो भोगों की प्राप्ति की इच्छा है और न त्यागने की[२३]।

पद्मपुराण भूमिखण्ड में राजा ययाति के कर्म–सम्बन्ध में ऐसे ही विचार हैं–''उपद्रव, आघात दोष, सर्प और व्याधियाँ ये सभी कर्मप्रेरित होकर मनुष्य को प्राप्त होती हैं। आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु ये पाँच बातें जीव के गर्भ में रहते समय ही रच दी जाती हैं। मनुष्य जैसा करता है वैसा ही उसे भोगना पड़ता है। वह अपना ही बनाया हुआ दु:ख और सुख भोगता है। जैसे बछड़ा हजारों गौओं के बीच में खड़ा होने पर भी अपनी माता को पहचान कर उसके पास पहुँच जाता है, उसी प्रकार पूर्व जन्म के किये हुए शुभाशुभ कर्म कर्त्ता का अनुसरण करते हैं। पहले का किया हुआ कर्म कर्त्ता के सोने पर सोता है, उसके खड़े होने पर खड़ा होता है, और चलने पर पीछे चलता है। अर्थात् कर्म छाया की भाँति कर्त्ता के साथ लगा रहता है। अपने कृत कर्मानुसार उसके लिये जग अनुकूल या प्रतिकूल बन जाता है।

गीता में कर्म का विवेचन विशेष प्रकार से किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि–कर्म सर्वथा प्रकृति के गुणों द्वारा किये होते हैं, किन्तु मूढ़ात्मा अहङ्कार से यह मानता है कि ''मैं करनेवाला हूँ''[१]। गीता में कर्म के बन्धन से मुक्त होने का उपाय भी बतलाया गया है। सदा यह मानते रहने से कि 'गुण गुणों में बर्तते हैं,' उनमें आसक्ति नहीं होती। सब कर्म उस प्रभु के द्वारा ही किये हुए हैं, ऐसा समझकर उन कर्मों को उन्हीं में समर्पण कर दें। उन कर्मों को प्रभु की आराधना मान कर करें। उनके फलों का आशा न करें, ऐसा करने से कर्मबन्धन से मुक्त हो जायगा[२]। इसीलिये लक्ष्मणजी निषाद से कहते हैं कि जो तुम कैकेयी को दु:खदाता समझ रहे हो यह तुम्हारी भयङ्कर भूल है। दु:ख–सुख का भागी तो जीव कर्मवश होता है। जैसा कर्म करता है, वही उसका फल भोगता है। यही वेद की नीति है और सभी इसे मानते हैं। कर्म जड़ है वह स्वयं फल नहीं दे सकता। ईश्वर फलदाता है, वह शुभ कर्म का शुभ फल और अशुभ कर्म का अशुभ फल हृदय में विचार कर देता है। अशुभ कर्म का उदय हुए विना विश्व को दु:ख नहीं मिल सकता।

दु:ख और सुख का होना भी व्यावहारिक सत्य है, पारमार्थिक सत्य नहीं; क्योंकि विषय और इन्द्रिय का संयोग ही शीतलता, उष्णता, दु:ख–सुख को देने वाले हैं ये उत्पत्ति–विनाशशील एवं अनित्य है। गीता में भी ऐसा ही कहा गया है–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय! शीतोष्णसुखदु:खदा:।
आगमापायिनोऽनित्यास्ताँस्तितिक्षस्व भारत[२]!।।

असङ्ग आत्मा योग–वियोग से रहित है, अत: योग–वियोगरहित आत्मा को हित–अहित की मध्यस्था नहीं जो दु:ख और सुख का अनुभव करे। अत: योग, वियोग, भोग, शत्रु, मित्र और मध्यस्थ भाव ही भ्रम है, भ्रम के कारण ही मोह उत्पन्न होता है। उसी भ्रम में जीव बँधा होता है–

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।।
जनम मरनु जहं लगि जग जालू। संपति बिपति करमु अरु कालू।।

उस भ्रमरूपी जाल में आबद्ध जीवों से युक्त यह संसार है (जगत् है)। यह जाल संसारी जीव के जन्म से मृत्युपर्यन्त फैला हुआ है, जिसके कारण जीव बार–बार गर्भ में आता रहता है और जन्म–मृत्यु का अनुभव किया करता है। जीव के जन्म–मृत्यु के अनुभव में परमार्थ कुछ नहीं है, सभी व्यावहारिक है। सम्पत्ति–विपत्ति भी वास्तविक नहीं, क्षणिक हैं। इनके कारण, कर्म और काल का भी निष्क्रिय आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है। अर्थात् ये भी व्यावहारिक सत्ता हैं, पारमार्थिक नहीं। अत: ममता के आस्पद धरणी, धाम, पुर, परिवार यहाँ तक कि स्वर्ग और नरक सब क्षणिक हैं, सब असत्य हैं। सत्य तो वही है जिसमें देश, काल और वस्तु का व्यभिचार न हो।

जगत् के किसी पदार्थ में क्षण मात्र के लिये स्थिरता नहीं है। परिवर्तन ही जगत् का स्वरूप है। किसी स्थल पर भी दु:ख और सुख स्थायी नहीं रहता। इसलिये कुछ भी पारमार्थिक सत्य नहीं है। अपना अज्ञान ही इन सब का मूल है। आत्मस्वरूप के ज्ञान से इसका प्रभाव प्रत्यक्ष भासता है, अत: लक्ष्मण ने कहा–

धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहं लगि व्यवहारू।।
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं।।

जाग्रत् अवस्था प्रबोध का सूचक है, जिसका अर्थ है परमार्थ या ज्ञान। मोह को त्यागकर प्रबोधावस्था में सत्य का ज्ञान किया जा सकता है। रागद्वेष से युक्त यह संसार स्वप्न तुल्य है, जो अल्पक्षण के लिये सत्य जैसा प्रतिभासित होता है, किन्तु ज्ञान होने पर उसकी असत्यता सिद्ध हो जाती है, यथा–

संसार: स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसङ्कुलम्।
स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधे सत्यवद्भवेत्।।

भागवत में भी इस मत की पुष्टि की गयी है–

अर्थे च विद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्ने नार्थागमो यथा।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत्।
स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते[१]।।

अतः स्वप्न भी प्रातिभासिक सत्य है, उस काल में वह सत्य ही प्रतीत होता है। किसी को यह प्रतीति नहीं होती कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ और जो देख रहा हूँ वह मिथ्या है। सिंहासन पर सोया हुआ राजा अपने को अति दीनावस्था में पाता है, उसे उस समय राजा होना नहीं भासता। इसी भाँति महादीन स्वप्न में देखता है कि मैं इन्द्र हो गया हूँ। सभी देवता तथा ऋद्धि सिद्धि हाथ बाँधे सामने खड़े हैं। वह दीन उस समय भी दीन ही है। निद्रा-दोष के हटते ही राजा और रङ्क दोनों को वास्तविकता का आभास होता है कि राजा को न तो कुछ हानि हुई और न उस रङ्क को कुछ लाभ ही हुआ। इसलिये लक्ष्मण कहते हैं कि यह प्रपञ्च या व्यावहारिक सत्य भी सपना ही है। भेद इतना ही है कि यह सपना अधिक स्थायी है। वह सपना निद्रादोष से था और यह सपना मायादोष से है।

संसार के दुःखों से छुटकारा पाने के लिये इस माया-दोष स्वप्न का त्याग करना ही पड़ेगा; क्योंकि जब तक इसका त्याग नहीं किया जायगा जीव नाना प्रकार के दुःख और प्रपञ्च में पड़ा ही रहेगा। अतः इस असत्य संसार के दुःखों से छुटकारा पाने के लिये ज्ञान या प्रबोध एक ही मार्ग है। जिस प्रकार स्वप्न में अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त प्राणी की हजारों वैद्य सैकड़ों औषधियों से पीड़ा नहीं मिटा सकते[१], जिस प्रकार सुन्दर सेज पर सोये हुए राजा के प्राण को स्वप्न में डूबने पर सैकड़ों नौकाएं नहीं बचा सकतीं[१], जिस प्रकार स्वप्न में ब्राह्मण की हत्या करके भटकने वाले पीड़ित राजा की सौ करोड़ अश्वमेघ यज्ञ भी पीड़ा का हरण नहीं कर सकते[१]; उसी प्रकार माया के भ्रम में पड़कर लोग नाना प्रकार के दुःखों का भोग कर रहे हैं। तीनों प्रकार की व्याधियों से छुटकारा पाने के लिये जागना आवश्यक है। परमात्मा के तत्त्वज्ञान में जागे विना सहस्रों साधनों द्वारा भी दुःखों से मुक्ति नहीं हो सकती। तत्त्वज्ञान के विना अज्ञानजनित पापों से छुटकारा पाना असम्भव है। इसीलिये लक्ष्मण ने कहा कि हे निषाद! ये दुःख और सुख तुम्हारे मोह के कारण हैं, वास्तविकता यह है कि ये दोनों मिथ्या भासित हो रहे हैं, स्वप्नवत् हैं। यथा-

सपने होइ भिखारि नृप, रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जियं जोइ।।

यह जगत् स्वप्न है[१]। अतः स्वप्न का दुःख और सुख भी मिथ्या है। स्वप्न का शत्रु वास्तविक शत्रु नहीं है और स्वप्न का मित्र वास्तविक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मित्र नहीं है। यह विचार करके देखने पर कैकेयी भी वास्तविक शत्रु नहीं है।

जिस प्रकार सूर्य के न होने से रात्रि होती है, उसी प्रकार ज्ञान–सूर्य के अभाव में मोह–रात्रि होती है, जिस प्रकार रात्रि में साधारण प्राणी सो जाते हैं और अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं, उसी प्रकार मोह–रात्रि में सोया हुआ प्राणी जाग्रत् रूपवत् अनेक प्रकार का स्वप्न देखता है। रात्रि के स्वप्न में जिस प्रकार जाग्रत् का भान होता है, सभी स्वप्न देखनेवाले अपने को जागता हुआ ही मानते हैं, उसी प्रकार मोह रात्रि में सोनेवालों का जागना भी स्वप्न ही है। यह जागना सच्चा जागना नहीं है; क्योंकि मोह–निशा के दूर होने पर इसका बोध देखा जाता है। इसी ज्ञान की शिक्षा लक्ष्मण ने निषाद को इन शब्दों में दी–

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू॥

और कहा कि तुम्हारा खेद भी मोह–जनित है। इस प्रकार मोह में फँसे हुए अज्ञानान्धकार में स्वार्थ को परमार्थ मानते हैं–

मोह निसा सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥

किन्तु संसाररूपी रात्रि में भी माया से विरक्त सच्चे जागने वाले योगी हैं, क्योंकि वे पारमार्थिक सत्य का साक्षात्कार करते हैं। योगी इन्द्रियों को विषयों से समेट कर परमात्मा में मन लगाये रहते हैं, अतः उन्हें संयमी कहा गया है, क्योंकि गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहित चित्त हुआ मत्परायण होकर स्थित होने वाला पुरुष ही स्थिरबुद्धि होता है–

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता[२]॥

और ये संयमी लोग, सम्पूर्ण भूत प्राणियों के लिये जो रात्रि है उसमें जागते हैं और जिस नाशवान् क्षणभङ्गुर सांसारिक सुख में सब भूत प्राणी जागते हैं, तत्त्व को जानने वाले मुनि के लिये वह रात्रि है। यथा–

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः[३]॥

अतः परम तत्त्व को जानने वाले सांसारिक प्रपञ्चों से विरक्त होकर देह, स्त्री, पुत्र, धन, धाम का मोह त्याग कर, इन्हें क्षणभंगुर समझकर, विषयों से वैराग्य लेकर निरभिमान भाव से जगत् को निज प्रभुमय देखनेवाले सच्चे योगी हैं। इसके लिये गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि यह कार्य बहुत ही कठिन है। इसे जो जानता है, वही कर सकता है। जिस प्रकार सिकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में शर्करा मिल जाय तो उसे कोई भी बल लगाकर पृथक् नहीं कर सकता, किन्तु उसके रस को जानने वाली एक छोटी सी चींटी उसे अनायास ही पा जाती है, उसी भाँति जो योगी दृश्यमात्र को उदरस्थ करके, ब्रह्म में माया को समेट कर परमेश्वररूप कारण में कार्यरूप जगत् का लय करके अज्ञानरूपी निद्रा को त्यागकर सोता है, वही द्वैत से आत्यन्तिक रूप से मुक्त हुआ पुरुष भगवान् के परमपद के परमानन्द की प्रत्यक्ष अनुभूति कर सकता है। इस अवस्था में शोक, मोह, भय, हर्ष, दिन–रात और देश–काल नहीं रह जाते। एक सच्चिदानन्दघन प्रभु ही रह जाता है। यथा–

जो जेहि कला कुसल ता कहं सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहै गज भारी।।
ज्यौं सर्करा मिलै सिकता महँ बल तें न कोउ बिलगावै।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका विनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत–बियोगी।।
सोक, मोह, भय, हरष, दिवस निसि, देस काल तहं नाहीं।
तुलसीदास यहि दसाहीन संसय निर्मूल न जाहीं[१]।।

जब तक चित्त में विषय–विलास का राग है, तब तक मोह–निद्रा बनी हुई है। जब सब विषय–विलास से विराग हो तब समझना चाहिये कि जीव जाग गया। अतः रामानुरागी ही सच्चे जागने वाले हैं। गीता के अनुसार भी सभी योगियों में हरिभजनरत योगी ही सर्वोत्तम हैं। यथा–

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः[२]।।

जब तक विषय–विलास में राग नहीं होता, तब तक विवेक नहीं होता। केवल शास्त्रीय ज्ञान से पूरा काम नहीं चलता। विवेकजन्य ज्ञान से ही मोह का नाश होता है। पहले अज्ञान होता है तब विपरीत ज्ञान होता है। विपरीत ज्ञान ही भ्रम है, विवेकज ज्ञान से भ्रम और उसके मूल मोह का नाश होता है। भ्रम और मोह के रहते राम के चरणों में अनुराग नहीं होता। गीता में भी कहा गया है पापी मोह में फँसे हुए हैं, जिनका ज्ञान माया से अपहृत हो गया है, ऐसे अधम पुरुष भगवान् की शरण में नहीं आ पाते[३]। अतः मनसा, वाचा, कर्मणा राम के चरणों में पुरुषार्थ होना ही परम पुरुषार्थ है; क्योंकि मोक्ष सुख भी हरि भक्ति के विना ठहर नहीं सकता।

तदनन्तर लक्ष्मण "स्वयं राम ही ब्रह्म हैं" कहकर राम की ईश्वरीय विशेषताओं का उल्लेख करते हैं–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा।।

अर्थात् राम जीव नहीं ब्रह्म हैं। देशतः, कालतः और वस्तुतः अपरिच्छिन्न हैं, अतः परमार्थ तत्त्व हैं। अरूप होने से मन और वाणी से अव्यक्त हैं, मन और वाणी से परे होने से अलख हैं, सबके आदि होने से अलख हैं। अद्वितीय होंने से अनूप हैं, चिदानन्द होने से अरूप हैं, चिदानन्दमय होने से विकाररहित हैं। इदमित्थं रूप से नहीं कहे जा सकने के कारण वेद 'नेति नेति' कहकर इसका निरूपण करते हैं। यद्यपि प्रभु जगत् से विलक्षण हैं, पर जगत् पर कृपा करके भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के लिये, साधु के दुःख निवारिण के लिये वही राम मनुष्यरूप धारण करके लीला कर रहे हैं। उस चरित्र के सुनने से जीव जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है, यह उनके चरित्र की महिमा है। इसलिये हे निषाद! तुम मोह को छोड़कर जाग जाओ और राम को प्राकृत नर समझ कर विषाद मत करो। परमार्थ रूप ब्रह्म ही सिय रघुबीर रूप में दो मूर्ति धारण किये हुए हैं। अतः इनके चरणों में भक्ति करो–

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पञ्चम अध्याय

लक्ष्मण-चरित का सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक पक्ष

- लोकादर्शवाद तथा लक्ष्मण
- तुलसी–समाज और लक्ष्मण
- लक्ष्मण का धार्मिक पक्ष
- तुलसी का धर्मादर्श और लक्ष्मण
- रामचरितमानस में राजनीति का स्वरूप तथा उसमें लक्ष्मण का योगदान
- मानसकालीन राजनीतिक परिस्थिति
- रामचरितमानस में राजनीति के प्रमुख साधन
- मानस की राजनीति में लक्ष्मण का योगदान
- रामचरितमानस में लक्ष्मण की दण्डनीति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पञ्चम अध्याय

लक्ष्मण-चरित का सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक पक्ष

लोकादर्शवाद तथा लक्ष्मण

महाकवि तुलसीदास का रचनात्मक उत्तरदायित्व बहुत ही विराट् था। मानवीय मूल्यों के प्रति वे अत्यन्त सघन रूप में प्रतिबद्ध थे। उनके व्यक्तित्व में पाण्डित्य, प्रतिभा, जीवनानुभव और लोकानुभव का अद्भुत समन्वय दिखलायी पड़ता है। उनकी भक्ति–चेतना उन्हें जनसामान्य से विमुख न कर उसके प्रति अनुरागी बनाती हैं। भक्ति का ही यह मङ्गलमय वरदान था कि महाकवि जनसामान्य की समस्याओं के समाधान के लिये तथा आदर्श मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिये सक्रिय हो सके। वे रचनाधर्मिता को स्वान्तः सुखाय मानते हुए भी नितान्त व्यक्तिगत अनुभूतियों का माध्यम न स्वीकार कर सके। उनकी भक्ति–साधना उन्हें व्यक्तिगत मोक्ष प्रदान करने में ही अपनी इयत्ता नहीं मान लेती है, अपितु जनसामान्य में दुःख–दर्द के प्रति भी उन्हें करुण बनाती है। समन्वय की विशाल प्रतिभा लेकर उत्पन्न होने वाले तुलसीदास ने धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्तर पर जिस तरह का सामञ्जस्य स्थापित किया, वह अभूतपूर्व है। समस्त भक्तिकाल में किसी भी कवि का व्यक्तित्व ऐसा सर्वाङ्गपूर्ण नहीं दीखता। तुलसीदास समन्वय की विशाल बुद्धि लेकर उत्पन्न हुए थे, लोक–आदर्श की प्रतिष्ठा उनकी सबसे बड़ी व्याकुलता (बेचैनी) थी। प्रतिष्ठा का यह प्रयत्न उन्होंने न केवल धार्मिक क्षेत्र में अपितु जीवन के सभी अनिवार्य क्षेत्रों में किया। लोकादर्श स्थापना का ही यह परिणाम था कि लोक और शास्त्र, वैराग्य और गार्हस्थ्य, भक्ति और ज्ञान, भाषा और संस्कृति, निर्गुण और सगुण, पुराण और काव्य तथा व्यक्ति और समाज के मध्य उन्हें सन्तुलन और सामञ्जस्य लाने के लिये उन्मुख होना पड़ा। तुलसी के विनय के पदों को देखकर लगता है कि अपनी पीड़ा की, अपनी नितान्त वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति भी वे सहज ढंग से कर सकते थे। एक सीमा तक उन्होंने विनयपत्रिका और अन्य स्थलों पर इसे सम्पन्न किया भी; किन्तु यह उनकी न कामना थी, न यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनकी नियति ही थी, यह तो उनकी विवशता थी। तुलसी का "मैं" अपनी अभिव्यक्ति से सन्तुष्ट न हो सकता था, अपितु उसमें इतना व्यक्तित्व तथा इतना विस्तार था कि युग–मानस की पीड़ा एवं उद्विग्नता का प्रतिनिधित्व करने के लिये उनका "मैं" प्रतीक बन गया। रामचरितमानस "मैं' की सीमा को पार कर जाने वाले महाकवि का आत्मसाक्षात्कार है, जिसमें युग अपने सम्पूर्ण रूप में मुखरित हुआ है।

तुलसीदास ने अपने चरित्रों के माध्यम से अपने सुचिन्तित मन्तव्य को मूर्तिमान् करने का प्रयास किया है। मानव हृदय की गहरी परख होने के कारण महाकवि के चरित्र कहीं भी अविश्वसनीय नहीं लगते। साहित्य का महत्त्व इस बात से है कि वह हमारी अपूर्णताओं को पूर्णता की दिशा में उन्मुख करता है। जो कुछ है उसी से सन्तोष नहीं कर लेता, अपितु जो होना चाहिये उसके प्रति हमें जागरूक बनाता है। तुलसी के सभी चरित्र अलौकिकता लिये हुए हैं। किन्तु सबसे अद्भुत बात यह है कि इन चरित्रों की अलौकिकता बुद्धिगम्य है। जीवन–पात्र केवल श्वास प्रश्वास ही नहीं लेते, हमारी तरह केवल नाना प्रकार की संवेदनाओं को ही नहीं अनुभव करते, अपितु वे आगे बढ़ते हैं, पीछे हटते हैं और अपनी उदात्त वाणी तथा स्फूर्तिप्रद क्रियाओं के द्वारा मानव हृदय को ऊपर उठने के लिये उत्साहित करते हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य के अन्तर्मन में सन्मार्ग पर चलते हुए आने वाली विघ्न–बाधाओं को जीतने की क्षमता उत्पन्न होती है।

यह मत महत्त्वपूर्ण इसलिये भी है कि चरित्र ही महाकवि की मानसिकता को सुस्पष्ट ढंग से प्रकट करने में सक्षम होता है। तुलसी के चरित्रों में अलौकिकता अवश्य है; किन्तु वह अलौकिकता मानव मन पर ऐसी आतङ्क पैदा करने वाली नहीं है, जिस पर मनुष्य विश्वास न कर सके। तुलसीदास के चरित्र मानव के ग्रहण करने की शक्ति को उद्बुद्ध करते हैं और लोकादर्श की प्रतिष्ठा के लिये प्रेरणा प्रदान करते हैं। वे मानव जीवन के किसी एक ऐसे अङ्ग पर प्रकाश डालते हैं जहाँ कोई सामाजिक या वैयक्तिक असङ्गति के प्रति आक्रोश होता है। ये चरित्र मानव के प्रति सद्भावना और परदुःखकातरता की वृत्तियों को प्रेरित करते हैं।

अन्य सगुणमार्गी भक्त लीला के लिये लीलागान करते रहे हैं, किन्तु गोस्वामी जी ने ऐसा नहीं किया। वे केवल आदर्शवादी ही नहीं, आदर्शस्रष्टा भी थे और अपने काव्य के माध्यम से भावी नवीन समाज की स्थापना कर रहे थे। तुलसीदास का जन्म उस आदर्शवादी देश में हुआ था जहाँ लोगों का विश्वास है कि राम के जन्म लेने से हजारों वर्ष पूर्व रामायण की रचना की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जा चुकी थी अर्थात् इस देश में कवि को द्रष्टा और स्त्रष्टा समझा जाता है। इस विचार के अनुसार तुलसीदास भी एक स्त्रष्टा थे; क्योंकि आज से प्रायः ४०० वर्ष पूर्व तुलसीदास ने जिस आदर्शवादी समाज की कल्पना की थी, आज के भारत में वह प्रासङ्गिक है।

महाकवि तुलसीदास ने रचना–कार्य के धर्म को अनायास स्वीकार नहीं किया। किसी भावावेश में आ कर सौन्दर्य और प्रणय से सम्बद्ध उद्गार उनके हृदय से नहीं निकले। तुलसी ने एक विशेष प्रकार से, सामाजिक दबाव में पड़कर, एक विशेष तरह की संक्रमण की स्थिति में अपने युग को भारतीय संस्कृति और हिन्दू समाज को व्यावहारिक जगत् में सन्तुलित ढंग से जीवनयापन के लिये अपने महाकाव्य रामचरितमानस के माध्यम से निर्देश दिया। सरल (सीधे–साधे) ढंग से रामकथा की पुनरावृत्ति का प्रयास ही नहीं था, अपितु सर्वयुगीन या यों कहें कि सार्वकालिक चिरन्तन आदर्शों की स्थापना एक ऐसे आख्यान के माध्यम से की जिसमें गति है, उल्लास और आह्लाद है, अद्भुत कोटि की जिजीविषा है, सर्वत्र नवीनता और हराभरापन (ताजगी) है। तुलसी के चरित्र तब विश्वसनीय न होते, जब उनसे हमारा साधारणीकरण न होता; जब वे सामान्य मनुष्य की तरह आचरण न करते, अन्तर्द्वन्द्व मानसिक तनाव और मानवीय दुर्बलताओं से पूर्णतः मुग्ध होते, किन्तु स्थिति ऐसी नहीं है। रामचरितमानस के चरित्र हमसे कहीं भी असम्पृक्त नहीं है, वे हमारे आत्मीय और निजी हैं। उनके व्यक्तिगत पारिवारिक और सामाजिक आदर्श, आदर्शों के प्रति सङ्कल्पबद्धता और उन्हें प्रतिष्ठित करने के लिये अपने सर्वस्व त्यागने की वृत्ति सहज ढंग से हमारे मन में एक विशेष तरह के लगाव को जन्म देती है। रामचरितमानस में चरित्रों की बहुलता है, विविधता है, विचित्र तरह की प्रवृत्तियाँ और आकांक्षाएँ हैं। सबके आदर्शों का शिखर निजी है। सभी उस ओर तीव्र गति से उन्मुख हैं। इस स्थल पर हमारा समीक्ष्य विषय लक्ष्मण का वह चरित्र है जिसकी अपनी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक भावभूमियाँ हैं और ये सभी लोकादर्श के विराट् लक्ष्य की प्रतिष्ठा से सम्बद्ध हैं।

विश्वकवि तुलसीदास ने विशाल रत्नाकर रामचरितमानस के अन्तर्गत रामानुरागी लक्ष्मण का जो चरित्र प्रस्तुत किया है, वह लोकादर्शवाद के धरातल पर सम्यक् रूप से प्रतिष्ठित हुआ है। लोकादर्शवाद का तात्पर्य है व्यक्ति के जीवन का वह कार्यकलाप जो लोक–मानस के लिये आदर्श की प्रतिष्ठा कर सके। अतएव हम गोस्वामी तुलसीदास की आदर्श कल्पना को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत अध्याय में यह विचार करेंगे कि तुलसी ने लक्ष्मण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चरित्र के माध्यम से लोकादर्शवाद की स्थापना किन रूपों में की है जो लोक–मानस के लिये आदर्श प्रेरणादायक सिद्ध हुआ है?

तुलसी–समाज और लक्ष्मण

सामान्यतः हम जिसे 'समाज' शब्द से अभिहित करते हैं, वह उसी मानव समुदाय का द्योतक है जिससे हमारे प्रतिदिन के कर्तव्याकर्तव्य की एक अखण्ड परम्परा चली आ रही है। इसके अन्तर्गत हमारी साधारण 'रहनि' से लेकर जिसमें खानपान, विचार–व्यवहार एवं विवाह–उद्वाह (व्याह–बरेखी) आदि का समावेश है, राजा तथा प्रजा के अधिकार एवं कर्त्तव्यों की भी अनुक्रमणिका का सन्निवेश हो जाता है। निःसन्देह गोस्वामीजी की सामाजिक चिन्तनधारा के परिचित होने के लिये हमें न्यूनाधिक मात्रा में इन सभी वस्तुस्थितियों का भी पर्यवेक्षण करना होगा।

जहाँ तक इस क्षेत्र में गोस्वामीजी की क्रान्तदर्शिता का प्रश्न है, हम प्रारम्भ में ही यह निवेदन कर देना चाहते हैं कि गोस्वामीजी का युग न तो साम्प्रतिक समाज की भाँति अत्यधिक प्रगतिशील ही था और न प्रतिक्रियावादी ही। सामाजिक जागृति का स्वरूप न तो इतना अधिक विप्लवकारी ही बन पाया था और न उसे तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों की सापेक्षता में ऐसा बनाया ही जा सकता था और न पूर्णतः उसका त्याग ही सम्भव था; क्योंकि मानव जिस समाज में रहकर काव्यसृष्टि करता है उस समाज का पूर्णतः बहिष्कार करना उसके लिये सम्भव नहीं होता। उसकी रचना में कुछ न कुछ तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण व्यक्त या अव्यक्त मन से हो ही जाता है।

गोस्वामीजी केवल समाज–सुधारक ही नहीं थे, वे तो मूलतः सन्त और सर्वोपरि एक महान् कलाकार भी थे। यही कारण है कि उनकी संस्कारमूलक विचारणा में हमें केवल बौद्धिक तथा सामाजिक सन्देशों की ही परिव्याप्ति नहीं दिखायी देती, प्रत्युत हमें यहीं उनके अमूल्य नैतिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक विचारों की प्रतिच्छाया भी स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। सच तो यह है कि उनकी सम्पूर्ण सामाजिक चिन्तनधारा के पीछे उनके नैतिक एवं धार्मिक विचारों की ही स्वस्थ पृष्ठभूमि का हमें दर्शन होता है। सिद्धवाणी के कलाकार होने के कारण उनके इन सन्देशों में हमें गद्य की परुषता का नहीं, अपितु उच्चकोटि की सूक्तियों की सरसता का ही आभास मिलता है और कहीं–कहीं तो इनमें हमें स्वाभाविक अलङ्करण की स्फूर्ति के भी प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऊपर निवेदन किया जा चुका है कि गोस्वामीजी केवल समाज–सुधारक ही नहीं थे; उनके व्यक्तित्व के निर्माण में उच्चकोटि के सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं कलात्मक तत्त्वों का भी समीकरण दिखायी देता है। यही कारण है कि उन्होंने अपनी समाज–सङ्घटनात्मक विचारणा के अन्तर्गत भी किसी न किसी रूप में "श्रुतिसम्मत हरिभक्ति पथ" के साथ ही धर्म एवं नीति के सोपानों का आश्रय ग्रहण करना चाहा है। समाज की विभिन्न इकाइयों के बीच पिता–पुत्र, माता–पुत्र, अग्रज–अनुज, गुरु–ब्राह्मण, गृही–विरक्त आदि के पारस्परिक सम्बन्धों को स्वीकार किया जाता है। अतएव गोस्वामीजी की सामाजिक संरचना को दृष्टि में रख कर यह विचार करना आवश्यक है कि सामाजिक सम्बन्धों के प्रति लक्ष्मण का कैसा व्यवहार था? जिसे हम आदर्श के धरातल पर प्रतिष्ठित कर सकते हैं।

पिता के प्रति— यह सर्वमान्य है कि रामचरितमानस का मूल स्रोत वाल्मीकीय रामायण है, तथापि लक्ष्मण–चरित्र के आदर्श स्थापन में जो सफलता गोस्वामीजी को प्राप्त हुई है वह महर्षि वाल्मीकि को नहीं। इसका कारण यह है कि वाल्मीकि की पात्र–कल्पना में नर–तत्त्व की प्रधानता है, उनका आदर्श विकसित "वीरयुग" का आदर्श है, जबकि गोस्वामी तुलसीदास की आदर्श चरित्र–योजना में "नरत्व" से अधिक "नारायणत्व" की छाप दिखायी देती है। साथ ही उनकी आदर्श परिकल्पना में सामन्त–युग के आदर्श का प्रतिबिम्ब भी दृष्टिगोचर होता है। वाल्मीकि की चरित्र–योजना में प्रकीर्ण अंशों में देवतत्त्व का समाहार होते हुए भी "यथार्थ–मानव" की मानवता का प्रभाव अपनी परिणति पर दिखायी देता है, किन्तु गोस्वामीजी की चरित्र–संसृति में आदर्शोन्मुख चित्रों की अतिमानवता का रङ्ग अधिक गहरा है। इस प्रसङ्ग के निरूपण में विशिष्ट रूप से "वाल्मीकि रामायण" के लक्ष्मण–चरित्र को दृष्टि में रखकर अपने मन्तव्य को पूर्णतः स्पष्ट करना अपेक्षित है।

कैकेयी की कुटिलता और दशरथ की विवशता से राम को वन जाना पड़ता है। परम सहयोगी लक्ष्मण उनके अनुगामी हैं। माता कौसल्या से आज्ञा लेने दोनों साथ पहुँचते हैं, किन्तु वहाँ आक्रोश में लक्ष्मण का पिता के प्रति दुर्वचन मानवोचित है। वाल्मीकि रामायण में उन्होंने अपने आक्रोश को अधोलिखित शब्दों में व्यक्त किया है—

"अत्यधिक वृद्धावस्था के कारण विषयासक्त, कामातुर और स्त्रीपरवश पिता की बुद्धि विपरीत हो गयी है।"[५]

किन्तु मानसकार ने रामचरितमानस के अन्तर्गत "राम–वनगमन"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के समय इस प्रकार के प्रसङ्गों को नहीं आने दिया। मानस में तो राम्–वनगमन का समाचार पाकर लक्ष्मण मौन–व्यथा से व्याकुल हो जाते हैं और उनकी सारी मनोव्यथा विधि–विधान को अटल मानकर ही संयत रह जाती है। अवसर की गम्भीरता का अनुभव करते हुए वे कुछ भी भला–बुरा नहीं कहते।[1] हाँ कालान्तर में भरत के चित्रकूटागमन–प्रसङ्ग में वे अवश्य अपने पिछले क्रोध के निराकरण की बात सहसा कह डालते हैं, किन्तु यह पिछला क्रोध भी पिता के प्रति न होकर मूलतः भरत पर ही केन्द्रित रहता है—

> आइ बना भल सकल समाजू। प्रकट करउं रिस पाछिल आजू।।
> जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू।।
> तैसेहिं भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउं खेता।।

इसके बाद राम को वन–पथ पर छोड़कर पुनः अयोध्या आते हुए सुमन्त्र से भी वाल्मीकीय रामायण में उन्होंने जिन अमर्षपूर्ण शब्दों का व्यवहार किया वह भी दोनों महाकाव्यों के आदर्शान्तर की दृष्टि से विचारणीय है। वाल्मीकि रामायण में विशेष रूप से कुपित होकर लक्ष्मण सचिव सुमन्त्र से कह बैठते हैं कि किस विशेष अपराध के परिणामस्वरूप राजपुत्र को निर्वासन दिया गया है। राजा ने कैकेयी के आवाञ्छनीय प्रभाव में आकर चाहे अच्छा या बुरा जो किया हो, किन्तु हम लोगों को आपत्तिग्रस्त होना ही पड़ा। विवेकाभाव में किया हुआ यह निषिद्ध कार्य अवश्य ही दुःखों का जन्मदाता होगा।[1] मानसकार ने इस प्रसङ्ग को अधिक सन्तुलन के साथ उपस्थित करने की चेष्टा की है। लक्ष्मण का इस मात्रा में आपे से बाहर होना मानसकार की दृष्टि में वाञ्छनीय नहीं था। राम के सच्चे सेवक होने के नाते अपने अमर्षपूर्ण क्षोभ की व्यञ्जना लक्ष्मण ने भी मानस में सुमन्त्र से की है।[1] किन्तु उस क्षोभ की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने वाली वास्तविक शब्दावली को गोस्वामीजी ने स्पष्ट नहीं किया। अपने अनूठे काव्य–कौशल से लक्ष्मण के चरित्र द्वारा आदर्श एवं यथार्थ का जैसा समन्वय इस प्रसङ्ग में तुलसीदास ने स्थापित किया है, वह उनकी समन्वयात्मक प्रतिभा का ही नहीं, अपितु उनकी उदात्त चरित्र–कल्पना का भी एक उत्कृष्टतम प्रमाण के रूप में दर्शनीय है।

माता के प्रति— वाल्मीकि रामायण और मानस दोनों काव्यों में लक्ष्मण का माता के वचनों के प्रति आदर और निष्ठा का भाव दरसाया गया है। रामायण में माँ से जब वे वन–प्रस्थान हेतु आज्ञा लेने पहुँचे तो माँ सुमित्रा ने उन्हें विदाई देते हुए आदेश दिया कि "बेटा! तुम राम के परमानुरागी हो,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुम वन में राम को अपना पिता और सीता को अपनी माता समझकर उनकी सेवा करना। वन को ही अयोध्या समझकर आनन्दित रहना। तुम्हारा वनवासी जीवन सुखी हो—यही मेरा तुम्हारे प्रति आशीष है।'

रामचरितमानस में राम की आज्ञा से जब लक्ष्मण वनप्रस्थान के लिये आदेश लेने माँ सुमित्रा के पास जाते हैं, तब उस समय माँ के हृदय की उदात्तता अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। ममतासुलभ माँ के हृदय में मोहयुक्त प्यार नहीं, अपितु त्याग का उच्चतम आदर्श दरसाया गया है। लक्ष्मण से माता सुमित्रा कहती हैं—

तात तुम्हारि मातु वैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहइं दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जौ पै सीय रामु वन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
——— ——— ——— ———
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥
——— ——— ——— ———
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुं इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम वचन करेहु सेवकाई॥

अर्थात् तुम स्वप्न में भी राग, क्रोध, ईर्ष्या, अभिमान आदि विकारों के वशीभूत न होना। समस्त विकारों का पूर्णतया परित्याग कर मनसा, वाचा, कर्मणा राम की सेवा में रत रहना, यही मेरी शुभकामना है। माँ की आज्ञा को शिरोधार्य कर लक्ष्मण अरण्य में राम के साथ जाते हैं और वहाँ अपनी माता के आदेशों को अक्षरशः पालन करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं—

सेवहिं लखनु करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥
छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लखन चितु बंधु मातु पितु गेहु॥

माँ के इस उच्चतम आदर्श का वर्णन गोस्वामीजी ने अपने अन्य ग्रन्थों में भी किया है। यथा—

जाइ चरन गहि आयसु जाँचों, जननि कहत बहुभाँति निहोरे।
सिय—रघुबर—सेवा सुचि ह्वैहो, तौ जानिहौं सही सुत मोरे॥
(गी०२/११)

गोस्वामीजी का अभीष्ट यह था कि भारतीय संस्कृति में पली हुई माँ का जितना पुत्र के प्रति स्नेह होता है उतना ही वे पुत्रों की कर्तव्यपरायणता के प्रति भी सजग रहती हैं। सुमित्रा के माध्यम से माँ के कर्त्तव्य को दरसाया गया है। पुत्र का कर्तव्य होता है कि माँ के प्रत्येक आदर्शवचनों का पालन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करना। लक्ष्मण के माध्यम से समाज में एक आदर्श पुत्र का माँ के प्रति क्या कर्त्तव्य होता है? उसे भलीभाँति दरसाकर आदर्श पुत्र का रूप प्रस्तुत किया है।

भ्राताओं के प्रति– रामचरितमानस में बाल्यावस्था से ही भ्राताओं के साथ लक्ष्मण का श्रेष्ठ व्यवहार दृष्टिगोचर होता है। गुरु वशिष्ठ के यहाँ शिक्षा प्राप्त करना, विद्या, विनय, गुण तथा शील में प्रवीण हों, राजोचित क्रीड़ाओं में भाग लेना, अवध की वीथियों में विहार करना, आखेट के लियें वन जाना, मृगों को मार कर पिता के पास लाना, भ्राताओं के साथ भोजन करना, माता–पिता की आज्ञा का अनुसरण करना तथा पुरवासियों की सेवा करना आदि इसके उदाहरण हैं। तथापि बड़े भ्राता राम के साथ लक्ष्मण का जो व्यवहार दृष्टिगोचर होता है वह उच्च आदर्श के धरातल पर अवलम्बित है। त्रिकालदर्शी विश्वामित्र की याचना पर यज्ञ–रक्षार्थ भ्राता राम का अनुगमन कर, विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करना, मिथिलानगर दर्शन की तीव्र लालसा होने पर भी भ्राता राम के भय तथा सङ्कोच से अपनी इच्छा व्यक्त न करना, पुष्पवाटिका के अन्तर्गत सीता के सौन्दर्य तथा प्रणय से आकृष्ट हो राम के बार–बार सम्बोधन करने पर भी लक्ष्मण का मौन रहना, योगिराज विदेह के "वीर विहीन मही मैं जानी" कहने पर लक्ष्मण का कुपित होना तथा सभा–मण्डप के मध्य जनक की भर्त्सना करते हुए भ्राता राम की प्रताप महिमा एवं गौरवमयी कीर्ति–पताका को फहराना, धनुर्भङ्ग के पश्चात् धनुर्भञ्जनकर्ता पर भृगुपति का भीषण कोप देख, भ्राता राम को निर्दोष सिद्ध करते हुए अपने व्यङ्ग्य वाक्यों द्वारा परशुराम को पराजित करना–उपर्युक्त प्रसङ्गों में भ्राता राम के प्रति लक्ष्मण की आदर्श भावना परिलक्षित होती है।

राम–वनगमनप्रसङ्ग में भ्राता के प्रति जो लक्ष्मण का आदर्श व्यवहार दृष्टिगोचर होता है, उसका निरूपण हम वाल्मीकीय रामायण के लक्ष्मण को दृष्टि में रख भलीभाँति कर सकते हैं। वाल्मीकीय रामायण में राम–वनगमन का समाचार सुन लक्ष्मण अत्यन्त क्रुद्ध हो उठते हैं तथा अवसरानुकूल अपना क्षोभ प्रदर्शन करते हुए अपने पिता के चरित्र की कटु आलोचना करते हैं। इतना ही नहीं, वे क्रोध की पराकाष्ठा पर पहुँच कर अनेक गर्वोक्तियों का भी प्रयोग करते हैं–

निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यदि स्थास्यति विप्रिये।।
भरतस्याथ पक्ष्यो वा यो वास्य हितमिच्छति।
सर्वांस्ताँश्च वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते।।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार भ्रातृवत्सल लक्ष्मण करणीयाकरणीय साधनों द्वारा अपने ज्येष्ठ भ्राता राम को सिंहासनारूढ़ कराने का निश्चय करके बलपूर्वक अवध के राज्य पर अपना अधिकार करना चाहते हैं। भ्रातृवत्सलता में पितृ–वध, भ्रातृ–वधादि सब कुछ करना उन्हें स्वीकार हो जाता है। इतना ही नहीं, उनकी अनन्यता और उनका आत्मबलिदान भी सराहनीय है। वे शपथ खाकर कहते हैं–

अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः।
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे॥
दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय॥[1]

देवि! भ्राता में मेरी भक्तिपूर्ण सच्ची प्रीति है। सत्य से, धनुष् से, दान से और इष्ट से तेरी शपथ खाता हूँ कि जलती हुई अग्नि में, वन में यदि राम जायेंगे तो तुम मुझे वहाँ पहले गया हुआ समझना। इस प्रसङ्ग में लक्ष्मण का भाई के प्रति निष्ठा, प्रेम तथा आज्ञापालक रूप प्रस्तुत है।

वाल्मीकि के राम–वनगमन के प्रसङ्ग में जहाँ लक्ष्मण के आक्रोशयुक्त विरोधात्मक रूप का प्रदर्शन कराया गया है, वहीं मानस में अत्यन्त मर्यादित रूप से आदर्श भ्रातृ–प्रेम का निरूपण किया गया है। मानस में राम–वनगमन का समाचार सुन लक्ष्मण व्यथित हो उठते हैं और उनके अन्तःकरण से पूर्णरूपेण भ्रातृप्रेम प्रस्फुटित हो उठता है। वेदप्रतिपादित सभी सांसारिक बन्धनों से पूर्णतः विरत हो तथा भ्राता राम को ही अपना सर्वस्व मान वे आदर्श भ्रातृ–प्रेम को प्रतिष्ठित करते हैं। इस प्रकार मानस के अनेक स्थलों पर लक्ष्मण में आदर्श भ्रातृ–प्रेम पूर्णतः परिलक्षित होता है।

सीता के प्रति– यद्यपि रामचरितमानस के अधिकांश प्रसङ्गों में सीता के प्रति लक्ष्मण की आदर्श भावना पूर्णतया परिलक्षित होती है, तथापि वाल्मीकि एवं मानस के लक्ष्मण को दृष्टि में रख सीता के प्रति लक्ष्मण की आदर्श भावना का निरूपण किया जायगा। मानस एवं वाल्मीकि रामायण की आदर्श स्थापना में कितनी अधिक असमानता है इसका भी उल्लेख किया जायगा। एक में यदि कठोर यथार्थवादी प्रवृत्ति की छाप है तो दूसरा उदात्त मानवोचित आदर्शवाद की ऊषा से अनुप्राणित है जिसमें यथार्थ की एकान्त अवहेलना नहीं की गयी है, अपितु उसका सच्चे अर्थों में उदात्तीकरण किया गया है। वाल्मीकि तथा मानस के अरण्यकाण्ड की एक घटना प्रस्तुत कर हम सीता के प्रति लक्ष्मण के आदर्श व्यवहार का चित्रण करेंगे। राम सीता की प्रेरणा से हेममृग के पीछे दौड़ रहे हैं। राम के बाणों से आहत होकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मारीच (कपट मृग) अन्तिम क्षणों में "राम" का मानसिक स्मरण करते हुए भी अपने लक्ष्य की सफलता के लिये "लक्ष्मण" का नाम उच्चस्वर से पुकारता है, जिसकी ध्वनि सीता के कानों में जा समाती है। और वे लक्ष्मण को राम के पास जाने का आदेश देती हैं। परन्तु लक्ष्मण राम के पास जाने में शिथिलता का प्रदर्शन करते हैं। अन्ततः उनके इस शैथिल्य का जो परिणाम निकला वाल्मीकि ने उसे यथार्थ मानवोचित गुणों के रूप में प्रकट किया है।[1] जिसे सुनकर लक्ष्मण को हार्दिक क्लेश होता है। वे कह उठते हैं—"भाभी! आपके ये कठोर शब्द मेरे कानों में तप्त लोहे की भाँति कष्टकारक हैं। मैं ऐसे कठोर वाक्यों को सह नहीं सकता"। सीता के प्रति कुछ कठोर वाणी भी उनके मुख से मुखरित हो उठती हैं, जैसे आपकी बुद्धि नष्ट हो गयी है।[1]

कहना न होगा कि मानसकार ने भी इस स्थल—विशेष की गम्भीरता का स्पष्ट रूप से अनुभव किया है, किन्तु यहाँ भी उसने यथार्थ के उदात्तीकरण द्वारा अपनी तत्सम्बन्धी अभिव्यक्ति को अधिक संयत और सुष्ठु रूप देने की चेष्टा की है। फलतः उसने यहाँ भी "मर्म बचन जब सीता बोला" की अभिव्यक्ति कराकर घटनाचक्र को सफलता के साथ आगे बढ़ा दिया है। एक भारतीय वीराङ्गना को इस प्रकार की विचार—कुत्सा के रोग से ग्रस्त दिखाना उनको अभीष्ट न था। साथ ही उन्हें यथार्थ के इस बीभत्स—स्वरूप पर भी आस्था न थी। भारतीय आर्या को वे जिस समुन्नतशील स्तर पर लाकर रखना चाहते थे, वाल्मीकि रामायण का यह प्रसङ्ग उससे ठीक विपरीत दिशा पर पड़ता था। इसलिये उन्होंने अपनी वस्तु—सङ्घटना के लिये इस तन्तु को भी लेने से निषेध कर दिया, किन्तु वह भी एक साधारण समीकरण के साथ "मर्म वचनों" की ऐतिहासिक तथ्यात्मकता को स्वीकार करते हुए। कदाचित् यही उनकी सामञ्जस्यविधायनी प्रतिभा—प्रभा का सबसे अधिक मार्मिक स्वरूप भी है।

रामचरितमानस के प्रस्तुत प्रसङ्ग में लक्ष्मण वाल्मीकि के लक्ष्मण के समान सीता के परुष वचन पर न तो क्षुब्ध हुए हैं और न उनकी आलोचना ही की है। यहाँ तो लक्ष्मण सीता की आज्ञा शिरोधार्य करते हैं—

बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू।।

अत्यन्त संयत भाव से सीता की आज्ञा का पालन करते हुए लक्ष्मण दिखलायी पड़ते हैं। यही कारण है कि गोस्वामीजी ने मानस में सीता के प्रति लक्ष्मण का एक मर्यादित प्रेम दरसाया है।

गुरु के प्रति— बाल्यकाल से ही सभी भ्राताओं का गुरु वशिष्ठ के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रति पवित्र अनुराग दृष्टिगोचर होता हैं। सर्वप्रथम हम देखते हैं कि चारों भ्राताओं के कुमार होने पर गुरु वशिष्ठ द्वारा यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न कराया जाता है। तत्पश्चात् ये सभी कुमार गुरु वशिष्ठ के गृह में शिक्षा प्राप्त करने जाते हैं, इस कथानक के माध्यम से कवि ने गुरु एवं शिष्य के प्राचीन परिपाटी का चित्रण किया है। साथ ही राम–लक्ष्मण की गुरु–भक्ति के माध्यम से कवि ने अपनी "गुरुपद पदुम परागा" वन्दना की परम्परा को पूर्णतः चरितार्थ कराकर दिखा दिया है। यद्यपि लौकिक धरातल पर कवि ने गुरु–शिष्य की परम्परा का निर्वाह विशेष प्रकार से कराया है, तथापि इस प्रसङ्ग के निरूपण में राम के परम ब्रह्मत्व का प्रतिपादन करना भी कवि का उद्देश्य था। इस कथानक के चित्रण में कवि ने ईश्वर के ऐश्वर्य तथा माधुर्य–दोनों रूपों का निरूपण किया है—

गुरु गृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल विद्या सब आई।
जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।।

यह तो हुआ राजगुरु अथवा कुलगुरु के साथ राम–लक्ष्मण का व्यावहारिक आदर्श। दूसरी ओर शिक्षा–गुरु के साथ भी हम देखते हैं कि गोस्वामीजी ने अपनी उपर्युक्त आदर्शभावना को ही प्रतिफलित होते देखना चाहा है। गोस्वामीजी की यह आदर्श भावना हमें विश्वामित्र के साथ राम–लक्ष्मण के आदर्श व्यवहार को देखने से प्राप्त होती है। विश्वामित्र की याचना पर यज्ञ–रक्षार्थ लक्ष्मण राम के साथ प्रस्थान कर विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हैं।

लक्ष्मण–चरित्र में गुरु के प्रति चरमादर्श की उपलब्धि हमें उस अवसर पर होती है, जब मिथिलानगर–दर्शन के पश्चात् लक्ष्मण राम के साथ लौटकर विश्वामित्र के पास आते हैं तथा विश्वामित्र के शयन करने पर लक्ष्मण राम के साथ उनका चरण दबाते हैं। इस प्रसङ्ग के निरूपण में भी गोस्वामीजी राम–लक्ष्मण के ऐश्वर्य रूप का प्रतिपादन करना नहीं भूलते, अतएव राम–लक्ष्मण के ईश्वरत्व का परिचय पाठक को कराते हुए कहते हैं—

जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी।।
तेइ दोऊ बन्धु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते।।

तात्पर्य यह है कि इस प्रसङ्ग के अन्तर्गत विश्वामित्र के प्रति दिखायी देने वाली राम के साथ लक्ष्मण की शील–सङ्कोचपूर्ण आज्ञाकारिता, सेवापरायणता तथा भक्ति–भावना का चित्रण कवि की केवल कल्पना का विलासमात्र नहीं है, अपितु गुरु के प्रति आदर्श व्यवहार का सुदृढ़ प्रमाण है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहाँ हमें लक्ष्मणचरित्र में लोकादर्शवाद की पूर्ण अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है।

ब्राह्मण के प्रति— ब्राह्मण को भी गोस्वामीजी ने गुरु के समकक्ष ही स्थान दिया है। वह भी गुरु की भाँति ही मनसा स्मरणीय है। रणाङ्गण में रथारूढ़ राम रावण के वध हेतु प्रस्थान करते समय विप्रचरण का स्मरण करते हैं तथा रावण को पराजित करने के बाद जब राम पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर अवध की ओर चलना चाहते हैं तब वे सबसे पहले विप्र–चरणों की मानसिक वन्दना करना नहीं भूलते। रामचरितमानस महाकाव्य में लङ्काकाण्ड के अन्तर्गत राम के द्वारा "कवच अभेद विप्र गुरु पूजा" की जो अभिव्यक्ति गोस्वामीजी ने विभीषण के प्रति करायी है, वह गुरु एवं ब्राह्मण के समकक्ष स्थिति का ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। अन्तर केवल इतना ही है कि मानस में रूढ़ि का अनुसरण तथा अतिशयता का स्पर्श, ब्राह्मणपक्ष में अपेक्षाकृत कुछ अधिक दिखायी देता है। इसी से हम देखते हैं कि अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत शोचनीय वस्तुओं की पंक्ति में ब्राह्मण की अवमानना को भी परिगणित करते हुए गुरुदेव वशिष्ठ कहते हैं—

सोचिय सूद्र विप्र अवमानी।

राम का कथन है कि—

मोहि न सोहाय बिप्र कुल द्रोही।

इसके अतिरिक्त भरत ने जिन शपथों द्वारा कैकेयी के कुचक्र से अपनी एकान्त तटस्थता एवं अनभिज्ञता का परिचय देना चाहा है उसमें भी उन्होंने "महिसुरपुर" के प्रदाह की अपराधजन्य गुरुता को पूर्णरूप से स्वीकार किया है।

अब हमें यह देखना है कि ब्राह्मण के प्रति लक्ष्मण की कैसी भावना थी, कि जिसके माध्यम से कवि ने लोकादर्श की स्थापना करने का प्रयत्न किया है। इसके लिये परशुराम के प्रति कही हुई लक्ष्मण की शब्दावलियों पर विचार करना आवश्यक होगा। धनुर्भङ्ग के पश्चात् परशुराम के कोप करने पर लक्ष्मण अपने कुलादर्श को दृष्टि में रख परशुराम से कहते हैं कि आपके यज्ञोपवीत को देख मैं अपने को शान्त कर रहा हूँ; क्योंकि ब्राह्मण पर पुरुषार्थ दिखाना हमारी वंश–परम्परा के विपरीत है। ब्राह्मण के वध से पाप तथा पराजय से अपकीर्ति होती है। अतएव यदि आप मुझे अपने परशु–प्रहार का लक्ष्य बनाएं तो भी मैं आपके चरणों में नत रहूँगा; क्योंकि आप ब्राह्मण होने के नाते मेरे पूज्य हैं। स्वभावतः आपके प्रति मेरे मन में सम्मान का भाव निहित है, जिसके कारण मैं आप पर अपना पुरुषार्थ नहीं दिखा सकता। जब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्ष्मण के इस कथन से परशुराम शान्त न हुए, अपितु विशेष क्रुद्ध हो उठे तब लक्ष्मण परशुराम से पुनः कहते हैं कि हे नृपद्रोहिन्, ब्राह्मणत्व का विचार कर मैं तुम्हारा वध नहीं कर पा रहा हूँ जिसके परिणामस्वरूप तुम मुझे बार–बार परशु दिखला रहे हो–

सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरें कुल इन्ह पर न सुराई।।
बधें पापु अपकीरति हारे। मारत हूँ पा परिअ तुम्हारे।।
— — — — — — — — — — — —
भृगुवर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचउं नृपद्रोही।।

इस प्रसङ्ग के माध्यम से गोस्वामी जी ने यह दिखलाने का प्रयास किया है कि ब्राह्मण अवध्य एवं पूज्य होता है। सृष्टि के प्रारम्भ से आज तक उसके प्रति लक्ष्मण की आदर्शभावना का निरूपण कर ब्राह्मण के प्रति आदर्श की प्रतिष्ठा की है।

रामचरितमानस के लक्ष्मण का चरित्र सम्पूर्ण आदर्श लोकाचार से परिपूर्ण है। ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, गुरुजन, पुरवासी, वनवासी सभी के प्रति उनके हृदय में प्रेम और आदर के भाव निहित हैं। समाज में सबसे प्रतिष्ठित स्थान मुनियों का था और लक्ष्मण ने मुनियों को अधिकाधिक सम्मान दिया। स्वयं नारद के आने पर उनका पद–प्रक्षालन करते हैं, यह उनके हृदय में ऋषियों के प्रति अन्तर्निहित सम्मान का द्योतक है–

स्वागत पूछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे।।

समाज में गर्हित जीवन–यापन करने वाले व्यक्तियों के प्रति भी उनके हृदय में प्रेम है। छोटी जाति के निषाद को विषादयुक्त देखकर लक्ष्मण उसे अपना सखा स्वीकार कर लेते हैं और राम के ब्रह्मत्व का स्वरूप समझाकर मन, कर्म और वाणी से उनसे अनुराग करने की शिक्षा देते हैं। यह उनके हृदय में स्थित विशाल "वसुधैव कुटुम्बकम्" की निहित भावना का प्रतिफल है–

सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू।।
— — — — — — — — — — — —
सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू।।

यहीं रामतत्त्व निरूपण करने वाले उनके वचन उल्लेखनीय हैं–

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा।।
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा।।

शरणागत के प्रति आत्मीयता का भाव रखना प्राचीन भारतीय आदर्श है। लक्ष्मण के हृदय में इस भावना के प्रति कितनी निष्ठा है, उसका स्पष्टीकरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किष्किन्धा में हो जाता है। राज–पद पाकर सुग्रीव अपने कर्त्तव्यों से च्युत होता है और राम को भूल जाता है। राम के आदेश से क्रोधाग्नि से दग्ध लक्ष्मण सुग्रीव को दण्डित करने के उद्देश्य से किष्किन्धा पहुँचते हैं, लेकिन अङ्गद के शरण में आते ही उनके क्रोध की समग्र ज्वाला शीतलता में परिणत हो जाती है और अङ्गद को वे अभयदान देते हैं। सम्पूर्ण मानस में लक्ष्मण द्वारा अभयदान केवल अङ्गद को ही प्राप्त होता है। इस प्रसङ्ग के माध्यम से रामचरितमानस में लक्ष्मण के चरित्र की आदर्श भावना को बहुत ही उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है। क्रुद्ध लक्ष्मण का स्वरूप अवलोकनीय है—

धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउं पुर छार।

इस प्रकार लक्ष्मण को क्रुद्ध देख किसी का साहस उनके समक्ष आने का नहीं हुआ, स्वयं सुग्रीव भी उनके समक्ष उपस्थित नहीं हो सका और तब

व्याकुल नगर देखि तब आयऊ बालिकुमार।।

अङ्गद आकर विनय करता है जिससे लक्ष्मण का क्रोध शान्त हो जाता है—

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्हीं। लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्हीं।

वाल्मीकि रामायण अध्यात्म रामायण आदि ग्रन्थों में लक्ष्मण का क्रोध सुग्रीव के प्रति अपनी चरम सीमा पर दरसाया गया है तथा सुग्रीव के प्रति वे दुर्वचन का प्रयोग करते हुए भी पाये गये हैं, परन्तु रामचरितमानस में सुग्रीव को शरणापन्न देखकर, तथा उसके हृदय की स्वच्छता पर मुग्ध होकर उसे हृदय से लगा लेते हैं जो रामचरितमानस के लक्ष्मण–चरित्र की अपनी विशेषता है—

तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा।।

निष्कर्ष यह कि रामचरित के अन्तर्गत लक्ष्मण–चरित्र की जो रेखाएँ उभरती हैं, जो पक्ष प्रकाशित होते हैं, उन सबके मूल में महाकवि के लोकादर्श की प्रेरणा ही गतिशील है। रामचरितमानस में चरित्रों की विविधता है और यह विविधता कल्पनाजन्य नहीं है, अपितु महाकवि के जीवनानुभव की समृद्धि से सम्बद्ध है। तुलसीदास ने युग–जीवन, परम्परा और भविष्य—सबको ध्यान में रखते हुए मानवीय मूल्यों के प्रति अपनी गहरी निष्ठा को इन चरित्रों के माध्यम से सन्तुलित एवं समन्वित रूप में आकार देने का स्तुत्य प्रयास किया है। चरित्र रचनाकार की नियति, मनीषा एवं प्रतिपाद्य जीवन–बोध को आकार देने के सफल माध्यम होते हैं। प्रत्येक रचनाकार अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चरित्रों के माध्यम से अपने मानससत्य को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करता है। इस प्रयास में सभी को अभूतपूर्व सफलता नहीं मिलती। वही चरित्र–विधान विश्वसनीय एवं प्रेरणाप्रद होता है जो एक साथ ही रचनाकार के मन्तव्य को भी उद्घाटित करे तथा अपने निजी स्वरूप की भी रक्षा कर सके। प्रायः होता यह है कि कहीं तो चरित्र रचनाकार की भावानुभूति एवं विचार–सरणि के अभिव्यक्तीकरण के केवल स्थूल माध्यममात्र बनकर रह जाते हैं, कहीं यदि रचनाकार तटस्थ एवं निःसङ्ग हुआ तो उसके अधिकार–क्षेत्र से बाहर चले जाते हैं। दोनों ही अतिवादी स्थितियाँ हैं।

महाकवि तुलसीदास जैसा समर्थ एवं सजग रचनाकार इन स्थितियों से मुक्त है तो कोई आश्चर्य नहीं। उनके प्रायः सभी चरित्र अपना वैशिष्ट्य रखते हुए अपनी निजता और अपने व्यक्तित्व की गरिमा को बचाते हुए महाकवि के जीवनादर्श, लोकादर्श आदि की सशक्त अभिव्यक्ति में सहयोगी बन सके हैं। आलोच्यचरित्र लक्ष्मण अपनी सामाजिक भूमिका सभी सम्बन्धों के प्रति सहज प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए वही करते हैं, जो उनका अभीष्ट है और स्वयं रचनाकार का अभीप्सित है। लक्ष्मण युवा हैं, प्रतिक्रियाएँ, अन्तर्द्वन्द्व सभी उसी परिधि के अन्तर्गत हैं, फिर भी उनके जीवन एवं व्यक्तित्व का जो विराट् लक्ष्य है और लक्ष्य से जोड़ने वाली जो प्रेरणादायक चेतना है उससे निरन्तर निर्देशित एवं नियमित होते हैं। निर्देशन एवं नियमन की पद्धति उपदेशात्मक नहीं है, अपितु कर्म–सौन्दर्य के विविध पहलुओं से निरन्तर सम्बद्ध हैं। उनका व्यक्तित्व बहुत ही भरा पूरा है। उनसे लोकमानस जो अपेक्षा करता है उसको वे सहज ढंग से चरितार्थ करते हैं। अपनी किसी प्रतिक्रिया से वे चौंकाते नही हैं, अपितु जो कुछ सम्भाव्य है उसे इस तरह से पूर्ण करते हैं कि जनसामान्य सुख–दुःख के क्षणों में उन पर विश्वास कर सके। उनके चरित्र में अलौकिकता का अंश कम नहीं है, परन्तु जीवनक्षेत्र में सबको व्यावहारिक रूप दे देने के कारण वे असामान्य धरातल से उभर कर विश्वसनीय बन जाते हैं। लक्ष्मण के चरित्र की सभी रेखाएँ सभी सम्बन्ध अनुप्रेरक हैं। समाज को सीखने और अनुकरण करने के लिये लक्ष्मण के चरित्र में बहुत कुछ है। लक्ष्मण कहीं भी यह सोचकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते कि वे लोक में, समाज में कीर्त्ति और यश अर्जित कर सकें। उनमें किसी तरह का मोह (अहमियत) नहीं है, अपितु यह सब कुछ सहज ढंग से सम्पन्न होता है। लोकादर्श की भावभूमि में महाकवि तुलसीदास स्थित हैं और इसी स्थिति का परिणाम है कि उनके अज्ञात रूप से चरित्र इस केन्द्र से आबद्ध हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्ष्मण का धार्मिक पक्ष

तुलसी का धर्मादर्श और लक्ष्मण— महाकवि तुलसीदास की दृष्टि में धर्म केवल कर्त्तव्य कर्म या आचारसंहिता का ही वाचक नहीं है, वह सम्पूर्ण जीवनदर्शन के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्ष का निर्देशक है। लौकिक तथा पारलौकिक जीवन में जीव के अभ्युत्थान से सम्बन्ध रखने वाले सभी विधि, निषेध उसकी परिधि के अन्तर्गत हैं। इसलिये तुलसीदास ने धर्मरथ–वर्णन, सज्जन–धर्म–निरूपण आदि प्रसङ्गों में दर्शन, भक्ति, आचार आदि से सम्बद्ध अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि करने वाले शारीरिक एवं अन्तःकरणसम्बन्धी सभी साधनों का निरूपण किया है। मानस के अन्तर्गत कवि ने धर्मचर्चा के विविध प्रसङ्गों में सभी कर्त्तव्य कर्मों की गणना की है। उनकी दृष्टि में भजन, विज्ञान, ज्ञान, विवेक, बुद्धि, योग, समता, सन्तोष, दम, धैर्य, वैराग्य, यम, नियम, जप, तप, व्रत, तीर्थस्थान, सत्य, शील, शौर्य, बल, क्षमा, दया, कृपा, अहिंसा, परोपकार, दान, यज्ञ, सुर–गुरु, विप्र–धेनु–सेवा आदि सभी धर्म के अङ्ग हैं।

मनु ने धर्म की चर्चा करते हुए मनुस्मृति के अन्तर्गत धर्म को दस लक्षणों से युक्त स्वीकार किया है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ *(मनु०, ६/९२)*

यद्यपि तुलसीदास ने मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म–सिद्धान्तों का ही विशेष रूप से अनुसरण किया है, तथापि अपने व्यापक पाण्डित्य एवं कुशाग्र बुद्धि द्वारा धर्म के जितने विविध रूपों का निरूपण रामचरितमानस में किया है, वह उनकी अलौकिक प्रतिभा का परिचायक है। तुलसी की धर्मसम्बन्धी मान्यता किसी समाज अथवा सम्प्रदायविशेष की सीमा से आबद्ध नहीं है। अपितु उनकी व्यापक धर्म–परिकल्पना के अन्तर्गत गृह–धर्म से लेकर विश्व–धर्म तक के विविध रूपों का दर्शन हमें अबाध रूप से होता है।

महाकवि तुलसीदास के उपास्य राम भी धर्मरक्षार्थ ही अवतरित होकर धर्म के विविध रूपों की रक्षा करते हैं—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

तात्पर्य यह है कि कवि की दृष्टि में राम विविध धर्मों के आगार तथा धर्मपालक हैं— "धर्म सेतु पालक तुम त्राता"।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि तुलसीदास के राम पूर्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धर्मस्वरूप हैं। राम के लीला–क्षेत्र के अन्दर धर्म के विविध रूपों का प्रकाश उन्होंने देखा है। धर्म का प्रकाश अर्थात् ब्रह्म के सत्स्वरूप का प्रकाश इसी नामरूपात्मक व्यक्त जगत् के बीच होता है।[33]

तुलसी ने अपने धर्म को इतनी अधिक विशालता प्रदान की है कि तत्कालीन प्रचलित शैव एवं वैष्णव सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित कर राम को शिवभक्त और शिव को रामभक्त दरसाकर तत्कालीन धार्मिक वैषम्य शान्त कर धर्मादर्श की प्रतिष्ठा की है। मानवतावादी तुलसी ने सर्वाधिक महत्त्व साधारण धर्म को दिया है। यह दूसरी बात है कि साधारण धर्म का विस्तृत निरूपण करते समय वे वर्णाश्रमधर्म अथवा भागवतधर्म का भी सन्निवेश किये विना नहीं रहते। इसका कारण यह है कि वे सामान्य धर्म को अन्य धर्मों से सर्वथा पृथक् नहीं मानते। उसी प्रकार अन्य धर्मों का निरूपण करते समय भी उन्होंने मानवधर्म की निबन्धना की है।

तथ्य यह है कि उनकी दृष्टि में वर्णाश्रमधर्म के विना मानवधर्म का और मानवधर्म के विना वर्णाश्रमधर्म का कोई मूल्य नहीं है। ''धर्ममय रथ'' इसका उत्कृष्टतम उदाहरण है।

मनु ने धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध को साधारण धर्म बतलाया है, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। धर्म की व्यापकता को दृष्टि में रख तुलसी ने धर्म के चार चरणों का निरूपण किये हैं—

प्रगट चारि पद धर्म के, कलि महुं एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें, दान करइ कल्यान।।

तात्पर्य यह है कि भगवान् धर्म की वृषभरूप में कल्पना की गयी है और इसी आधार पर धर्म को चतुष्पाद कहा गया है। उसके चार पाद क्या हैं? भागवतकार ने सत्य, दया, तप तथा दान को धर्म के चार पाद माने हैं। मनु के तप, ज्ञान, यज्ञ और दान को धर्म के चार पाद बतलाते हुए कलियुग में दान को विशेष रूप से प्रतिपादित किया है ''दानमेकं कलौ युगे'' (मनु०, १/८६)। इससे प्रमाणित होता है कि तुलसी को उन्हीं का मत मान्य है।

गोस्वमी तुलसीदास की दृष्टि में सर्वत्र भक्ति की प्रधानता परिलक्षित होती है। उनकी भक्तिभावना में ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों का योग है। पर धर्म का योग पूर्ण परिमाण में दृष्टिगोचर होता है। धर्मभावना का उनकी भक्तिभावना से नित्य सम्बन्ध है।

धर्म के स्वरूप की उच्चता उसके लक्ष्य की व्यापकता के अनुसार समझी जाती है। अतएव तुलसीदास के धर्मादर्श के सम्बन्ध में यह विचार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करना नितान्त आवश्यक है कि तुलसी के धर्म की व्यापकता कितनी विशाल थी, जो लोकमानस को धर्म की व्यापक प्रेरणा प्रदान कर सकी!

अब हम तुलसी के विशाल लक्ष्य को दृष्टि में रख रामचरितमानस में निरूपित धर्म के विविध रूपों का सर्वेक्षण करेंगे।

धर्म के विविध रूप— रामचरितमानस में महाकवि ने धर्मसम्बन्धी अपनी धारणा को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

१. सेवाधर्म

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरमु कठिन जगु जाना।।[१]

२. स्वामिधर्म

स्वामि धरम स्वारथहि विरोधू। बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू।।[१]

३. जीवधर्म

हरष विषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना।।[१]

४. कवचधर्म

धर्म वर्म नर्मद गुण ग्राम:। संतत शं तनोतु मम राम:।।[१]

५. भूपधर्म

भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने।।[१]

६. स्त्रीधर्म

करेहु सदा संकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा।।[१]

७. युगधर्म

निज जुग धर्म होंहि सब केरे। ह्रदयं राम माया के प्रेरे।।[१]

८. कालधर्म

कालधर्म नहिं व्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति-जाही।।[१]

९. वेदधर्म

जन रंजन भंजन खल ब्राता। वेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता।।[१]

१०. वर्णधर्म

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी।।[१]

११. वर्णाश्रमधर्म

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।[१]

१२. राजधर्म

राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माहं मनोरथ गोई।।[१]

१३. अहिंसा परमो धर्मः

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा।।[१]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१४. परोपकार परमधर्म

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा।।[1]

१५. पय परमधर्म

परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई।।[1]

१६. सकल धर्म

जौ न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को।।[1]

१७. चार चरणों से युक्त धर्म

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।।[1]

१८. विरति का स्रोत धर्म

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद वेद बखाना।।[1]

१९. धर्मगति

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु वानी।।[1]

२०. धर्मसार

समुझब कहब करब तुम जोई। धरम सारु जग होइहि सोई।।[1]

२१. धर्मदल

नित नव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना।।[1]

२२. धर्मतड़ाग

धरम तड़ाग ग्यान विग्याना। ए पंकज विकसे विधि नाना।।[1]

२३. धर्मरथ

सखा धर्ममय अस रथ जाकें।.जीतन कहं न कतहुं रिपु ताकें।।[1]

२४. पुरुषार्थचतुष्टय के रूप में धर्म

अरथ धरम कामादिक चारी।[1]

२५. धर्मसेतु

धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिवस सेवक सुखदाता।।[1]

२६. तामस धर्म

तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान।।[1]

२७. निजधर्म

अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुं निज धरम न डोले।।[1]

२८. धर्मव्रत

नरसहस्र महं सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धरम ब्रतधारी।।[1]

२९. धर्मशील

धर्मशील कोटिक महं कोई। विषय बिमुख बिराग रत होई।।[1]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

३०. सत्य धर्म

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना।।[१]

३१. शुभ धर्म

जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा।।[१]

३२. परहित धर्म

परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।[१]

यह तो हुई राचरितमानस में निरूपित तुलसीदास के धर्मादर्श की व्यापक परिकल्पना। अब हमें यह देखना है कि महाकंवि तुलसी ने लक्ष्मण–चरित्र के माध्यम से मानस में धर्म के किन–किन स्वरूपों की प्रतिष्ठा करायी है, जो लोकमानस को धर्मादर्श की प्रेरणा प्रदान करते हैं?

सामाजिक धर्म के परिप्रेक्ष्य में लक्ष्मण का आदर्श— यह पूर्व में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि धर्म–रक्षार्थ ही राम ने लीलाशरीर धारण किया था। तुलसीदास के राम स्वयं नहीं, अपितु अपने अंशों के साथ अवतरित हुए थे और उन्होंने धर्म की स्थापना की। राम द्वारा सामान्य धर्म, लक्ष्मण द्वारा विशेष धर्म, भरत द्वारा विशेषतर धर्म और शत्रुघ्न द्वारा विशेषतम धर्म की प्रतिष्ठा हुई है। तुलसीदास के राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न ने अपने–अपने इन स्वीकृत धर्मों का आचरण करके लोक में धर्मादर्श की स्थापना की है।

सामान्य धर्म उसे कहते हैं जिनका करना सबके लिये अनिवार्य होता है। जैसे— गुरुजनों की आज्ञा का पालन, स्वजनों के साथ मृदुल व्यवहार तथा पितृ–कर्मादि गृहस्थों के कर्त्तव्यों का पालन करना। इस सामान्य धर्म के द्वारा सकामता से लौकिक सुख एवं स्वर्गादि और निष्कामता से परम्परया ज्ञानोपासना द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। जनकजी ने इसी कर्मयोग से ज्ञान की परमावस्था प्राप्त की है। यथा—

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:।[२]

विशेष धर्म 'अनन्य भाव से ईश्वर शरणागति' को कहते हैं। इसमें भक्त माता, पिता आदि समस्त सम्बन्धियों द्वारा चर–अचर जगत् में व्याप्त एक ईश्वर को ही अपना सर्वस्व मान उसके चरणों में आत्मसमर्पण कर एकमात्र उसी की उपासना करता है। इस निष्ठा में भक्त सामान्य धर्म को पालनीय और विशेष धर्म को अवश्य पालनीय मानता है। जहाँ दोनों में विरोध पड़ जाता है, वहाँ सामान्य धर्म की उपेक्षा कर विशेष धर्म को सम्पन्न करता है, विशेष धर्म में न्यूनता नहीं आने देता। इसे आर्त्त–प्रपत्ति–निष्ठा भी कहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेषतर धर्म वह है जिसमें मुमुक्षु ईश्वर की आज्ञा मानकर प्रारब्ध भोग करता हुआ ईश्वर परतन्त्र एवं जगत् से निर्लिप्त बर्ताव रखता हुआ ईश्वर की अनन्य भाव से उपासना करता है। इसे दृप्त–प्रपत्ति–निष्ठा भी कहते हैं।

विशेषतम धर्म 'भागवत–निष्ठा' को कहते हैं। यहाँ लक्ष्मण के विशेष धर्मनिष्ठा की चर्चा ही प्रतिपाद्य है।

रामचरितमानस के अन्तर्गत शिशु अवस्था से ही राम के चरणों में लक्ष्मण की अनन्य निष्ठा दृष्टिगोचर होती है।

बालपन से ही लक्ष्मण ने राम को अपना स्वामी स्वीकार कर अपने को सेवक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। प्रारम्भ से ही लक्ष्मण में सेवाव्रत का स्वरूप परिलक्षित होता है, जो विश्वामित्र की यज्ञरक्षा से प्रारम्भ होकर विवाह तक परिवर्धित होता रहता है।

सेवाव्रत का पूर्ण परिपाक तो हमें लक्ष्मण में राम–वनगमन के समय अपनी चरमावस्था में दृष्टिगत होता है। अपने स्वामी के विरह का आभास होते ही उनकी दशा विलक्षण हो गयी तथा उनकी स्थिति प्रेम के चरमतम प्रतीक चातक एवं जलविहीन मीन की भाँति हो गयी एवं उनकी छहों इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। उन्होंने प्रेमाधिक्य के कारण व्यथित हो प्रभु चरणों को पकड़ लिया। उनमें अनेक सात्त्विक भावों का उदय हो गया। कण्ठ अवरुद्ध हो गया, कुछ कह भी न सके, पर उनकी भक्त–मुद्राओं ने उनके रोम–रोम को वाचाल दरसा दिया–

समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए।।
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा।।
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल तें काढ़े।।

वाल्मीकि रामायण में भी लक्ष्मण की यही अवस्था होती है–

न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव।
मुहूर्त्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याविवोद्धृतौ।।[१]

विशेष धर्म के साथ–साथ लक्ष्मण सामान्य धर्म का पालन भी किया करते थे, परन्तु जब देखा कि सामान्य धर्म, विशेष धर्म के पालन में बाधक हो रहा है तब उसका पूर्णतया परित्याग कर विशेष धर्म–पालन में कटिबद्ध हो गये। लक्ष्मण की यह स्थिति देख राम ने सोचा कि देह–गेह की ममता त्याग कर मेरे साथ प्रस्थान करने का इन्होंने निश्चय कर लिया है, तब धर्मधुरीण राम अपने सामान्य धर्म की दृष्टि से उस धर्म की प्रशंसा करते हुए इन्हें (लक्ष्मण को) उस पर आरूढ़ रहने की शिक्षा दी, परन्तु वहाँ तो राम की सामान्य धर्म शिक्षा का प्रभाव भी आकुलतावर्द्धक ही हुआ। प्रेम–परिप्लुत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हृदय ने अपनी वास्तविकता अपने स्वामी के समक्ष रख दी। प्रभु–प्रेम के समक्ष सामान्य धर्म की उपेक्षा करते हुए, प्रभु चरणों में नत हो, लक्ष्मण कहते हैं कि "धर्म की धुरा को धारण करनेवाला ही निगम–नीति का अधिकारी हो सकता है; परन्तु मैं तो आप के स्नेह से प्रतिपालित मरालवत् हूँ। अतः सामान्य धर्म का पालन मेरे द्वारा किस प्रकार सम्भव हो सकता है! कीर्ति, ऐश्वर्य तथा सुगति की कामना करने वाले को ही आप का सामान्य धर्म प्रभावित कर सकता है। मुझे तो आपके चरणों के अतिरिक्त सांसारिक तथा पारलौकिक किसी भी वस्तु की कामना नहीं है।

अतः मुझे विशेष धर्म में रत रहने की आप आज्ञा प्रदान करें; क्योंकि इस चर–अचर में एक मात्र आप ही मेरे सर्वस्व हैं।" अविचल शरणागत अनन्य प्रेम के आगे प्रभु के समस्त तर्क स्तब्ध हो गये। परिणास्वरूप अपने अनन्य प्रेमी लक्ष्मण को विशेष धर्म में रत रहने के लिये उन्हें आज्ञा प्रदान करनी पड़ी।

नरबर धीर धरम धुर धारी। निगम नीति कहुं ते अधिकारी।।
मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला।।
— — — — — — — — — — — —
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।।
— — — — — — — — — — — —
मांगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई।।

उपर्युक्त प्रसङ्ग से यह स्पष्ट होता है कि जो माता–पिता आदि एवं चराचर जगत् के बदले एकमात्र राम को ही अपना परम हितैषी मानकर और लोक में कीर्ति–ऐश्वर्य तथा परलोक में मोक्ष तक की वासना का त्याग कर केवल राम–स्नेह चाहता है; वही विशेष धर्म का अधिकारी है।

वह विशेष धर्म में बाधक होने पर सामान्य धर्म का त्याग भी कर सकता है और उसे सामान्य धर्म के फलस्वरूप ऋणत्रय शोधन की भी आवश्यकता नहीं रहती। यह भाव भागवत के इस श्लोक से स्पष्ट होता है—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां
न किङ्करो नायमृणी च राजन्!
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्त्तुम्।।[२७]

विनयपत्रिका के इस पद से भी तुलसी का यही भाव परिलक्षित होता है—

जाके प्रिय न राम बैदेही।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सो छाँड़िए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।।

लक्ष्मण की विशेष धर्मनिष्ठा को ही महाकवि तुलसीदास ने विशेष धर्म का पर्यायी "परम धर्म" के रूप में निरूपित किया है—

सत्य—संध, सत्यब्रत, परमधरमरत, निरमल करम बचन अरु मन के।

इस प्रकार रामचरितमानस में सेवक—सेव्यभाव के धरातल पर लक्ष्मण के सेवा—धर्म की प्रतिष्ठा हुई है। तुलसी ने लक्ष्मण—चरित्र के माध्यम से सर्वत्र सेवक—सेव्यभाव की महत्ता दिखलायी है—

सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि।

तुलसी के इस सिद्धान्त पर ही लक्ष्मण—चरित्र पूर्णरूप से विकसित होकर सेवा धर्म को प्रतिष्ठित कर सकता है। यद्यपि मानस में विविध धर्मों का निरूपण हुआ है, तथापि तुलसी ने सेवक—सेव्यधर्म को ही सभी धर्मों का मूल माना है। इसलिये मानस में प्रयुक्त है—

सब तें सेवक धरम कठोरा।

पुनश्च—

स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू।

तात्पर्य यह है कि सेवक—सेव्यभाव ही साधना की भूल भित्ति है। स्वभाव से ही स्वस्वामि—भाव सम्बन्ध ईश्वर और जीव में सिद्ध है। स्व—स्वामिभाव सम्बन्ध ही सब सम्बन्धों का मूल है। अवयवावयवी, आराध्याराधक, प्रतियोग्यनुयोगी, विशेषणविशेष्य भावादि अन्यान्य सम्बन्ध इसी के अवान्तर भेद हैं। स्वस्वामिभाव, तथा सेवक—सेव्यभाव एक ही वस्तु है। मैं उसका हूँ, वह मेरा है, मैं वही हूँ। "तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा" इन भावों से जो साधना की जाती है, उसका मूल भी सेवक—सेव्यभाव ही हैं। समस्त प्रपञ्च ईश्वर का शरीर है, ईश्वर शरीरी है, यथा "यस्य पृथिवी शरीरं जगत् सर्वं शरीरं ते।" शेष शेषी का, शरीर शरीरी का तथा अंश अंशी का दास माना जाता है। लक्ष्मण की स्वामिभक्ति इसी सेवक—सेव्यभाव का प्रतिरूप है। वनगमन के पूर्व सुमित्रा द्वारा दिये गये लक्ष्मण के प्रति उपदेशों में इसी सेवक—सेव्यभांव की पुष्टि की गयी है—

सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेउ सेवकाई।।

अन्यच्च—

सिय रघुबर सेवा सुचि ह्वैहो तौ जानिहौ सही सुत मोरे।। *(गी०, २/११)*

लाक्षा की भाँति चित्त की भी दो अवस्थाएँ होती हैं—क्लिष्ट और मृदु। चित्त स्वभाव से ही क्लिष्ट होता है, पर तापक द्रव्य के योग से लाक्षा की भाँति द्रवित हो जाता है। करुणा, भय, प्रेमादि उस चित्त के लिये तापक तत्त्व

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। भलीभाँति द्रवीभूत चित्त में जिस वस्तु की छाप पड़ जाती है क्लिष्टावस्था में भी वह उसमें बनी रहती है। इसी छाप को संस्कार, वासना या भाव कहते हैं। यथा—

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्हीं। चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्हीं।।

यह भाव ही विभाव, अनुभाव, सञ्चारी भाव से पुष्ट होकर रसत्व को प्राप्त होता है।

राम के गुण ऐसे ही हैं। जब उनका संयोग जीव के चित्त से होता है तब चित्त की मार्दवावस्था हो जाती है। अतः स्वाभाविक रूप से जीव के चित्त पर जो पहली छाप पड़ती है, वह सेवक—सेव्यभाव की ही होती है और ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करने का मूल सेवक—सेव्यभाव है। इसीको 'तदीय' कहा जाता है। यही सेवक—सेव्यभाव ही भवसन्तरण का असाधारण साधन है, इसलिये भक्तगण इसी सेवक—सेव्यभाव को अपना अवलम्ब मानकर अपनी उपासना में निरत रहते हैं। लक्ष्मण ने भी राम को सेव्य और अपने को सेवक समझकर राम की उपासना की है।

रामचरितमानस में राजनीति का स्वरूप तथा उसमें लक्ष्मण का योगदान :

रामचरितमानस मुख्यतः भक्तिकाव्य होते हुए भी नीतिकाव्य का भी सुदृढ़ स्तम्भ है, जिसमें स्थान—स्थान पर नीति की सूक्तियाँ प्रचुरमात्रा में प्राप्त होती हैं। आदर्श चरित्रचित्रण के स्वरूप ही जीवन के नैतिक पक्ष को आलोकित करते हैं, जिसका सम्यक् रूप हमें रामचरितमानस में प्राप्त होता है।

मानस की नैतिक सूक्तियाँ— ये सूक्तियाँ तो धर्मप्राण मानव के लिये कण्ठहार ही हो गयी हैं। अतएव महाकवि की नैतिक सूक्तियों पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है—

कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करहिं सो तस फल चाखा।।

उक्त अर्द्धाली में जीवन की कर्म प्रधानता वर्णित है। "मंगल मूल बिप्र परितोसू" में ब्राह्मण—तुष्टि में कल्याण की भावना का उपदेश है। "दहइ कोटि कुल भुसुर रोषू" में ब्राह्मण के क्रोध का परिणाम वर्णित है। "किये कुबेषु साधु सन्मानू" में प्रत्येक वेश में स्थित सज्जन का सम्मान करना निर्दिष्ट है। "को न कुसंगति पाइ नसाई" में कुसंग से बचने का तथा "को न सुसंग बड़प्पन पावा" में सत्सङ्ग करने का आदेश है।

जदंपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइअ बिनु बोले न संदेहा।।
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गए कल्यान न होई।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उक्त अर्द्धाली में विरोध मानने वाले सुहृदों के घर भी न जाने का निर्देश है।

जौं घरु वरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा।।
न तु कन्या बरु रहउ कुँआरी। कन्त उमा मम प्रान पिआरी।।

इस अर्द्धाली में कन्या के लिये योग्य वर ढूढने का आदेश है।

संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथें पन जाइहि नृप कानन।।

यह कहकर गोस्वामी जी ने चौथेपन अर्थात् वृद्धावस्था में संन्यास लेने का निर्देश दिया है। राजा के कर्त्तव्य तथा संन्यास के अधिकारी का स्वरूप चित्रित किया गया है।

''मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही'' इत्यादि प्रसङ्गों में मनुष्य पर विकारों का प्रभाव दरसाकर उनसे बचने का सङ्केत है। ''नारि धर्म पतिदेव न दूजा'' में नारी के कर्त्तव्य का निरूपण किया गया है।

''कोउ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी''।।

में ईर्ष्या में अप्राप्त वस्तु की कामना व्यक्त की गयी है।

''नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई।।''

में सौत के प्रति नारी की विद्रोह भावना का निरूपण किया गया है। इस प्रकार उपर्युक्त सूक्तियों द्वारा तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस के अन्तर्गत प्रत्येक प्रसङ्ग में नैतिक आदर्शों का कहीं सङ्केत और कहीं स्पष्ट उल्लेख किया है। अतएव मानस को ''नैतिकशास्त्र का आकर'' कहा जा सकता है।

मानसकालीन राजनीतिक परिस्थिति :

महाकवि तुलसीदास का प्रादुर्भाव जिस राजनीतिक परिस्थिति में हुआ उस काल का विवरण इतिहासकारों ने अनेक प्रकार से प्रस्तुत किया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि ''राजनीति की इन दुःखपूर्ण परिस्थितियों से ऊबकर तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर राजनीति के आदर्शों का निरूपण किया है।''

उक्त कथन से तो यह सङ्केत मिलता है कि तुलसीदास की समकालीन राजनीतिक स्थिति अव्यवस्थित एवं दुःखप्रद थी। अतएव उन्होंने नई पद्धति के आदर्श का प्रतिष्ठापन अपने रामचरितमानस में किया है।

रामरतन भटनागर के निम्नाङ्कित कथन से यह स्पष्ट होता है कि तुलसीदास पर तत्कालीन राजनीतिक दशा का क्या परोक्ष प्रभाव पड़ा! वे लिखते हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

''तुलसी की रचनाओं से कई बातें स्पष्ट हैं। उन्होंने कई स्थानों पर कलियुग का वर्णन किया है.............उनके काव्य पर यदि राजनीतिक प्रभाव है, तो परोक्ष में उन्होंने अपने समय के विदेशी राज्य में रावण–राज्य का प्रतिबिम्ब पाया, अतः उन्होंने विशेष उत्साह में उसका चित्रण किया और उसके विरोध में आदर्श राज्य, रामराज्य की कल्पना उपस्थित की (उत्तर० २० से २३ तक)...............जिस शक्ति से उन्होंने राम–कथा लिखी है और रावण के प्रति विरोध का प्रदर्शन किया है, वह शक्ति प्रच्छन्न रूप से सामयिक व्यवस्था और विदेशी राज के प्रति विद्रोह से ही जन्म ले सकती है।[१]''

उक्त अवतरण से यही सिद्ध होता है कि तुलसीदास की तत्कालीन राज्य–व्यवस्था में शोषण नीति का बोलबाला था, जैसा कि वे स्वयं लिखते हैं–

नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड विडंब प्रजा नितहीं।।

— — — — — — — — — — — —

द्विज श्रुतिबेचक भूप प्रजासन। कोऊ नहिं मान निगम अनुसासन।।

निज समय से प्रेरणा पाकर तुलसीदास ने तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का तो दिग्दर्शन कराया ही है, परन्तु इससे भी अधिक आपका लक्ष्य राजनीतिक आदर्श की प्रतिष्ठा पर भी रहा है। इस प्रकार यह कहना असङ्गत न होगा कि जहाँ उन्होंने निजकालीन परिस्थिति का वस्तु–चित्रण करने में ''सत्य'' का प्रतिपादन किया है[१], वहीं ''रामराज्य'' के आदर्श की प्रतिष्ठा[१] द्वारा इससे कहीं अधिक शिवतत्त्व का निरूपण भी किया है, जो कि समाज के लिये अनुकरणीय एवं उपादेय है।

राज्य के प्रमुख अङ्ग– भारतीय राजनीतिक विचारकों ने राज्य के सात अङ्ग निर्धारित किये हैं। महाभारत के शान्तिपर्व में यह सप्ताङ्ग इस प्रकार हैं–आत्मा, अमात्य, कोष, दण्ड, मित्र, जनपद तथा पुर। कौटिल्य के ''अर्थशास्त्र'' में स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र को सप्त प्रकृति माना गया है। मनु ने स्वामी, अमात्य, पुर, राष्ट्र, कोष, दण्ड और सुहृद् राज्य की सात प्रकृतियों का निर्धारण किया है। (मनु०, ९/२९४)।

उक्त अङ्गों का व्यावहारिक रूप रामचरितमानस के पूर्णाङ्ग विवेचन से ज्ञात हो सकता है। सभी प्रमुख अङ्गों में राजा सर्वप्रधान अङ्ग हैं, अतएव उसका स्वरूप सर्वप्रथम अवलोकनीय है।

रामचरितमानस में राजा का स्वरूप– राजा की उत्पत्तिविषयक विभिन्न विचारधाराओं में ''दैवी सिद्धान्त'' अत्यन्त प्राचीन माना गया है। वेदों से लेकर महाभारत एवं रामायण काल तक इसकी सर्वमान्यता प्रतिष्ठित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थी। वह मानव रूप धारण कर पृथ्वीमण्डल पर विचरण करता है।[¹] राजा सत्य, धर्म, माता, पिता एवं शुभचिन्तक तथा कल्याणकारी है।[¹] इतना ही नहीं, वह अपने गुणों एवं चरित्र के बल से यम, कुबेरादि देवों से भी महत्तम है।[¹] अतएव राजा का तिरस्कार करना देव–अपमान है।[¹] वह देवोपम माननीय है। उसे साधारण मानव मानना पाप है। रामचरितमानस में तुलसीदास ने राजा–विषयक दैवी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए राजा को ईश्वर के अंश रूप में प्रतिष्ठित किया है।

साधु सुजान सुसील नृपाला।
ईस अंस भव परम कृपाला।।

इस प्रकार राजशास्त्रियों के अनुसार वर्णित सप्तात्मक राज्य के प्रधान अङ्ग "राजा" के स्वरूप के महत्त्व का व्यापक उल्लेख "मानस" महाकाव्य में किया गया है। मानव धर्मशास्त्र के अनुसार धर्म–स्थापना के निमित्त ही राजा का निर्माण किया जाता है और धर्म की स्थापना राजा दण्ड द्वारा करता है।[३४] भीष्म ने राजा की आवश्यकता एवं उसका महत्त्व जगत् को सुचारू रूप से स्थिर रहने और उसके विकास एवं सम्वर्द्धन के लिये अनिवार्य माना है।[३५]

पूर्वोक्त राजशास्त्रियों की भाँति वाल्मीकि ने भी राजा के महत्त्व एवं उसकी आवश्यकता पर व्यापक प्रकाश डाला है।[¹]

मानसकार ने भी अनेक प्रसङ्गों में ईश्वर रूप में राम का चित्रण करते हुए राजा के महत्त्व की ओर इङ्गित किया है। इसका एक प्रत्यक्ष निदर्शन हमें रामराज्य–विवरण में मिलता है–

दण्ड जतिन्ह कर भेद जहं नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र के राज।।
— — — — — — — — —
विधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज।।

राज्य के प्राणरूप राजा की नियुक्ति के सिद्धान्तों की ओर महर्षि वाल्मीकि भी दृष्टिपात करते हैं। संविधान में राजपद–प्राप्ति के कुछ विशिष्ट सिद्धान्त भी उल्लिखित थे जिनमें से प्रमुख पैतृक अधिकार का सिद्धान्त है। परन्तु इसके साथ–साथ ज्येष्ठता का अधिकार भी समन्वित है।[¹]

रामचरितमानस में राजा की नियुक्ति के अधिकारों की ओर स्पष्ट सङ्केत मिलता है, परन्तु मानस में पैतृक अधिकार के साथ–साथ ज्येष्ठता के अधिकार को विशेष महत्त्व दिया गया है। मनु अपने पुत्र को राज्य देकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करते हैं।[1] पैतृक अधिकार के साथ ही ज्येष्ठता का अधिकार विशेष रूप से स्थान-स्थान पर परिलक्षित होता है—

जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा।

— — — — — —

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई।।

स्वयं राजा दशरथ भी इसको प्रमाणित करते हैं—

मैं बड़ छोट बिचारि जिय करत रहेउं नृपनीति।

राजा की नियुक्ति में प्रजा की अनुमति भी परम आवश्यक हुआ करती है, क्योंकि उसका पूर्ण सम्बन्ध प्रजा से ही होता है। प्रजानुरञ्जन ही उसका प्रमुख कर्त्तव्य हुआ करता है। अतएव राजा की नियुक्ति के लिये रामचरितमानस में प्रजानुमति-प्राप्ति का भी निर्देश किया गया है। दशरथजी कहते हैं—

जौं पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियं रामहि टीका।।

यौवराज्याभिषेक के प्रसङ्ग में प्रजानुमति के अधिकार का भी सम्यक् ध्यान मानस में रखा गया है, परन्तु इस अनुमति से तात्पर्य प्रजा का अन्धानुसरण नहीं था, अपितु प्रजा को अनुमति देने का अधिकार युवराज की चारित्रिक योग्यता पर आधृत था। इस प्रकार राजकुलोत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र भी तभी राजपदासीन होने का अधिकारी हो सकता था, जब उसे चारित्रिक अधिकार प्राप्त हो। अतएव रामचरितमानस में राजा के गुण एवं चारित्रिक विशेषता का सम्यक् निरीक्षण किया गया है—

सेवक सचिव सकल पुरवासी। जे हमार अरि मित्र उदासी।।
सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही। — — — — — — — — — ।।

— — —   — — —   — — —   — — —

राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ।।

दशरथ को भी "धरम अवधि गुन रूप निधानू" ही कहा गया है तथा उनके "रूप गुन सील" की सराहना स्थान-स्थान पर उनकी चारित्रिक विशेषता को प्रमाणित करती है। रामचरितमानस में इसी चारित्रिक कसौटी के आधार पर चरित्रहीन राजाओं को अधम की श्रेणी में रखा गया है।[1] इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि रामचरितमानस महाकाव्य में राजा की नियुक्ति के सम्बन्ध में शारीरिक, पैतृक, ज्येष्ठता, चारित्रिक योग्यता एवं प्रजानुमति के अधिकारों की व्याख्या की गयी है।

रामचरितमानस में राजा के अधिकार एवं कर्त्तव्य— शुक्रनीति के अनुसार राजा का परम धर्म प्रजा का परिपालन और दुष्टों का निग्रह है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नृपस्य परमो धर्मः प्रजानां परिपालनम्।
दुष्टनिग्रहणं नित्यं न नीत्यातो बिना ह्युमे।।

(शुक्रनीति, १/१४)

राजा प्रजा का रञ्जन करने वाला भी होता है। *(शुक्रनीति, १/२०)*। शुक्रनीति के प्रथम अध्याय में राजा के कर्त्तव्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—"दुष्ट को दण्ड देना, प्रजा का परिपालन करना, राजसूय आदि यज्ञों का यजन करना, न्यायानुसार कोष का अर्जन करना, अन्य राजाओं को वश में रखना, शत्रु का परिमर्दन करना और भूमि का संग्रह करना— ये सात कार्य राजा के कर्त्तव्य माने गये हैं।[36] अतएव रामचरितमानस में "रामराज्य" की व्यवस्था के चित्रण द्वारा राजा के कर्त्तव्यों की ओर दृष्टिपात कराया गया है—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग।।
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहि परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।

मानस में भी दुष्टों को मृत्युदण्ड तक देने का समर्थन राम करते हैं—

अनुजबधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।।

राजा के द्वारा प्रजापरिपालन की भी व्यवस्था रामचरितमानस में सम्यक् रूप से प्राप्त होती है। वनयात्रा के समय राम लक्ष्मण से कहते हैं—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।

यद्यपि दशरथ के राज्य तथा धन आदि की चर्चा रामचरितमानस में प्राप्त होती है—

अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई।।

तथापि "कोष अर्जन" का उल्लेख मानस में अन्य कर्त्तव्यों की अपेक्षा कम है, जिससे प्रतीत होता है कि तुलसी ने कोषार्जन के प्रश्न के विस्तार की आवश्यकता नहीं समझी; क्योंकि सार्वभौम सम्राट् दशरथ एव राम के कोष स्वयं समृद्ध एवं सम्पन्न थे।

शत्रु को परिमर्दित करने का प्रमुख षड्गुण्य मन्त्र भी राजा का प्रमुख कर्त्तव्य है।

रामचरितमानस में मन्त्री का स्वरूप— राजा के राज्य—कार्य—सञ्चालन में सहायक, राज्य का अनिवार्य अङ्ग मन्त्री होता है। कौटिल्य का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कथन है कि "मन्त्रिणां मन्त्रमूलं हि राज्ञो राष्ट्रं विवर्धते।[37] अर्थात् मन्त्रियों की मन्त्रणा से ही राजा की राष्ट्र–वृद्धि होती है। मानस में मन्त्रियों की व्यापक विवेचना वाल्मीकि रामायण की भाँति नहीं की गयी है; क्योंकि तुलसीदास का लक्ष्य राज्य–व्यवस्था का चित्रण करना नहीं था, अपितु रामचरित का विशिष्ट आदर्श उपस्थित करना उनका मुख्य उद्देश्य था। उनके रामचरितमानस की पृष्ठभूमि आध्यात्मिक विशेष है, अतएव मन्त्रियों की स्वतन्त्र सत्ता का दिग्दर्शन न कराकर उन्होंने मन्त्रिवरों को राम के परिजनों[1] की ही भाँति चित्रित किया है। गुरु वशिष्ठ का स्थान अवश्य "पुरोधा" की भाँति सर्वोपरि है। समय समय पर उनसे मन्त्रणा ली जाती है[1], परन्तु उन स्थलों पर उनका सञ्चालक गुरुरूप ही विशेष प्रधान है–"प्रधान मन्त्री" का रूप अनुभूत नहीं होता।

वशिष्ठ के अतिरिक्त मन्त्रियों में सुमन्त्र का नाम ही प्रसङ्गवश रामचरितमानस में प्राप्त होता है। वे भी राम के अनन्य सम्बन्धी एवं सेवक[1] भक्त की भाँति राम के सुख में सुखी एवं दुःख में दुःखी होते हुए दिखाये गये हैं। यद्यपि वे "पण्डित परमारथ ग्याता" कहे जाते हैं, परन्तु राम का विरह उनको भी असह्य हो उठता है और वे "दारुन दाहू" से पीड़ित हो उठते हैं। उनके उस आर्त रूप में संयत मन्त्रित्व का रञ्चमात्र भी आभास नहीं होता; अपितु "आर्त सेवक" ही उन्हें कहा जा सकता है। चित्रकूट का चित्रण रूपक–बद्ध शैली में करते समय गोस्वामी जी ने "बिरागु" को सचिव का स्थान दिया है[1] वही झलक एवं तटस्थ भावना उन्होंने सचिवों के प्रति भी दर्शायी है। भरत के अयोध्या आने पर "प्रजा सचिव सुमंत" गुरु के उपदेश में भी नैतिक पक्ष प्रधान है। राजनीतिक पक्ष अपेक्षाकृत कम है।

रामचरितमानस में सेना का स्वरूप– राज्य का प्रमुख अङ्ग "बल" बताया गया है, जिनमें "सैन्य बल" ही प्रधान है। भीष्म के अनुसार वह सैन्य बल राज्य के प्रमुख अङ्ग दण्ड का प्रकाश्य रूप है। इसके आठ अङ्ग माने गये हैं। "रथारोही", "गजारोही", "अश्वारोही", "नौकारोही", "पैदल", "विष्टि" (भारवाहक), "गुप्तचर" और "उपदेशक"।[35] विचारणीय प्रश्न यह है कि मानस में इस अङ्ग का निरूपण किस रूप से किया गया है। युद्ध–प्रधान ग्रन्थ होने के कारण राज्य के उक्त अङ्ग का मानस में सम्यग्रूपेण विवेचन प्राप्त होता है[1]।

रामचरितमानस में सेना का स्वरूप उसके प्रकार, सङ्गठन आदि का पर्याप्त विश्लेषण किया गया है। शुक्र के अनुसार सेना दो प्रकार की कही गयी है– १. स्वगमा, २. अन्यगमा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वगमा के अन्तर्गत पैदल सेना और अन्यगमा के अन्तर्गत रथ, घोड़े, हाथी आदि आते हैं। रामचरितमानस में राम तथा रावण की सेना में दोनों रूपों का वर्णन प्राप्त होता है।[३६] राजनीति की दृष्टि से प्रत्येक सेना का सेनापति उसका मुख्य अध्यक्ष होता है। उस सेना के अधीन अन्य कई सेनाएँ होती हैं। प्रत्येक प्रकार की सेना का अध्यक्ष "यूथपति" अथवा "बलाध्यक्ष" कहलाता है। मानस के अन्तर्गत लङ्का के प्रथम युद्ध के प्रारम्भ में सेनापति तथा यूथपति का सम्यक् रूप प्राप्त होता है।[१] साथ ही सेनानायक एवं सेना के गुणों की ओर भी दृष्टिपात किया गया है।[१] सेना को प्रोत्साहन देने के हेतु सैन्यसञ्चालन में व्यवहारकुशल, अनुशासनकर्त्ता होने की नितान्त आवश्यकता होती है। अतएव राम[१] तथा सुग्रीव[१] दोनों में ही यह विशिष्टता परिलक्षित होती है। राजा सदा सेना को प्रोत्साहन देता रहता है।[१] प्रलोभन, वाचिक प्रशंसादि से परितुष्ट करता है।[१]। सैनिकों के साथ अपनी व्यवहारनिपुणता का परिचय देता है। सेना की सङ्ख्या अपरिमित रूप में चित्रित की गयी है।[१] सेना की सुरक्षा के लिये सैन्य विभाजन किया है। इस व्यवस्था का भी स्वरूप रामचरितमानस में प्राप्त होता है।[१]

रामचरितमानस में युद्ध का स्वरूप— राजनीतिशास्त्रज्ञों के अनुसार युद्ध दो प्रकार का बताया गया है— १. धर्मयुद्ध तथा २. अधर्मयुद्ध।[३६] रामचरितमानस का युद्ध धर्मयुद्ध के अन्तर्गत कहा जा सकता है; क्योंकि भीष्म के अनुसार प्रजा रक्षण–कार्य, लोकरक्षाकार्य, शिष्ट रक्षा–कार्य और अत्याचारों से पीड़ित एवं शरण में आये हुए लोगों की रक्षा एवं ऐसे ही अन्य निमित्तों के हेतु युद्ध करना वैध माना गया है।[३५] वाल्मीकि रामायण में राम कहते हैं कि युद्ध न करने वाले अदृश्य, हाथ जोड़े हुए, विनीत शरणागत, युद्ध से भागने वाले को कभी नहीं मारना चाहिये—

अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम्।
मत्तं पलायमानं वा न हन्तुं त्वमिहार्हसि।।[१]

रामचरितमानस में भी धर्मयुद्ध के इन नियमों का उल्लेख इस प्रकार से प्राप्त होता है। राम खरदूषण के दूतों से कहते हैं—"समर बिमुख मैं हतउँ न काहू"। "सन्मुख मरन बीर कै सोभा"। उनका यह कहना धर्मयुद्ध के ही कारण है; क्योंकि गीता में भी श्रीकृष्ण ने यही बतलाया है—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।[१]

इसका भी यही आशय हुआ कि जो समर–क्षेत्र में युद्ध करता हुआ मारा जाता है उसको वीर गति प्राप्त होती है। इस मर्यादा का प्रतिष्ठापन गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपने रामचरितमानस में किया है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा।।

— — — — — — — — — — — —

तजऊं प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूं हाथ मुद मोदक मोरे।।

युद्ध के अनेक प्रकारों का विवरण भी हमें रामचरितमानस में मिलता है। मुख्य रूप से युद्ध तीन प्रकार के कहे गये हैं— १. दैवी, २. आसुरी और ३. मानवी।[३६]

दैवी युद्ध वह कहलाता था जिसमें मन्त्र प्रेरित वाणों द्वारा युद्ध किया जाता था। इसे मान्त्रिक युद्ध भी कहा जाता था। राम द्वारा मन्त्रप्रेरित बाण युद्ध इसी के प्रमाण हैं।[१] अग्नि, विष्टा, पूय, रुधिर, कच, अस्थि, उपल तथा रज आदि का प्रयोग आसुरी युद्ध कहलाता है।[१] रामचरितमानस में शस्त्रयुद्ध[१] तथा बाहुयुद्ध[१] का भी चित्रण प्राप्त होता है। इन विधियों के अतिरिक्त शत्रु–विनाश हेतु "कूटयुद्ध" का भी विवरण रामचरितमानस में प्राप्त होता है,[१] जिसके अन्तर्गत कालनेमिप्रसङ्ग का निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त माया–युद्ध[१] का निरूपण व्यापक रूप से मानस में किया गया है।

युद्ध के समयोचित अनेक उद्दीपनसम्बन्धी उपादानों का भी उल्लेख तुलसीदास के रामचरितमानस में मिलता है। युद्ध के समय परस्पर ललकार[१] तथा रण–वाद्य[१] उत्साह परिवर्धन में सहायक होते हैं। मदिरा भी उद्वेगकारिणी होने के नाते उद्दीपन का ही कार्य करती है, परन्तु इसका प्रभाव तामसी होता है। अतएव असुर–पक्ष में युद्धप्रयाण के समय इसका प्रयोग दरसाया गया है।

महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना।।

रामचरितमानस के धर्मयुद्ध में "रामप्रताप"[१] तथा उनकी "जय–जयकार"[१] ही प्रमुख उद्दीपन का कार्य करती है। भक्त तुलसीदास युद्धनीति के प्रमुख सम्बलों एवं उपादानों में अपने सर्वस्व राम [illegible]ताप का किस प्रकार विस्मरण कर सकते हैं!

रामचरितमानस में राजनीति के प्रमुख साधन—

जिस प्रकार राजा के लिये अनुकरणीय षाड्गुण्य मन्त्र–सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय हैं, उसी प्रकार साम, दाम, दण्ड, भेद इन प्रमुख राजनीति के साधनों का भी राजाओं के लिये अत्यधिक महत्त्व है। इन सबका निरूपण रामचरितमानस में सम्यक् प्रकार से किया गया है। रावणसभा से जब अङ्गद राम के पास आते हैं, तब राम अङ्गद से प्रश्न करते हैं कि तुमने रावण के चारों मुकुट किस प्रकार प्राप्त कर मेरे पास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भेजे। इसके उत्तर में अङ्गद कहते हैं कि ये मुकुट नहीं, अपितु साम, दाम, दण्ड तथा भेद हैं। राजा के ये चार गुण होते हैं जिसे ग्रहण कर वह न्यायपूर्वक राज्य का सञ्चालन करता है तथा इन्हीं को नीति–धर्म के चार चरण भी स्वीकार किए गये हैं–

साम दान अरु दण्ड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा।।
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियं जानि नाथ पहि आए।।

सामादि चारों साधनों का व्यवहृत रूप भी मानस में यथास्थान प्राप्त होता है। सुग्रीव के प्रति "साम", विभीषंण के प्रति "दाम", बालि के प्रति "भेद" तथा रावण के प्रति "दण्ड" का प्रत्यक्ष रूप में प्रतिपादन किया है।

मानस की राजनीति में लक्ष्मण का योगदान–

रामचरितमानस की राजनीति में लक्ष्मण एक प्रमुख पात्र बनकर उपस्थित हुए हैं। उनके सम्पूर्ण कार्यकलापों का सर्वेक्षण करने पर कई स्थल आते हैं जहाँ राजनीति स्पष्ट झलकती है। सर्वप्रथम राजनीति का प्रश्रय इन्होंने जनकपुर में परशुराम के क्रोध के अवसर पर किया है। यहीं से लक्ष्मण–चरित्र में राजनीति मूल बीज रूप में प्रकट होती है और राम के सान्निध्य में क्रमशः प्रसङ्गानुसार इसका विकास और पल्लव हुआ है।

परशुराम की क्रोधाग्नि को देखकर लक्ष्मण ने अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का परिचय दिया है। लक्ष्मण को विश्वास हो गया है कि परशुराम का वास्तविक शत्रु शिवधनुभञ्जक है–

सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।।

अतः राम के पूर्व परशुराम के सामने उपस्थित हो लक्ष्मण ने अपनी कटूक्तियों से परशुराम का खूब परिहास किया। परिणाम यह हुआ कि परशुराम की क्रोधाग्नि तो धधकती गयी और संभामण्डप में भय के साथ–साथ आनन्द भी छा गया। दूसरी बात यह है कि विपक्षी को यदि ज्ञात हो जाय कि शत्रु मुझ पर प्रहार नहीं कर सकता तो वह निर्भीकता से शत्रु के समक्ष उपस्थित होकर बात कर सकता है। इस अवसर का लक्ष्मण ने पूरा लाभ उठाया; क्योंकि लक्ष्मण सुन चुके थे कि "बालकु बोलि बधउं नहिं तोही"। अतः लक्ष्मण निर्भीक होकर उनसे तर्क करते हैं। क्रुद्ध परशुराम के सम्मुख राम को शालीन एवं अपने को उद्दीप्त प्रदर्शित करना लक्ष्मण की विलक्षण राजनीति है। परशुराम को जब स्थिति का आभास होता है तब वे कह उठते हैं–

बंधु कहइ कटु संमत तोरें। तू छल विनय करसि कर जोरें।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्ष्मण राजनीति का पक्ष लेते हुए परशुराम से वृथा जल्पना से मना करते हैं—

बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा।।
सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रतापु।।

राम ने रावण से लङ्का की समरभूमि में भी यही कहा था—

सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाऊ मनुसाई।।
जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।

लक्ष्मण का क्रोध इस स्थल पर आवश्यक इसलिये भी था कि यदि लक्ष्मण भी शान्त हो जाते तो कुटिल राजा परशुराम के साथ मिलकर युद्ध कर सकते थे। यदि ऐसा होता तो रङ्गस्थल शीघ्र ही युद्धस्थल में परिणत हो जाता। इसलिये उस आने वाली भयावह परिस्थिति को लक्ष्मण ने वाग्युद्ध से सम्हाला। यहाँ लक्ष्मण की सफल राजनीति परिलक्षित होती है।

वनगमन के समय राम के द्वारा दिये राजनीति और धर्मनीति के उपदेशों[१] को सुनकर लक्ष्मण ने उनकी अवज्ञा की। लक्ष्मण ने कहा कि आपका उपदेश नरश्रेष्ठों के लिये है, मुझे तो केवल मनसा, वाचा, कर्मणा आपकी भक्ति चाहिये।

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।।

भरत पर लक्ष्मण का आक्रोश करना तीसरा स्थल है जहाँ उनमें राजनीतिक विचारधारा प्रवाहित होती है। भरत को सैन्यसहित आते देख लक्ष्मण का मन शङ्कित हो उठा जो उनके लिये स्वाभाविक था। रामहित उनके जीवन का उद्देश्य था, अतः राम के समीप विनीत स्वर में वे कहते हैं—

नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियं जानिअ आपु समान।।
विषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाई।।
भरतु नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना।।
तेऊ आजु राम पदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई।।

भरत के प्रति कुटिल कुबन्धु आदि का प्रयोग करते हुए लक्ष्मण कहते हैं कि अकण्टक राज्य प्राप्त करने का भरत ने यह उचित उपाय किया है। क्योंकि राजनीति कहती है कि—

ऋणशेषोऽग्निशेषश्च व्याधिशेषस्तथैव च।
विवर्धते पुनर्यस्मात् तस्माच्छेषं न कारयेत्।। *(शुक्रनीति, ६/८१)*

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसलिये मैं भरत का वध कर डालूँगा। यहाँ उनमें नीतिरस की अपेक्षा रणरस अधिक प्रबल हो उठा—

भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ।।
— — — — — — — — — — — —
एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला।।

फलतः लक्ष्मण यहाँ इतने क्रुद्ध हो उठते हैं कि भरत ही नहीं, अपितु सहोदर अनुज का भी वध करने के लिये तत्पर हो उठते हैं—

राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुं समर सेज दोउ भाई।।

लक्ष्मण के इस प्रचण्ड रौद्र रूप को देखकर तथा इनके शपथ को सुनकर देवताओं द्वारा आकाशवाणी होती है—

तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा।।
अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ।।
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं।।

जिसे सुनकर लक्ष्मण सङ्कुचित हो उठते हैं—

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने।।

लक्ष्मण की इस नीति की राम भी प्रशंसा करते हैं—

कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई।।

राम कहते हैं कि तुम ठीक कहते हो, यह संसार परिवर्तनशील है। यहाँ मनुष्य की प्रवृत्तियाँ परिस्थितियों से प्रभावित होती रहती हैं। परिस्थितियों के अनुसार मनुष्य की मानसिक स्थितियाँ बदलती रहती हैं, किन्तु भरत पर सांसारिक परिस्थितियों का प्रभाव नहीं पड़ सकता। अयोध्या का राजपद क्या, विधि–हरि–हर पद भी उन्हें प्रभावित नहीं कर सकते!

भरतहि होइ न राजमदु विधि हरि हर पद पाइ।
कबहुं कि कांजी सीकरनि छीरसिन्धु बिनसाइ।।

भारतीय राजनीतिशास्त्र में दूत भी राजा का एक अङ्ग माना गया है। दूत के विषय में कहा गया है कि उसे शारीरिक सम्पत्ति वाला, इच्छारहित, बोलनेवाला, नाना शास्त्रों का ज्ञाता, दूसरों के मन की बातों को जानने वाला होना चाहिये—

साकारो निःस्पृहो वाग्मी नानाशास्त्रविचक्षणः।
परचित्तावगन्ता च राज्ञो दूतः प्रशस्यते।।

प्राचीन भारत की दण्डनीति में दूत के प्रमुख लक्षणों को बताया गया है कि दूत को शत्रुभावापन्न राजाओं के साथ सन्धि करा सकने में समर्थ एवं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनेक राजाओं के मिल जाने पर उनमें भेद डालने में सुदक्ष, तथा किस से सन्धि की जा सकती है?– इस विषय में पूर्ण अभिज्ञ, अपने राजा के प्रति विशेष अनुरक्त, दक्ष, तीव्र स्मरण शक्ति वाला, देशकाल को अच्छी तरह समझने वाला, दर्शनीयाकृति, नीतिशास्त्र का पूर्णवेत्ता, प्राज्ञ और वाग्मी होना चाहिये।[३८]

प्राचीन भारत की नीति के अनुसार दूत अवध्य होता है। रामायण और रामचरितमानस दोनों महाकाव्यों में उक्त मत की पुष्टि की गयी है–

वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः।[१]

तथा–

नीति विरोध न मारिय दूता।

लक्ष्मण ने इस नीति का पूर्णरूपेण पालन किया। युद्ध के पूर्व रावण अपने शत्रुदल के भेदों को जानने के लिये अपने दूतों को रामदल में भेजता है। वे दूत बानर का रूप धारण करके राम की सेना में मिल जाते हैं, किन्तु वे पहचांन लिये जाते हैं। राम की सेना उन्हें पीटने लगती है और राम की दुहाई देने लगते हैं। लक्ष्मण उन्हें बन्धनमुक्त कर देते हैं–

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हंसि तुरत छोड़ाए।।

और उन्हीं दूतों के हाथ रावण के नाम पत्र भेजते हैं–"रावन कर दीजै यह पाती।" इसके साथ ही उन्हीं दूतों द्वारा मौखिक सन्देश भी भिजवाते हैं। उन्होंने रावण को अत्यधिक (दोनों ही प्रकारों से) चोट पहुँचाने के उद्देश्य से ऐसा किया–

कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार।
सीता देई मिलहु न त आवा कालु तुम्हार।।

रावण के दूत लौटकर राम की और उनकी सैन्यशक्ति की प्रशंसा करते हैं। अन्त में पत्र में लिखित दोनों बातों का ज्ञान उसे मन्त्रियों द्वारा होता है। पत्र में लक्ष्मण की सामनीति और दण्डनीति का प्रस्फुटन हुआ है। उन्होंने उसके लिये दो मार्ग दरसाये थे, जिनमें एक सामनीति और दूसरा दण्डनीति का क्रमशः पोषक था–

की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग।।

भृङ्ग और पतङ्ग दोनों अनन्य प्रेमी हैं। एक अपने प्रेमी द्वारा अपना पोषण करता है और दूसरा अपने प्रेमी द्वारा नष्ट हो जाता है। सामनीति के अनुसार भृङ्ग बनकर प्रभु के चरणों में नत होना और दण्डनीति के अनुसार राम के शरानल से पतङ्ग के समान मृत्यु को प्राप्त होना है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रामचरितमानस में लक्ष्मण की दण्डनीति—

रामचरितमानस में साम, दाम, दण्ड और भेद राजा के इन चार गुणों की विस्तृत चर्चा की गयी है। राजा के लिये ये चार गुण नितान्त आवश्यक है, किन्तु दण्डनीति का पालन करना विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। जो कार्य साम, दाम तथा भेद नीति से नहीं होता, वह कार्य दण्डनीति से होता है। महाभारत के राजधर्मानुशासन पर्व में युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म जिस राजधर्म का वर्णन करते हैं उसके अनुसार समस्त जीवलोक राजधर्म के ही आश्रित हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि चतुवर्ग राजधर्म में ही केन्द्रित हैं। जैसे घोड़े को लगाम और हाथी को अङ्कुश सुपथ पर चलाने में समर्थ हैं, वैसे ही राजधर्म सारे संसार को सुपथ पर चलाने में समर्थ होता है। इस राजधर्म की उपेक्षा से भी किसी तरह की लोकमर्यादा स्थिर नहीं रह सकती। इसके अभाव में सब लोक—सस्थाएँ अव्यवस्थित हो जाती हैं। सूर्य—उदय होने पर जैसे अन्धकार को दूर कर देता है, उसी प्रकार राजधर्म समस्त जीवलोक की अशुभ गति को अवरुद्ध कर देता है। राजधर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए भीष्म ने कहा—जैसे हाथी के पदचिह्नों में सब प्राणियों के पदचिह्न समा जाते हैं, उसी तरह सब धर्म और उपधर्म राजधर्म में अन्तर्भूत हो जाते हैं। दण्डनीति की उपेक्षा से वेदों का और वेदविहित सब धर्मों का विनाश एवं सब आश्रमधर्मों का उच्छेद हो जाता है। जिस प्रकार राजा को शत्रु का छिद्रान्वेषी होना आवश्यक है, उसी प्रकार उद्यतदण्ड होना भी आवश्यक है; क्योंकि उद्यतदण्ड राजा से सभी डरने लगते हैं। इसलिये राजा दण्ड से ही सबको अपने वश में कर सकता है। साम, दाम, दण्ड और भेद— इन चारों उपायों में दण्ड ही प्रधान होता है। राजा और उसकी समृद्धि सबका मूल दण्ड ही है। जिसका दण्ड ठीक नहीं उसका कुछ ठीक नहीं। मूल नष्ट हो जाने पर जैसे वृक्ष स्थिर नहीं रह सकता, वैसे ही दण्ड के विनष्ट होने पर राजा का कुछ भी स्थिर नहीं रह सकता।[३८]

परिणामतः साम, दाम, दण्ड और भेद में दण्डनीति बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिस स्थल पर राजा की शेष तीनों नीतियां असफल हो जाती हैं वहाँ दण्ड नीति काम कर जाती है। यद्यपि रामचरितमानस में तुलसीदास ने साम, दाम, दण्ड और भेद चारों नीतियों का दिग्दर्शन कराया है, लेकिन लक्ष्मण के माध्यम से उन्होने दण्ड नीति को विशेष रूप से दरसाया है। वन्दनाप्रसङ्ग में ही लक्ष्मण को दण्ड रूप में चित्रित किया गया है—

रघुपति कीरति विमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

दण्डधारी सेनापति से ही राजा की कीर्ति का विकास और प्रसारण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता है। लक्ष्मण के यश दण्ड से ही रामकीर्ति रूपी पताका फहर सकी। एक कुशल सेनापति की भाँति लक्ष्मण का चरित्र मानस में वर्णित है। एक कुशल सेनापति अपने राजा के हित के लिये सतत तत्पर रहता है और अपने चारों ओर की घटनाओं से सचेत रहता है। लक्ष्मण राम के हित के लिये सदा उसी भाँति चेतन रहते हैं। इसलिये राम के कुशल रक्षक और राम सेना के कुशलतम सेनापति के रूप में लक्ष्मण का चित्रण हुआ है। वे राम के कायिक अनुभावों का विधिवत् अवलोकन करते हुए पाये जाते हैं—

लखन लखेऊ रघुबंसमनि ताकेऊ हर कोदंड।

अन्यच्च—

लखन लखेऊ प्रभु हृदय खभारू।

राजा के सङ्केत पर सेनापति को अपने दण्ड कार्यों को रोकना पड़ता है तथा कभी–कभी सेनापति को अपने राजा के हित के लिये राजा की इच्छा के विरुद्ध भी कार्य करना पड़ता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर राजा को अपनी वक्र दृष्टि का आश्रय लेना पड़ता है। कभी–कभी राजा के सङ्केत पर उसके आदेशों का सेनापति को यथाशीघ्र पालन करना पड़ता है।

लक्ष्मण में योग्यतम सेनापति के सभी श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं। अपने राजा के सम्मान का मर्दन होते देख लक्ष्मण तुरन्त क्रुद्ध हो उठते हैं। राजा जनक के "बीर बिहीन महीं मैं जानी" कहने पर लक्ष्मण की भृकुटि वक्र हो गयी, उनके अधर क्रोध से फड़कने लगे, उनकी आँखों में रौद्र रस उमड़ आया—

माखे लखनु कुटिल भई भौंहे। रदपट फरकत नयन रिसौहें॥

उन्होंने क्रुद्ध होकर जनक की इस अनुचित उक्ति का प्रतिरोध किया और राम का सङ्केत पाते ही शान्त भी हो गये—

सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेट निकट बैठारे॥

यह लक्ष्मण की नीति का पूर्ण परिपालन का परिणाम है। प्राय: क्रोध में मनुष्य अपना मानसिक सन्तुलन खो देता है, विवेक को भूल जाता है, किन्तु कुशल नीतिज्ञ को समय और स्वामी की आज्ञा का ध्यान रखना पड़ता है। लक्ष्मण ने इसका पूर्णरूपेण निर्वाह किया है। परशुराम को अत्यन्त क्रुद्ध देखकर भी लक्ष्मण ने इसी नीति का आश्रय लिया और परशुराम के क्रोध का सामना इन्होंने क्रुद्ध बनकर किया और राम के क्रोधमिश्रित नेत्रों की भङ्गिमा को देखकर शीघ्र शान्त हो गये—

अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे॥

पुन: लक्ष्मण के परिहास करने पर राम क्रोध–मुद्रा ग्रहण करते हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुनि लछिमन बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम।
गुरु समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम।।

दण्डनीति का पालन करते हुए लक्ष्मण ने शूर्पणखा का नाक–कान काट लिये। शूर्पणखा राम के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखती है, जो उसकी बहुत बड़ी धृष्टता है। राम ने एक बार टालने के लिये उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया, किन्तु लक्ष्मण के नकारात्मक उत्तर से वह क्षुब्ध हो गयी और संस्कारवश उसका वास्तविक स्वरूप प्रकट हो गया। राम का सङ्केत पाते ही लक्ष्मण ने तत्काल उनका आशय समझकर उसके नाक–कान काट लिये। यहाँ स्वामी के सङ्केत की अवज्ञा नहीं की, जो उनकी दण्डनीति के पालन का उदाहरण है। राम ने उसके भयानक स्वरूप को देखकर लक्ष्मण को सङ्केत किया–

सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई।।
लछिमन अति लाघव सो नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहं मनौ चुनौती दीन्हि।।

एक चतुर सेनापति अपने राजा को युद्ध में प्रस्थान करते समय अपनी सेना के सभी अधिकारियों एवं सहायकों को अपनी विजय की घोषणा के लिये सजग करता है। जनक के "कुंअरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय" कहने पर राम–विजय प्राप्त करने अर्थात् धनुष तोड़ने के लिये जब प्रस्तुत हुए तब लक्ष्मण ने अपने पृथ्वी के सभी कर्णधारों को सजग कर दिया–

लखन लखेऊ रघुवंसमनि ताकेउ हर कोदंडु।
पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मंडु।।
दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला।।
राम चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा।।

प्रवर्षणगिरि पर स्थित राम को सीता के लिये व्यथित देख लक्ष्मण क्रुद्ध हो गये और आभास मिला कि राम सुग्रीव के प्रति क्रुद्ध हैं तब तत्काल वीर वेष में सुसज्जित होकर सुग्रीव को दण्ड देने के लिये उद्यत हो गये–

लछिमन् क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना।।

राम लक्ष्मण की भावभङ्गिमा देखकर समझाने लगे और कहा कि सुग्रीव को दण्ड मत देना, उसे भयभीत करके मेरे पास ले आना–

भय देखाइ ले आवहु तात सखा सुग्रीव।।

राम की आज्ञा से लक्ष्मण वानरों को भयभीत करते हैं–

धनुष चढ़ाई कंहा तब जारि करऊँ पुर छार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परन्तु सुग्रीव को भयातुर और शरणागत देख उसके साथ दण्डनीति का व्यवहार न कर, सामनीति से काम करते हुए उसे गले से लगा लेते हैं—

तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा।।

वाल्मीकि रामायण में इस अवसर पर लक्ष्मण सुग्रीव को दण्डनीति का उपदेश देते हुए पाये जाते हैं।[1]

मेघनाद और रावण के साथ युद्ध–स्थल में लक्ष्मण ने दण्डनीति से ही कार्य किया है।

राजनीति में कभी–कभी सेनापति को राजा की आज्ञा को प्रमुख मानकर अपनी इच्छा के विपरीत कार्य करना पड़ता है। लक्ष्मण को भी राम की आज्ञा के अनुसार अपनी इच्छा के विपरीत कार्य करना पड़ा है। सीता के निर्वासन का कार्य राम लक्ष्मण को सौंपते हैं। लक्ष्मण की इच्छा नहीं है, किन्तु उन्हें यह काम करना पड़ता है और उनका मन ग्लानि एवं लज्जा से भर जाता है—

धीर धरि रघुबीर भोरहि लिए लषन बोलाइ।
तात तुरतहि साजि स्यन्दन सीय लेहु चढ़ाइ।
बालमीकि मुनीस आश्रम आइयहु पहुँचाइ।

(गी०, ७/२७/३–४)

तब—

गौने भौनहि बारहि बार परि–परि पाय।
जात जनु रथ चीर कर लछिमन मगन पछिताय।।

(गी०, ७/२१/१)

इस प्रकार हम देखते हैं कि लक्ष्मण की राजनीति रामचरितमानस में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

षष्ठ अध्याय

तुलसी-साहित्य के प्रमुख चरित्र और उनकी दृष्टि में लक्ष्मण का मूल्याङ्कन

- राम
- भरत
- दशरथ
- जनक
- हनुमान्
- विभीषण
- मेघनाद
- रावण
- कौसल्या
- सुमित्रा
- कैकेयी
- सीता
- उर्मिला
- तुलसी-साहित्य के प्रमुख चरित्र और उनकी दृष्टि में लक्ष्मण का मूल्याङ्कन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

षष्ठ अध्याय

तुलसी-साहित्य के प्रमुख चरित्र और उनकी दृष्टि में लक्ष्मण का मूल्याङ्कन

इस अध्याय में विभिन्न पात्रों का चरित्रनिरूपण करते हुए लक्ष्मण के चरित्र का मूल्याङ्कन किया गया है। किसी महाकाव्य में किसी चरित्रविशेष का चारित्रिक वैशिष्ट्य निःसङ्ग न होकर विभिन्न चरित्रों के वैविध्य में प्रासङ्गिक मूल्य रखता है। तुलसीदास ने विभिन्न चरित्रों में, कथा के महत्त्व के अनुसार, उत्कर्ष अथवा अपकर्ष प्रस्तुत किया है। जहाँ कहीं वीररस का प्रसङ्ग उपस्थित करने की बात आयी है वहाँ चरित्र में एक ऐसा उदात्त धरातल प्रस्तुत किया गया है जहाँ न केवल राम, अपितु अन्य सहयोगियों एवं विरोधियों की भी, चारित्रिक विशेषताएँ अपनी पूर्ण प्राञ्जलता के साथ रसोद्रेक के लिये सहज रूप में वर्णित हैं। लक्ष्मण का चरित्र भी विभिन्न चरित्रों से समन्वित है। अतएव यह आवश्यक हो जाता है कि महाकाव्य में किसी एक चरित्र का वैशिष्ट्य अन्य चरित्रों के सन्दर्भ मे प्रस्तुत किया जाय। शैशवावस्था से जीवनपर्यन्त लक्ष्मण के व्यक्तिगत एवं सामाजिक चरित्रोत्कर्ष को प्रस्तुत करने हेतु अन्य चरित्रों का प्रसङ्गानुकूल उल्लेख करना समीचीन समझकर इस अध्याय भें संक्षेप में ही सभी प्रमुख पात्रों की भूमिका प्रस्तुत की गयी है। लक्ष्मण के चरित्र की भी सार्थकता इन्हीं प्रसङ्गों में आकलित हुई। यद्यपि मूलकथा में विभिन्न पात्रों की अन्तर्विरोधी प्रवृत्ति के कारण कतिपय विसङ्गतियाँ दिखलायी पड़ती हैं, जिनका उल्लेख प्रसङ्गानुकूल स्थलों पर इस अध्याय में किया गया है, परन्तु इन विसङ्गतियों में मानसकार ने जो समन्वय प्रस्तुत किया है उससे चरित्र की नाटकीय सृष्टि में आवेगजन्य स्थिति का सर्जन करने में उसे सहायता मिली है। यद्यपि सभी चरित्रों का मूल्याङ्कन प्रस्तुत ग्रन्थ का अभीष्ट नहीं है; परन्तु लक्ष्मण के चरित्र की पूर्ण सिद्धि भी मुख्य चरित्रों के सन्दर्भ प्रस्तुत किये विना सम्भव नहीं थी। इसीलिये इस अध्याय में विभिन्न पात्रों का चारित्रिक मूल्याङ्कन करने की आवश्यकता अपरिहार्य हो गयी।

प्रातःस्मरणीय, कविकुलचूड़ामणि, रामकथामर्मज्ञ, कलिपावनावतार, राम-चरणचञ्चरीक, गोस्वामी तुलसीदास ने अनन्त नित्यानन्दस्वरूप ब्रह्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को भक्तजनों के अभीष्ट कार्य की सिद्धि हेतु निराकार से नराकार राम रूप में अवतरित कराया है, जिसमें निखिल भक्त तथा योगीजन रमण करते हैं। निर्विकार परब्रह्म परमात्मा को अपने चरितनायक के रूप में पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित करके अपने आदर्श की गुरुता से मानों स्वयं अभिभूत हो गये हैं। तुलसीदास के राम परब्रह्म हैं, परमार्थ हैं। वे अविकल हैं, अलख हैं, अनादि हैं, अरूप हैं, परमसच्चिदानन्द स्वरूप हैं; जो भक्तों के कल्याणार्थ, गो–ब्राह्मण की रक्षा के लिये, अधर्म का नाश और धर्म के पुनःस्थापन के लिये मनुज रूप में अवतरित हुए हैं[1]। राम के देवत्वस्वरूप की चर्चा पूर्व स्थलों पर बृहद् रूप से की गयी है, अस्तु। राम के मानव स्वरूप का ही चित्रण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

राम

राम में "रामत्त्व" उनके बालरूप से ही प्रतिबिम्बित होने लगता है। उनका बालरूप कोटिशत कामसदृश लावण्ययुक्त है। शील, रूप, गुण के आगार श्रीराम अगणित अनङ्गों का सौन्दर्य लेकर अवतरित हुए हैं। नयनाभिराम राम के नैसर्गिक सौन्दर्य का नखशिख–वर्णन तुलसीदास ने रामचरितमानस, गीतावली आदि ग्रन्थों में किया है, जो सहृदय व्यक्तियों के हृदय को रस–निमग्नता की असीम अतल गहराई में डुबो देता है। उस राम का सौन्दर्य देखकर मुनि, ज्ञानी, त्यागी सभी विमुग्ध हो जाते हैं–

करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा।।

बाल्यकाल से ही क्षत्रियोचित आयुध धारण करने वाले राम किशोरावस्था में पदार्पण करते ही नयनरञ्जकत्व सौन्दर्य से विभूषित रहे। परम सौन्दर्यमय शरीर पर राजोचित दिव्य वस्त्रों ने उनके रूप–सौन्दर्य में वर्धन किया।

राम का रूप नयनाभिरामत्व (गी०, १/५०) और रक्षकत्व[1] दोनों से परिपूर्ण है। अतः राम शृङ्गारशिरोमणि के साथ वीरशिरोमणि भी हैं। नयनाभिरामत्व के कारण राम "सौन्दर्य–निधि", "विश्व–चितचोर", "लोचन–सुखद–किशोर" हैं। यही कारण है कि इनके रूप–सौन्दर्य को देखकर परब्रह्मनिष्ठ विदेहराज जनक भी उनका सौन्दर्यामृत पानकर, गद्‌गद वाणी से उनका परिचय पाने के लिये आतुर हो गये[1]। जनकपुर के समस्त नर–नारी भी उनके विश्वविमोहक रूपानन्द की उपलब्धि से उल्लसित होकर अपने नयनों को सुफल करने लगे[1]। उस श्रवणगत रूप से ही विश्वमोहिनी सीता आकृष्ट होकर उसको नेत्रों में भर लेने को व्याकुल हो उठीं। उनकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आतुरता एवं दर्शन की अभिलाषा सफल हुई। उन नयनाभिराम के दर्शन लता के पीछे (ओट) से प्राप्त कर उन्होंने उस रूपचन्द्र–माधुरी का दिव्यानन्द अनुभव करने हेतु चकोरी[1] बनने में ही अपना परम लाभ समझा।

धनुष–यज्ञ की रङ्गभूमि में उपस्थित राम ने असम्भाव्य रूप–वैचित्र्य द्वारा सब को उनके भावानुकूल दर्शन कराकर भी अपने नयनाभिरामत्व रूप को प्रतिष्ठित रखा।

राम का विश्वविमोहक रूप विवाहोचित आभरणों द्वारा सन्ध्याकालीन नक्षत्रयुक्त आकाश में चन्द्र की भाँति जगमगा उठा, जनकपुरवासी दुलहा राम को नयनभर निहारने में अपना परम कर्तव्य मानते हैं। इतना ही नहीं वह रूप उनका प्राण सा ही बन जाता है[1]। जनकपुरवासी की भाँति अवधपुरवासी[1] भी उस रूप–सुधा–माधुरी के शैत्य, और कल्याणत्व का अनुभव करते हैं[1]।

वनगमन के अवसर पर राम के मुनिवेष का वर्णन रामचरितमानस में आता है। साधारणजन की भाँति जीवन की कठिनतम परिस्थितियों में उनके रूप–सौन्दर्य में मलिनता नहीं, अपितु अधिक निखार ही आया है। राम की सुषमा, ग्रीष्म में म्लान होने वाले सुमनों की भाँति नहीं, अपितु सदाबहार कुसुम की भाँति है जो अयोध्या में, जनकपुर में, वनमार्ग में सभी स्थलों पर दर्शकों का मन आह्लादित करती है।

सात्त्विकगुणसमन्वित उच्च वर्ग या सामान्य ग्रामीण के अतिरिक्त रामचरितमानस के अन्य वर्ग के पात्रों पर भी इस रूप का सम्यक् प्रभाव पड़ा है। तमोगुणप्रधान रिपु–भगिनी शूर्पणखा भी उसी रूप पर आसक्त हो गयी और अपने नासिका–छेदन के बाद भी वह उनका रावण से "सोभाधाम राम अस नामा" कहकर ही परिचय देती है। खर,दूषण युद्धस्थल में रामरूप[1] को देखकर चकित हो गये और उनकी सुन्दरता पर इतने मुग्ध हो गये[1] कि "बध लायक नहिं पुरुष अनूपा" कहकर उन्हें सम्पूर्ण वैरभाव भूल जाना पड़ा।

सत्यसन्ध एवं दृढ़व्रत राम त्यागवीर, दयावीर, विद्यावीर, धर्मवीर आदि धाराओं को अपने में प्रवाहित करते हुए "रघुवीर इति ख्यातः सर्ववीरोपमक्षणः" हैं। यहाँ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की बहुत सुन्दर उक्ति है–

"भगवान् का जो प्रतीक तुलसीदास ने लोक के सम्मुख रखा है, भक्ति का प्रकृत आलम्बन उन्होंने प्रस्तुत किया है, उसमें सौन्दर्य, शक्ति और शील–तीनों विभूतियों की परा काष्ठा है। सगुणोपासना के ये तीन सोपान है, जिन पर हृदय क्रमशः टिकता हुआ उच्चता की ओर बढ़ता है"[१८]।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राम के वीरत्व की झाँकी प्राप्त करने के लिये उनकी वीर मुद्रा की तेजस्विनी झाँकी का अवलोकन आवश्यक है। उनका वीरत्व मुनिभयहारक, भूभारनाशक, भवभयभञ्जक, दुष्टनिकञ्जक, अरिदलगञ्जक, गो–ब्राह्मणरक्षक है। युद्ध–स्थल में कुपित राम की शक्ति और शौर्य का वर्णन तुलसीदास ने जिस रूप में किया है, उससे राम का शक्तिरूप स्पष्ट हो जाता है। किन्तु उनके वीर रूप में ईश्वरत्व और अलौकिक चमत्कार के कारण उनकी वीरता में भी ईश्वरता का आभास होने लगता है, जिससे शौर्य की न्यूनता हो जाती है। राम के वीर रूप का चरमतम उत्कर्ष कुम्भकर्ण और रावणवध के समय अवलोकनीय है, जब अपने अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित राम वीर वेष में अरिदलन हेतु प्रस्थान करते हैं। परन्तु भक्तिरस से पूर्णतः आप्लावित तुलसीदास ने बीभत्स दृश्यों में भी मनोहर रूप का दर्शन कराकर अपने भक्ति रूप की प्रतिष्ठा की है।

राम का चरित्र विनयशीलयुक्त सदाचार, शिष्टाचार से पूर्ण प्रणति–निवेदनादि भाव से परिपूर्ण है। गुरु से आज्ञा माँगकर जनकपुर परिभ्रमण के लिये जाना[१], विलम्ब होने पर त्रस्त होना[१], उनके शिष्टाचार के स्पष्ट निदर्शन हैं। गुरु को प्रणाम कर सङ्कोचसहित गुरु के सामने बैठना, मुनि की आज्ञा से सन्ध्या–पूजन करना, कथाश्रवण करना[१], चरण–कमल दबाना, गुरु–आज्ञा पाकर ही सोने जाना, गुरु से पूर्व उठना, गुरु आज्ञा पाकर उनकी पूजा के लिये पुष्प–चयन हेतु जाना आदि गुरु के प्रति मर्यादा, शिष्ट व्यवहार तथा सेवकधर्म के ज्वलन्त उदाहरण हैं[१]।

एक आदर्श शिष्य के रूप में हृदय की परमकोमलतम गोपनीय शृङ्गार भावना भी राम अपने गुरु से नहीं छिपाते[१] और विना गुरु की आज्ञा के वे अपने वीरत्व का प्रदर्शन भी नहीं करते[१]।

राज्याभिषेक की सूचना व तदनुरूप शिक्षा देने के लिये गुरु वशिष्ठ राम के भवन में पदार्पण करते हैं। उनकी पूजा, अर्चना, स्वागत–सत्कार, षोडशोपचार सहित सविनय नम्र वचनावली, आज्ञापालन की जिज्ञासा आदि प्रत्येक व्यवहाररश्मि उनकी व्यवहारकुशलता, शिष्टाचार एवं सेवाधर्म की प्रकाशिका हैं।

सुनु जननी सोई सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

कहकर राम ने अपने को बड़भागी तथा दुर्लभ को सुलभ रूप चरितार्थ कर मातृभक्ति का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत कर दिया। स्वयं ही नहीं, अपितु अपने सतत अनुगामी लक्ष्मण[१] तथा अपनी अभिन्नहृदया पत्नी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सीताजी[1] को भी इसी आदर्श की शिक्षा दी तथा उसको ही अपना परम धर्म माना[1]। विधि–प्रेरिता वनवासदात्री विमाता कैकेयी के कठोर वरदान के प्रसङ्ग पर आजीवन कभी ध्यान ही न दिया और कभी पश्चात्तापाग्निदग्धा माता कैकेयी को कोई ग्लानि–अनुभूति न हो, अतः व्यवहारकुशल राम ने श्रद्धार्पण में, अभिवादन में उनको ही प्रथम स्थान दिया[1]। लङ्का से प्रत्यावर्तन के पश्चात् ''प्रभु जानी कैकेयी लजानी''——राम सर्वप्रथम माता कैकेयी से मिलने गये। कैकेयी की कुटिलता राम की सरलहृदयता व मातृ–भक्तिरूपी प्रकाश में तिरोहित हो गयी और अवशेष भाग को पश्चात्तापाग्नि[1] में दग्ध कर ''सरलहृदया'' ''भगति मति भेई'' बन गयी।

मातृ–प्रेम की भाँति पितृभक्ति राम के जीवन का एक आदर्श है। अपने विचारों को स्वयं उन्होंने निम्नाङ्कित शब्दों में व्यक्त किया है–

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ।।

राम पितृ–प्रेम की सुलभता से पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को सुलभ मानते हैं–

चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके ।।

रामचरितमानस में पितृ–अनुरागी राम का अत्यन्त संयत और गम्भीर रूप में चित्रण हुआ है। पिता की मृत्यु के बाद भी आज्ञापालन में तत्पर राम भरत के प्रेम–रस से आप्लावित होने पर भी अपने पिता की आज्ञा के पालन हेतु भरत की विनती की अवज्ञा कर देते हैं और विवेचनात्मक एवं तार्किक रीति से भरत का स्नेहानुरोधं अस्वीकार कर देते हैं।

अपने भ्राता को ''द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं'' मानने वाले राम का भ्रातृ–प्रेम शीर्ष पर स्थित है। सभी भाइयों के प्रति राम का हृदय अपार स्नेह, त्याग, करुणा, अनुराग, कर्तव्यभावना आदि उत्तरोत्तर भाव–रत्नों का आगार था। एक माता की सन्तान न होने पर भी आदर्श सहोदर भाव को चरम सीमा पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय राम को ही है। बालक्रीड़ा से लेकर राजा रूप में प्रतिष्ठित होने तक यावज्जीवन इस भ्रातृप्रेम की दिव्य ज्योति कहीं भी विषम परिस्थितियों, सङ्घर्षों के अन्धड़ से न तो तिलमिला सकी और न मन्द ही हो सकी[१७]।

राम के भ्रातृप्रेम के साथ ही इनका सरल सख्य–प्रेम भी प्रशंसनीय है। राज्याभिषेक के बाद भी इनके हृदय में अपने सखाओं के प्रति व्यवहार पूर्ववत् बना रहा। गुंह निषाद के प्रति इनका सख्य–प्रेम एक आदर्श उपस्थित करता है। यद्यपि गुह अपने को राम का भक्त मानता है, किन्तु एक बार 'सखा' कह देने से राम ने उसके साथ सखा–धर्म का निर्वाह किया है और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे भरत तथा लक्ष्मण की भाँति उसे सम्मान अर्पित करते रहे हैं। इसी भाँति विभीषण शरणागत भक्त बनकर आता है, किन्तु उससे सच्ची मित्रता कर यथाशक्ति उसकी सहायता करते हैं। वानर जाति के सुग्रीव को अग्नि की साक्षी में मित्र बनाकर उसको यथोचित सम्मान देते हैं। इसके अतिरिक्त जटायु तथा शबरी आदि को भी जो सम्मान राम ने दिया वह अमर कथा बन गयी है।

भरत

प्रनवउं प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ॥

सात्त्विक प्रवृत्तियों के उन्नायक भरत अनेक सङ्घर्षमयी परिस्थितियों की कसौटी पर अपने अदम्य साहस, अटूट धैर्य एवं अविकम्पित शक्ति के द्वारा पूर्णरूपेण खरे उतरते हैं। प्रलोभनों का विशाल जाल चतुर्दिक् फैला हुआ है, दशरथ–मरण, राम वनवास, आत्मिक ग्लानि, जनसाधारण की उनके प्रति आशङ्कित दृष्टि इत्यादि असङ्ख्य एवं विशाल गर्जन करती हुई ऊर्मियों के आवर्त में भी भरत का धैर्य, भक्तियुक्त एवं कर्तव्यनिष्ठरूप शैल की भाँति अडिग एवं अचल है।

वे पावनता की पराकाष्ठा एवं निष्काम कर्मयोग की ज्वलन्त ज्योति–स्वरूप हैं। अपने अटूट धैर्य, संयम एवं निःस्पृह अन्तःकरण द्वारा आपने सभी विषम परिस्थितियों पर विजय प्राप्त की। रामचरितमानस में भरत–चारित्र के विकास के चार स्थल प्रमुख हैं–कैकेय देश से प्रत्यावर्तन पर भरत की दशा, चित्रकूट–प्रसङ्ग, अवध में निवास की स्थिति तथा श्रीराम के अयोध्या लौटने पर उनका अप्रतिम रूप। सभी स्थलों पर भरत का चरित्र अलौकिक तेज एवं गाम्भीर्य से परिपूर्ण हैं। मातुल–गृह से लौटने पर, अयोध्या की शून्यावस्था देखकर, राम–वन–गमन और पिता दशरथ का मरण सुनकर तथा इन दोनों का कारण कैकेयी की कुविचारपूर्ण याचना को जानकर "हेतु अपनपौ जानि जिय थकित रहे धरि मौनु" की जड़ अवस्था को प्राप्त हो गये। फिर "जननी तू जननी भई विधि सन कछु न बसाइ" कहकर अपनी भाग्यवादिता एवं असमर्थतामय मर्यादित पश्चात्ताप करके ही रह जाते हैं। उनका मन गम्भीरता, संयम एवं मर्यादाशीलता के बन्धन में अन्दर ही अन्दर ग्लानिमय अग्नि में दग्ध होने लगता है–

मो समान को पातकी बादि कहउं कछु तोहि।

अत्यधिक वेदना लेकर व्यथित हृदय से कौसल्या की गोद में गिर पड़ना इनके हृदय की निष्कपटता का द्योतक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वर्ण को केवल एक बार अग्निपरीक्षा देनी पड़ती है, परन्तु भरत के जाज्वल्यमान रूप को तो तीन बार परीक्षा देनी पड़ी। निष्कलङ्क चन्द्रसम भरत अनेक व्यङ्ग्य वाणों से आहत किये गये और उनमें कलङ्कारोपण किया गया। परन्तु अविकम्पित धैर्य साहस एवं अटूट लगन ने उन्हें विश्वविश्रुत गाथासम्पन्न बनाकर उनका चरित्राङ्कन सर्वोपरि कर दिया।

गुरु वशिष्ठ, मन्त्रिगण एवं माता कौशल्या द्वारा किये गये राज्यग्रहण के आग्रह को अस्वीकार कर राम से मिलने के लिये आतुर भरत वन जाने का निश्चय कर लेते हैं। मार्ग में राम के परमभक्त निषादराज गुह को आशङ्का हुई[1] और भरत पर शङ्कित होकर वह युद्ध करने की तैयारी करने लगा। महा अनिष्टकारी स्थिति उत्पन्न होने् वाली थी, किन्तु एक ''छींक''[1] अस्वीकृति का रूप धारण करके निषादराज को मौन कर देती है और भेंट द्वारा शिष्ट मौन परीक्षण करने लगता है[1]। भरत का शील उस समय पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है जब भरत भक्ति के सरस भावों से ओतप्रोत होकर निषाद को आलिङ्गनबद्ध कर लेते हैं। सतत जागरूक गुह की सतर्कता सदैव भरत को सरल, स्निग्ध, भ्रातृवत्सल एवं निष्कपट रूप में ही पाती है।

भरत के प्रेमरूप बिन्दु में अगाध सिन्धु का दर्शन हमें चित्रकूट–सभा में होता है। चित्रकूट की पहली सभा भरत, गुरु वशिष्ठ तथा अन्य मुनिगण, परिजनों के समक्ष होती है जिसमें ''केहि विधि अवध चलहि रघुराउ'' पर विचार किया जाता है। सभा में अत्यन्त सङ्कोचशीलता से भरत अपना प्रस्ताव रखते हैं कि गुरुजी यही निर्धारित कर दें कि–

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहिं लखन सीय रघुराई ॥

गीतावली में भरत स्वयं राम से विनय करते हैं कि आपके बिना मैं उसी प्रकार जी रहा हूँ जिस प्रकार एक सर्प अपनी मणि को खोकर जीवित रहता है। इसलिये मुझे वन में रहने की आज्ञा देकर स्वयं आप अयोध्या को लौट जायँ; क्योंकि मुझ पर लगे कलङ्क को धोने का यही सर्वोत्तम मार्ग है–

मेरो जीवन जानिय ऐसोइ जैसो अहि जासु गई मनि फन की।
मेटहु कुलकलंक कोसलपति आज्ञा देहु नाथ मोहिं बन की ॥
(गी०२/७१/३)

और जीवन भर का वनवास माँगते है–

कानन करहु जनम भरि बासू। एहि ते अधिक न मोर सुपासू॥

पुनश्च–

सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई ॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुनासागर कीजिअ सोई ॥

भरत का यह भव्य स्नेह परिप्लावित रूप देखकर सभी के मन में सहानुभूति हो उठी। कौसल्या, सुनयना, जनकादि सभी लोग भरत के चरित्र की प्रशंसा करने लगे। जनक ने तो भरत के शील–स्वभाव, सदाचारादि को दिव्य विशेषणों से समन्वित देखा–

सोन सुगन्ध सुधा ससि सारू।

अनेक ताप से तप्त भरत का चिर प्रकाशमान प्रेम ही स्वर्ण है, भ्रातृ–स्नेह उस स्वर्ण की सुगन्धि है।

चित्रकूट की दूसरी सभा में राम को पिता के चरणों की सौगन्ध दिलायी गयी कि जो वशिष्ठ और जनक कहेंगे वही राम को करना पड़ेगा। राम को प्रतिज्ञा–भङ्ग करने की आज्ञा देने का किसी में साहस नहीं हुआ। अन्त में सम्पूर्ण सभा के मौन को अपनी विनयावलियों से भरत ने ही तोड़ा। सारी सभा स्नेह–शिथिल हो गयी। भरत की नीतियुक्त विनय से सभासद प्रेमरत विभोर हो उठे। उसी समय राम ने सरस भावधारा में ही कर्तव्य–सूर्य की किरणें प्रस्फुटित कर भरत को कुल–धर्म की रक्षा का आदेशालोक प्रदान किया। भरत प्रभु के समक्ष हठपूर्वक अनुरोध कर विरोध नहीं कर सके।

चित्रकूट की तृतीय सभा में भरत ने अत्यन्त विनीत भाव से गुरुजनों की आज्ञा लेकर अपनी आधारस्वरूप चरणपादुकाएँ ग्रहण कर विदा ली जिसे राम ने स्वयं अपनी कृपा के प्रतीक रूप में दिया। अयोध्या लौटकर नगर की सुव्यवस्था का प्रबन्ध कर पादुका को सिंहासनस्थ करके स्वयं नन्दिग्राम में कुटी बनाकर रहने लगे। एक संन्यासी शासक के रूप में प्रभु की चरणपादुका को सिंहासनस्थ करके अपने आदर्श चरित्र का भरत ने जो परिचय दिया उस त्याग और कर्तव्यपरायणता को अन्यत्र ढूँढ़ना या उसे पाना असम्भव है।

इसके अतिरिक्त भरत–चरित्र के दो प्रमुख दृश्य विशेष रूप से प्रभावशाली हैं–लक्ष्मणमूर्च्छा के पश्चात् सञ्जीवनी बूटी लेकर लौटते समय भरत द्वारा हनुमान् को शरसन्धान कर गिरा देना और वनवास की अवधि समाप्त होने पर राम–प्रतीक्षा में भरत का आतुर तथा व्याकुल होना, इन दोनों स्थलों पर जो चित्र उपस्थित होता है वह मानस–पटल पर एक अमिट छाप छोड़ देता है।

यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाय तो भरत–चरित्र में कर्तव्य–पालन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की परिसीमा है। भरत का राजत्याग राम के राज्यत्याग से अधिक आदर्श है। अतः भरत का चरित्र कहीं राम के समान तो कहीं राम से उदात्त बन पड़ा है। भरत–चरित्र की महिमा अवधनिवासियों को यह कहने के लिये विवश कर देती है–

लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं ॥
दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू ॥

दशरथ

रामकथा में दशरथ का चरित्र जटिल समझा जाता है, क्योंकि दशरथ– चरित्र में बहुत अधिक अन्तर्विरोध तथा असङ्गतियाँ दिखलायी पड़ती हैं। पुत्र–प्रेम और पत्नी–प्रेम में मग्न किन्तु किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ दशरथ का सत्य प्रेम भावुक हृदयस्पर्शी चित्र हमारे सामने अधिक स्पष्ट रूप से आता है। वे इस किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ अवस्था में भी वे दयनीय भावुक कर्तव्य कठोर बने से दिखायी देते हैं[३९]। रामचरितमानस में दशरथ–चरित्र के उज्ज्वल पक्ष का संकेतमात्र किया गया है–

अवधपुरी रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाउं ॥
धरमधुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदय भगति मति सारंगपानी ॥

शेष विवरण हमें उनकी वृद्धावस्था का ही प्राप्त होता है, किन्तु उपर्युक्त संकेत ही दशरथ के पूर्व–चरित्र की उदात्तता के लिये पर्याप्त है। शेष जीवन के चित्रण को तुलसी ने अधिक मर्यादित एवं भक्ति के आवरणों से ढक दिया है, क्योंकि वृद्धावस्था में पुत्र का न होना, उसके लिये चिन्तित होना और वृद्धावस्था में उत्पन्न हुए पुत्रों के प्रति अत्यधिक स्नेह होना मानवोचित स्वाभाविक गुण है। उनके पुत्र–प्रेम में ईश्वरीय ज्ञान अन्तर्निहित है; क्योंकि मानस के अनुसार दशरथ, कश्यप और स्वायम्भुव मनु के अवतार हैं। पुत्रों के जन्म के समय ही दशरथ को विश्वास हो गया था कि भगवान् उनके घर पुत्ररूप में अवतरित हुए हैं, अतः उनकी भगवद्विषयक धारणा राम के प्रति विद्यमान थी–

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना ॥
जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरें गृह आवा प्रभु सोई ॥

दशरथ की भक्ति सुतविषयक थी, अतः उनकी आराधना में "वात्सल्यभाव" प्रधान है।

राजा दशरथ के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनका हृदय अत्यन्त उदार और सम्पन्न था। हृदय की विशालता, सम्पन्नता और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उदारता के कारण ही दशरथ का जीवन सङ्घर्षमय हो गया और वे स्वयं एक जटिल समस्या में जकड़े गये। अपने भावुक हृदय की प्रेमातिशयता के कारण उन्हें अपने प्राणों का बलिदान भी कर देना पड़ा। अपने हृदय की इस प्रेमातिशयता के कारण ही वे कैकेयी पर अत्यधिक अनुरक्त थे, जिसके कारण उनके विषय में कामुकता, स्त्री–प्रेमादिक मिथ्या धारणाएँ बहुचर्चित हो गयीं। किन्तु यदि हम वास्तविकता को ढूढ़ें तो उसमें काव्यात्मकता अधिक दिखलायी पड़ेगी, वास्तविकता कम।

वाल्मीकि रामायण में राजा दशरथ की कामुकता का बहुत बृहद् रूप में चित्रण किया गया है, किन्तु रामचरितमानस में उनकी विषयासक्तवृत्ति का चित्रण मर्यादित ढंग से निरूपित हुआ है। यहाँ दशरथ की कामुकता नहीं, जो कुछ हो रहा है, कामदेव का प्रताप है–

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ ॥
सुरपति बसइ बाहंबल जाकें। नरपति सकल रहहिं रुख ताकें ॥
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥
सूल कुलिस असि अंगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे॥

दशरथ के निर्मल पुत्र–प्रेम से उनका सत्य–प्रेम अत्यन्त उज्ज्वल है। पत्नी–प्रेम के कारण उन्हें पुत्र–प्रेम से वियुक्त सत्य–प्रेम की पार्श्वभूमि पर स्थिर होना पड़ा। सांसारिक सुखों का, अपने सर्वस्व का समर्पण दशरथ ने कर्तव्यपूर्ति की बलिवेदी पर चढ़ा कर अपने चरित्र को महान् बना दिया। दशरथ के चरित्रोत्कर्ष के ये सोपान अत्यन्त मानवीय, स्वाभाविक एवं उदात्त हैं। कैकेयी से दशरथ ने कहा कि संसार में सत्य ही सब कुछ है, अतः मैं सत्य को दृढ़ रखने के लिये अपने शरीर का भी त्याग कर सकता हूँ–

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुं बरु बचनु न जाई ॥
नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥

कैकेयी ने स्वयं उनके सत्यप्रेम को स्वीकार किया है–

देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं॥

दशरथ के इस सत्य–प्रेम की प्रशंसा वशिष्ठ, भरद्वाज ने भी की है। वशिष्ठ ने सबके समक्ष दशरथ के सत्यव्रत के विषय में संकेत करते हुए कहा–

भूप धरमब्रतु सत्य सराहा। जेहिं तनु परिहरि प्रेम निबाहा।

भरद्वाज ने भी अपना ऐसा ही विचार व्यक्त किया है–

राउ सत्यब्रत तुम्हहि बोलाई। देत राजु सुखु धरमु बड़ाई ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राम ने भी अपने पिता के सत्य–प्रेम की प्रशंसा स्वयं की है–

राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी।।

उपर्युक्त उद्धरणों से इस तथ्य का स्पष्टीकरण हो जाता है कि दशरथ में सत्य के प्रति इतनी प्रगाढ़ निष्ठा थी कि उसको स्थिर रखने के लिये वे पुत्र–प्रेम और पत्नी–प्रेम का तृण के समान त्याग कर सकते थे। सत्यप्रेम के कारण ही उन्हें पुत्र को वन भेजकर स्त्रैणता का अपयश लेना पड़ा और पुत्रवियोग में अपने शरीर का परित्याग करना पड़ा। रामचरितमानस में तुलसीदास ने दशरथ के सत्यप्रेम की स्वयं प्रशंसा की है–

बंदउँ अवध भुआल, सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ।।

जनक

विदेहराज तिरहुतनरेश जनक एक धर्मात्मा, परम तेजस्वी सत्यवक्ताओं (सत्यनिष्ठों) में श्रेष्ठ, परमतत्त्वज्ञ, धर्मध्वज, नीतिनिपुण एवं असाधारण ज्ञानी होने के साथ–साथ परम गूढ भक्त के रूप में चित्रित हुए हैं–

प्रनवउं परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू ।।
जोग भोग महं राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ।।

रामचरितमानस में जनक का चरित्र दो बार आता है। वस्तुतः तुलसीदास ने जनक को वाल्मीकि रामायण से ग्रहण करके उनके चरित्र का विकास, स्वतन्त्र रूप से किया है। धनुषयज्ञ के अतिरिक्त चित्रकूट में जनक को उपस्थित कराकर तुलसीदास ने रामचरितमानस की कथा में नयी परम्परा जोड़ दी है, जिसके फलस्वरूप कवि ने अपनी मौलिक कल्पना का विस्तार करके एक भारतीय सामाजिक परम्परा प्रतिष्ठित कर दी है। राजा दशरथ की मृत्यु के बाद उनके पुत्रों की कोई व्यवस्थित नीति का निर्धारण नहीं हो सका है। इसलिये दोनों परिवारों में श्रेष्ठ होने के कारण जनक चार दिनों तक चित्रकूट से लौटकर अयोध्या में ठहरते हैं और अयोध्या की सारी व्यवस्था का समुचित प्रबन्ध करके तब जनकपुर लौटते हैं[1]। इस प्रकार जनक की पारिवारिक उत्तरदायित्वपूर्ण भावना को दरसा कर तुलसीदास ने समाज को एक नयी दृष्टि दी, जिसके कारण मानस की लोकप्रियता और उपयोगिता में वृद्धि हो जाती है।

जनक के चरित्र का आध्यात्मिक पक्ष सामाजिक पक्ष से अधिक गौरव और गरिमा से युक्त है। उनमें ज्ञानयोग, राजयोग एवं भक्तियोग की त्रिवेणी तरङ्गायित होती हुई दर्शक–हृदय को पावन एवं रसमय कर देती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जनक का प्रथम पक्ष एक कुशल, सफल, ऐश्वर्यशाली, नीतिनिपुण, प्रजावत्सल राजा का है और द्वितीय अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण पक्ष तत्त्वज्ञानी, ज्ञानशिरोमणि, योगिराज का है। अतः उनका सम्पूर्ण चरित्र भोग और योग के मध्य पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होता है। जनक ब्रह्मानन्द प्राप्त कर चुके हैं, किन्तु राम के प्रथम दर्शन के साथ ही उनका ज्ञान भक्तिरस की सरस धारा में प्रवाहित हो उठता है और उनके मन में उस प्रेमानन्द के समक्ष ब्रह्मानन्द तुच्छ ज्ञात होने लगता है–

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा।।

इस प्रकार जनक–चरित्र की यह विशेषता है कि ज्ञान की शुष्क साधना के अन्तर्गत भक्ति की प्रेमरसधारा को उन्होंने स्वयं प्रवाहित किया और उस धारा में स्नान करने वाले उन अनेक प्राणियों को सुख मिला जो इनके सम्पर्क में आये।

जनक का व्यावहारिक पक्ष भी प्रशंसनीय है। विवाहोत्सव में आये हुए लोगों के साथ शिष्टाचारयुक्त व्यवहार के कारण जनक अयोध्यावासियों के लिये आदर के पात्र बन गये। गुरुजनों की अभ्यर्थना[1], दशरथ के स्वागत–सत्कार की अनुपमेयता[1] तथा सबके प्रति यथोचित स्नेह, शील, सदाचार का प्रदर्शन[1] उनके शिष्टाचार को प्रदर्शित करता है। उनके इस मृदुल व्यवहार की प्रशंसा स्वयं राजा दशरथ को करनी पड़ी–

जनक सनेहु सीलु करतूती। नृपु सब भाँति सराह बिभूती।।

सभी पुरवासियों के हृदय में तो श्रद्धा के भाव उमड़ ही पड़े–

सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी।।

सांसारिक जीव में वे एक भावुक पिता हैं। सीता की विदाई के समय उनका हृदय सांसारिकता के बहुत समीप आ गया और उनके हृदय से सीता के प्रति स्रवित वात्सल्यप्रेरित प्रेमोद्गार का दृश्य अत्यन्त मनोरम और हृदय–स्पर्शी बन गया। एक ओर जहाँ उनका हृदय दृढ़ था वहीं दूसरी ओर मृदु भी था। सीता को विदा करते समय जनक की विह्वलता दर्शनीय है–

बंधु समेत जनकु तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए।।
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी।।

अपनी पुत्री को वनवासिनी तपस्विनी के रूप में देखकर उनका हृदय सांसारिक पिता की भाँति व्यथित नहीं होता, परन्तु सीता का त्याग देखकर उन्हें पूर्ण सन्तोष होता है और अपनी पुत्री की सराहना करते हुए कहते हैं–

पुत्रि पवित्र किए कुल दोउ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजा जनक को प्रेमयोगी, कर्मयोगी और ज्ञानयोगी के रूप में राम ने सम्मान देकर पिता, विश्वामित्र और वशिष्ठ के समान ही समादृत किया है–

करि बर बिनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक बसिठ सम जाने।।

हनुमान्

रामचरितमानस में तुलसी ने हनुमान् के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का वर्णन नहीं किया। उनके अनुसार हनुमान् का सम्पूर्ण व्यक्तित्व राममय है–

महाबीर बिनवउं हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना।।
प्रनवउं पवनकुमार, खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर।।

अतः हनुमान् मन, कर्म और वाणी से राम के अनन्य भक्त, "अतुलित–बलधाम" एवं एक सफल कार्यसम्पादक है। मानस में उनके सम्पूर्ण गुणों का चित्रण निम्नोक्त प्रकार से किया गया है–

अतुलितबलधामस्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि।।

रामचरितमानस के हनुमान्, तुलसीदास की भक्ति के कारण सम्पूर्ण भक्ति के परमआदर्श लक्षणों से समन्वित होकर स्वयं आराध्य हो गये हैं। तुलसीदास के अनुसार हनुमान् साधारण वानर न होकर साक्षात् शङ्कर के अवतार हैं–

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरैं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेह बस बानर भे हनुमान।।
जानि रामसेवा सरस, समुझि करब अनुमान।
पुरुखा ते सेवक भए, हर ते भे हनुमान।।

(दोहावली, १४२–१४३)

मानस में हनुमान् के प्रारम्भिक चरित्रों का अभाव है। राम के सम्पर्क में आने पर ही प्रभु के कार्यों की सम्पन्नता में इनके चरित्र का बुद्धि, बल, विवेक, पराक्रम आदि का चित्रण मिलता है। अतुल प्रतापी हनुमान् का प्रताप कई स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है। समुद्रोल्लङ्घन, अशोकवाटिका–विध्वंस, लङ्कादहन, मेघनाद से युद्ध, कुम्भकर्ण को मुष्टिका–प्रहार द्वारा धराशायी कर देना आदि ऐसे प्रसङ्ग हैं, जहाँ हनुमान् का पराक्रम परिलक्षित होता है। अत्यन्त दुष्कर कार्य ही हनुमान् के लिये सौंपा गया है। हनुमान् द्वारा किये गये श्रेष्ठ कार्यों से स्वयं राम भी उपकृत हैं और हनुमान् के प्रति उनके हृदय के भाव स्वतः उमड़ पड़ते हैं–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हिय लाए।
––– ––– ––– –––
सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करों का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउं करि बिचार मन माहीं।।

स्वयं रावण भी उनके बल एवं वीरता की प्रशंसा करता है–

..............................। है कपि एक महाबल सीला।।

अतः हनुमान् एक ऐसे प्रतिभासम्पन्न, तेजस्वी, बलशाली पात्र हैं जिनकी प्रशंसा, राम, सीता, सुग्रीव, रावण सभी करते हैं। बालि और सुग्रीव तो महाबली थे ही, हनुमान् उनसे भी श्रेष्ठ बली थे। समुद्रोल्लङ्घन के समय उनका वास्तविक तेज प्रकट होता है–

कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुं अपर गिरिन्ह कर राजा।।

वे "पवनतनय बल पवन समाना" हैं और "बुधि बिबेक बिग्यान निधाना" भी हैं। सूर्य से शिक्षा ग्रहण करने के कारण वे तीक्ष्ण एवं प्रखर बुद्धि वाले हैं। शक्ति के सदृश बुद्धि का होना एक महान् योग्यता का द्योतक है। सम्यग्रूपेण शिक्षा ग्रहण करने के कारण हनुमान् अनेक विद्याओं के ज्ञाता और महान् विवेकी हैं, तत्त्वज्ञ, व्यवहारज्ञ, रहस्यों के उद्घाटनकर्ता एवं नीतिज्ञ हैं। कञ्चन और कामिनी में लिप्त, रामकार्य विस्मृत कर देने वाले सुग्रीव को एक नीतिज्ञ के रूप में उसको अपने कर्तव्यों के प्रति ध्यान दिलाना उनके चरित्र का एक उज्ज्वल पक्ष है–

इहां पवनसुत हृदय बिचारा। राम काजु सुग्रीव बिसारा।।
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा।।

मानस में कई स्थल ऐसे हैं, जहाँ पर हनुमान् के बुद्धि–बल की प्रशंसा की जा सकती है। इनमें विभीषण से प्रथम परिचय–प्राप्ति, कालनेमि को समयोचित दीक्षा–ज्ञान, सुबेल तट पर चन्द्रमा की कालिमा के विषय में मौलिक विचार तथा राम के गुण–वर्णन द्वारा सीता का ध्यान आकृष्ट करना आदि स्थल विशेष दर्शनीय है। चन्द्रमा की कालिमा के प्रति राम की जिज्ञासा का समाधान हनुमान् के विवेक और बुद्धिमत्ता का परिचायक है–

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तब मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास।।

राम के अनन्य भक्त हनुमान् प्रत्येक कार्य प्रारम्भ करने से पहले राम का स्मरण अवश्य करते हैं। रामचरितमानस में कई स्थलों पर इसका स्पष्टीकरण किया गया है–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राम चरन सरसिज उर राखी।

— — — — — —

चलेउ हरषि हिय धर रघुनाथा।

राम में उनकी अटल भक्ति और प्रीति है। अपने आराध्य राम से सदा वे इसी भक्ति और प्रीति की याचना भी करते हैं। राम के अतिरिक्त किसी से न तो कभी वे याचना करते हैं और न कभी किसी को मान्यता देते हैं। उनके गुरु राम हैं और उन्हीं से वे गुरुमन्त्र भी ले चुके हैं–

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।

हनुमान् का सम्पूर्ण चरित्र मर्यादापूर्ण है। हनुमान् के चरित्र में विनम्रता, निरभिमानता, दीनता, वाणी की मनोहारिता, कृतज्ञता आदि सत्त्वगुण उनकी महत्ता में मणिकाञ्चन–संयोग उपस्थित कर देते हैं। अणिमा, महिमादि सिद्धियों से युक्त, नैतिक, धार्मिक एवं नैतिक धर्मों से समन्वित हनुमान् देवतुल्य हैं।

समस्त सेना के एकमात्र आधार, सेना के प्रमुख तथा वानर सैन्य को सतत प्रोत्साहन एवं प्रेरणा प्रदान करने वाले हनुमान् का अप्रतिम चरित्र वस्तुतः अनुकरणीय है।

विभीषण

विभीषण के चरित्र का मूल्याङ्कन करते समय उनके जीवन के तीन पक्षों पर सम्यक् दृष्टिपात करना परम आवश्यक प्रतीत होता है, जिनमें प्रथम पक्ष है उनकी कुटिल राजनीति। विभीषण राजनीति के पण्डित हैं। अतः सदा अनुकूल मन्त्रणा से दोनों पक्षों को समझाते रहे। रावण की सभा में सदा अनीति के प्रति संकेत करते रहे। मेघनाद द्वारा नागपाशबद्ध हनुमान् को रावण के आदेशानुसार मारने के लिये उद्यत राक्षसों को समझाते हैं कि "दूत का वध" नीति विरुद्ध है।

सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए।
नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता।।

विभीषण अपने भ्राता रावण के सच्चे हितैषी थे। रावण पर आने वाली विपत्तियों का आभास उन्हें हो चुका था, अतः रावण को सच्ची राजनीति की शिक्षा वे देते हैं–

अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा।।

— — — — — — — — — — — —

जौ कृपाल पूछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउं हित ताता।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।।
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद की नाईं।।

विभीषण की नीति का सम्मान रावण का मन्त्री माल्यवन्त भी करता है, अतः वह भी उसका महत्त्व रावण को समझाता है कि आप विभीषण की बातें मान लीजिये; क्योंकि–

तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन।।

रावण माल्यवन्त की बातों की उपेक्षा करता है, लेकिन विभीषण रावण को कैसे त्याग सकते हैं? वे बार–बार रावण के हित की कामना से नीति का उपदेश देते हैं–

सुमति कुमति सब के उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं।।
जहाँ सुमति तहं संपति नाना। जहाँ कुमति तहं विपति निदाना।।

राम ने स्वयं विभीषण की नीति की प्रशंसा की है। रावण से तिरस्कृत होकर राम की शरण में आये विभीषण से स्वयं राम प्रश्न करते हैं–

कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा।।
खल मंडली बसहु दिनु राती। सखा धर्म निबहइ केहि भाँती।।
मैं जानउं तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती।।

इस प्रकार के नीतिज्ञ पर यह दोषारोपण किया जाता है कि यह लोभवश आपत्तिकालीन स्थिति में शत्रु से जाकर मिल गया। किन्तु वास्तविकता यह है कि रावण ने दुर्विचार के वशीभूत हो विभीषण की बात नहीं मानी एवं उन्हें अपमानित किया। परिणामस्वरूप विभीषण को, रावण का विनाश आसन्न समझकर, उसका साथ छोड़ना पड़ा।

रावण का शत्रु बन जाने पर विभीषण रावण के विनाश के समस्त उपाय राम को बतला देते हैं। दसशीश के अखाड़े का परिचय, मेघनाद और रावण के अजयमख की सूचना तथा रावण के मरने का रहस्य आदि गुप्त बातें राम को इनसे ही ज्ञात होती हैं।

विभीषण के चरित्र का दूसरा पक्ष जिसको तुलसीदास ने बहुत अधिक महत्त्व दिया है, वह है उनकी रामभक्ति, जिसमें अवगाहन कर लेने से उनके सभी कलुषित मल विनष्ट हो जाते है। तुलसीदास के अनुसार विभीषण राजा प्रतापभानु के मन्त्री धर्मरुचि थे। अभिशाप के कारण रावण के कनिष्ठ भ्राता हुए। वे जन्म से ही संयमी, तपस्वी और रामभक्त थे। अतः घोर तपस्या के बाद ब्रह्मा से उन्होंने रामभक्ति की ही याचना की थी–

गए विभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस कारण राम के चरणों में उनकी सहज रति थी और उन्होंने जो कुछ किया अपने आराध्य के हित के लिये किया। उनकी यह भक्ति उन्हें लक्ष्मण और हनुमान् जैसे रामभक्तों की श्रेणीं में ला देती है। राम की शरण में जाकर उन्होंने जो निष्कपट और आर्त भक्त की भाँति श्रीराम से अपना परिचय दिया उससे राम को अपने शत्रु के भ्राता को भी शरणागत के रूप में अभय दान देना पड़ा। राम के समक्ष विभीषण का अपना परिचय उनके निष्कपट और निर्मल ह्रदय का द्योतक है–

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता।
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तन पर नेहा।।
श्रवन सुजसु सुनि आयउं प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि–त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर।।

प्रभुदर्शन से तामसी प्रवृत्तियाँ सात्त्विक रूप में परिणत हो जाती हैं। राम के प्रति ह्रदय में प्रेम था और बहुत दिनों से विभीषण को राम–दर्शन की इच्छा थी। राम के साथ साहचर्य होते ही उनके ह्रदय की बची वासनाएं भी समाप्त हो गयी। यह विभीषण की भक्ति का द्योतक है–

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी।।
उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।।

अतः विभीषण का आध्यात्मिक रूप तो प्रबल है ही, इसके साथ–साथ वे अत्यन्त विनयशील, मर्यादित शिष्टाचार से युक्त, दैन्यभाव से समन्वित अर्थार्थी भक्त हैं।

मेघनाद

रावण का पुत्र मेघनाद रावण के समान शक्तिशाली, वीर और अतुल पराक्रमी है। परन्तु इसके सम्पूर्ण योद्धा रूप को मायावी शक्ति के साथ जोड़ देने के कारण मेघनाद के मूल व्यक्तित्व के यथार्थ को आघात पहुँचा है। यह एक याज्ञिक और ऐन्द्रजालिक है तथा अनेक शक्तियों को वरदान के रूप में प्राप्त कर चुका है। सम्भवतः यही कारण है कि मेघनाद में तुलसीदास ने रामभक्ति की स्थापना नहीं की है।

अतः मेघनाद के चरित्र में चार प्रमुख बातें द्रष्टव्य हैं–महान् शक्तिशाली, घोर मायावी, याज्ञिक और रावण का सच्चा सहायक।

मेघनाद एक वीर योद्धा है। रण–कौशल का उसे अप्रतिम ज्ञान है। रामचरितमानस में तुलसीदास ने उसके विषय में लिखा है कि महाबली मेघनाद के सम्मुख युद्ध करने वाले बहुत कठिनाई से मिलते थे–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुं प्रथम लीक जग जासू।।
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई।।

उसकी वीरता पर रावण को पूर्ण विश्वास था, अतः रावण ने उसे भली प्रकार से रणनीति का उपदेश भी दिया था और देवताओं पर विजय प्राप्त करने के लिये देवलोक भी भेजा करता था। लङ्का में निवास करते हुए इसने बहुत से देवताओं को जीता। इन्द्र को युद्ध में बुरी तरह हराया था, इसीलिये इसका दूसरा नाम इन्द्रजीत भी पड़ा था। मेघनाद का दूसरा रूप ऐन्द्रजालिक का है। युद्धस्थल पर कभी–कभी अदृश्य हो जाता है, कभी आकाश में चला जाता है,, कभी आँधी और तूफान के रूप में प्रकट होता है, कभी अग्नि के रूप में। रामचरितमानस में इसके मायावी रूप का चित्रण अनेक स्थलों पर किया गया है। माया से युद्ध करते हुए मेघनाद हनुमान् लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषणादि योद्धाओं को त्रस्त कर देता है। रामदल के अच्छे–अच्छे वीर भयभीत हो जाते हैं। यह इतना बलशाली, मायावी है कि लक्ष्मण के वाण को आते देख माया के बल पर अन्तर्हित हो जाता है और लक्ष्मण के वाण भी असफल हो जाते हैं–

देखेसि आवत पवि सम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना।।
बिबिध बेष धरि करइ लराई। कवहुंक प्रगट कवहुं दुरि जाई।।

मेघनाद के स्वरूप की तीसरी विशेषता यह है कि वह एक सफल याज्ञिक है। यज्ञ–कर्मों को सम्पादित कर उसने कई प्रकार की सिद्धियाँ तथा वरदान प्राप्त कर लिये थे जिनका उपयोग युद्धस्थल में यथावसर किया करता था। युद्धस्थल से जाम्बवन्त द्वारा फेंक दिये जाने पर निकुम्भिला गुफा में अजय यज्ञ के सम्पादन हेतु चला जाता है–

मेघनाद कै मूर्च्छा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी।।
तुरत गयउ गिरिवर कंदरा। करौं अजय मख अस मन धरा।।

परन्तु उसके दौर्भाग्यवश वह यज्ञ सफल नहीं हो सका।

और चौथी प्रमुख विशेषता मेघनाद की यह है कि वह अपने पिता का आज्ञाकारी पुत्र है। पिता की आज्ञा का पालन बिना कोई तर्क वितर्क किये करता था। यही एक ऐसा पात्र है जिसने रावण की आज्ञा का कभी उलङ्घन नहीं किया। एक पिता के सच्चे सहायक के रूप में उसका चरित्र प्रशंसनीय है। पिता की आज्ञा का सदा निर्वाह करने वाले मेघनाद के बल पर रावण को पूर्ण विश्वास था। पिता की आज्ञा के साथ–साथ कार्य को सम्पन्न कर देने का गुण इसके पितृ–भक्त होने का प्रमाण है–

इन्द्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सौ सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार मेघनाद को एक परम वीर के रूप में रामचरितमानस में चित्रित किया गया है।

रावण

रामचरितमानस का प्रतिनायक रावण है। गोस्वामीजी ने रामविरोधी रावण के प्रति उपेक्षा का प्रदर्शन करते हुए भी उसके हृदय में प्रच्छन्न राम–प्रेम का निरूपण किया है। जिसकी प्रथम झाँकी शूर्पणखा द्वारा खर–दूषण के वध का समाचार सुनकर आश्चर्यचकित रावण के विचारों में तथा अन्तिम झाँकी उसकी मृत्यु के समय दृष्टिगोचर होती है। वह "राम" कहते हुए[1] मरणोत्तर सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है–

तासु तेज समान प्रभु आनन।

इस प्रकार रावण के चरित्र को भक्ति से परिपूर्ण करने का हेतु यह है कि तुलसीदास ने रावण के जन्म का कारण विप्र–शाप स्वीकार किया है। तुलसीदास ने रावण के रूप, तेज, प्रताप, शौर्य, सुवेश, अलङ्कारादि का वर्णन निष्पक्ष एवं सहृदय होकर नहीं किया है, क्योंकि तुलसी का एकमात्र आदर्श था–

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही[1]।।

रावण के चरित्रचित्रण में तुलसीदास ने इसी आदर्श का पालन किया है, अतः वे रावण के रूपसौन्दर्य का चित्रण निष्पक्ष होकर नहीं कर सके, अपितु अङ्गद ने रावण को जैसा देखा वह रूप इस प्रकार का था–

अङ्गद दीख दसानन बैसें। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसें।।
भुजा विटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना।।
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना।।

तुलसीदास ने रावण के दश शीश तथा बीस भुजा स्वीकार की हैं, किन्तु रामद्वेषी आचरण की कुरूपता ने रावण के व्यक्तित्व की सुरूपता को पूर्णरूपेण नष्ट कर दिया है। यही कारण है कि रावण का नयनाभिराम रूप प्रकट न हो सका। उसका कुटिल रूप विख्यात हो गया–

उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप।।

कुटिल कर्मों के कारण उसका रूप पापमय हो गया। तुलसीदास ने कहीं भी रावण के रूप–सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया। उसके मुकुट आदि का वर्णन भी उसे अपमानित करने के लिये ही किया है। उसके विषय में कहा जा सकता है कि वह काम, दर्प और मद से युक्त था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रावण की उग्र तपस्या का वर्णन तुलसीदास ने किया है। तीव्र महत्वाकांक्षी रावण देवताओं के समान ही नहीं, उनसे आगे बढ़ना चाहता था। जातीय सङ्घर्ष, उपेक्षा, घृणा, हीनता से उत्तेजित होकर उसमें उग्र से उग्र तपश्चर्या के लिये अमर्ष की उत्पत्ति हुई और उसने दोनों भाइयों के साथ ब्रह्मा की घोर तपस्या करके उनको प्रसन्न कर लिया–

कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई।।
गयउ निकट तप देखि बिधाता। मागहु बर प्रसन्न मैं ताता।।

ब्रह्मा से मनोवाञ्छित वरदान पाने पर भी प्रतिशोध–ज्वाला में जलता हुआ रावण ब्रह्मा से अमरत्व की याचना करता है–

हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुई बारें।।

इस प्रकार का वरदान पाकर रावण दिग्विजय के लिये निकल पड़ा। रामचरितमानस में रावण की इस विजय का वर्णन बहुत संक्षिप्त है। रावण की युद्धनीति की कुशलता का वर्णन भी रामचरितमानस में मिलता है, किन्तु तुलसीदास ने इसका भी उल्लेख बहुत ही कम किया है। सीताहरण के बाद रावण की ऐसी विवेकहीन दशा हो गयी कि उसने अपने सभी शुभचिन्तकों को अपना शत्रु बना लिया। उसने अपने मन्त्रिवरों से समय–समय पर मन्त्रणा ली, परन्तु वह नगण्य है। वह स्वयं स्व–पराक्रम के गर्व की प्रेरणा से ही बहुधा कार्य–सञ्चालन करता है और विषम स्थिति के पर्वत को अट्टहास के अन्धड़ से धराशायी कर देने की चेष्टा करता है–

आए कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे।।
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठें अहार बिधि दीन्हा।।

रावण को कुशल राजनीतिज्ञ की भाँति युद्ध नीति के चारों अङ्गों का ज्ञान भी था और वह आवश्यकतानुसार उन चारों का प्रयोग भी करता था–

बहु बिधि खल सीतहिं समुझावा। साम दाम भय भेद देखावा।।

अपनी भेदनीति का प्रयोग रावण राम के सैन्यबल के ज्ञान के लिये करता है। जब राम की सेना समुद्र लांघ चुकी तब रावण ने शुक और सारण नामक दो राक्षसों को गुप्तचर के रूप में राम की शक्ति के ज्ञान के लिये भेजा था। रावण का युद्धकौशल प्रमुख रूप से उसका एकाकीरूपेण लक्ष्मण से युद्ध[1], विभीषण पर शक्ति–प्रहार[1], राम–रावण के युद्धप्रसङ्गों[1] में विशेष रूप से दिखायी देता है। तुलसीदास ने रावण के मायावी युद्ध का अधिक विस्तार से वर्णन किया है[1]। तुलसी ने रावण की शक्ति के व्यञ्जक प्रसङ्ग और संवाद को हटा दिया और हीनता एवं पराजय के प्रसङ्ग को बढ़ा दिया। राम के एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही बाण से रावण के छत्र–मुकुट तथा मन्दोदरी के कर्णफूल काट गिराये जाने का प्रसङ्ग ऐसा ही है–

छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकहीं बान।
सब कें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान।।

रावण के सभासदों में अब उसका सम्मान नहीं रह गया है, उससे कहीं अधिक सम्मान उसके प्रतिपक्षी राम के वानर–दूतों का है–

गयउ सभां मन नेकु न गुरा। बालितनय अतिबल बांकुरा।।
उठे सभासद कपि कहुँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेषी।।

इतना ही नहीं, बालिसुत अङ्गद द्वारा किरीट मुकुट गिराना तथा अपना चरण उठाने के लिये रावण को ललकारना और अधिक हास्यास्पद लगता है–

गिरत संभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुंदर।
कछु तेहिं ले निज सिरन्हि संवारे। कछु अंगद प्रभु पास पबारे।।

रावण की सभा में एक वानर नायक द्वारा रावण को इस प्रकार अपमानित कराकर युद्धस्थल में उसके शौर्य का किस प्रकार उचित मूल्याङ्कन किया जा सकता है। हनुमान् का बल रावण से बहुत अधिक है। रावण मूर्च्छित लक्ष्मण को उठा कर नहीं ले जा सका। हनुमान् ने उन्हें उठा लिया और राम के पास पहुँचा दिया। कैलाश पर्वत उठा लेने की क्षमतावाले रावण की भुजाओं का बल समाप्त हो गया है। रावण हनुमान् की पूँछ पकड़कर धराशायी करना चाहता है, किन्तु हनुमान् रावणसहित आकाश में उड़ गये। रावण को इन स्थितियों में बार–बार लाकर तुलसीदास ने उसकी शक्ति का अस्तित्व समाप्त हुआ प्रदर्शित किया है और इस प्रकार उसे वे दया और करुणा का पात्र बना देते हैं। तुलसीदास का लक्ष्य भी यही था कि रावण के वीरतापूर्ण व्यक्तित्व को न उभारकर दीनता दिखलाना तथा राम की उदारता प्रदर्शित करना। इसीलिये रावण का अन्त राम के दुर्लभ गति दिये जाने के रूप में हुआ है–

खल मल धाम काम रत रावन। गति पाई जो मुनिवर पावन।।

कौसल्या

तुलसीदास ने प्रायः सभी पात्रों को आदर्श और अलौकिकता प्रदान की है। कौसल्या भी एक आदर्श और अलौकिक नारी पात्र हैं। वे राजा दशरथ की पटरानी और शतरूपा का अवतार हैं। उन्होंने शतरूपा के रूप में ईश्वर की प्राप्ति तथा वर की याचना की थी।

जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोई सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु।।

ईश्वर ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और कौसल्या के सम्पूर्ण चरित्र में शतरूपा का चरित्र समाविष्ट हो गया। अतः कौसल्या का जीवन आद्यन्त सुख, भक्ति एवं विवेक से परिपूर्ण रहा है। तुलसीदास ने राम के चरित्र को सामान्य धरातल पर चित्रित नहीं किया, अतः कौसल्या को भी सामान्य धरातल पर नहीं रखा। अतएव मानवोचित सहज मातृत्व के गुणों को तुलसीदास ने भक्ति, विवेक, आदर्श आदि गुणों के आवरण से ढक दिया है। इस प्रवृत्ति के कारण तुलसीदास की कलात्मकता शिथिल हो गयी है।

तुलसीदास ने राम की बाल–लीला देखकर जिसका मन तन्मय नहीं हो जाता उसे, अभागा बतलाया है–

जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। ते जन बंचित किए बिधाता।।

अयोध्या नगरी के सभी नरनारी तन्मय हो जाते हैं और माता कौसल्या तो यह लीला नित्य देख देखकर आत्मविभोर हो जाती हैं–

प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता बाल चरित कर गान।।

किन्तु राम के जन्म का उन्हें पूर्ण ज्ञान है, अतः उनके जन्म पर उन्हें ही अनन्त ब्रह्म समझकर उनके प्रति अपनी स्तुतिमय कृतज्ञताञ्जलि अर्पित करती हैं–

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अतिप्रियसीला यह सुख परम अनूपा।।

इस भाँति कौसल्या भौतिक जगत् में भी राम के प्रति "वात्सल्यासक्ति" प्रदर्शित करती हुई अपने अलौकिक ज्ञान का सदैव परिचय देती रहती हैं।

कौसल्या का विवेकी और तेजस्वी रूप तब दिखलायी पड़ता है, जब विश्वामित्र यज्ञ–रक्षणार्थ दशरथ से राम–लक्ष्मण की याचना करते हैं। दशरथ तो अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त हो जाते हैं, परन्तु कौसल्या ने किञ्चितमात्र भी विरोध नहीं किया और–

जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस।।

कौसल्या की भक्ति ऐसी प्रगाढ़ भक्ति है कि उनको तो चतुर्भुज भगवान् का दर्शन सुलभ ही है, अपितु विश्वरूपदर्शनादि की आनन्दोपलब्धि भी उनको हुई है–

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम–रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यही कारण है कि रामचरितमानस में कौसल्या का चित्रण देवी के रूप में हुआ है। उनमें कहीं भी मानवोचित गुणों का दिग्दर्शन नहीं होता, वे सर्वत्र दैवी गुणों से ही परिपूर्ण दिखलायी पड़ती हैं। अतः कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उनका मन विचलित नहीं होता। सबसे विकट परिस्थिति उनके सामने राम के वनवास के समाचार की है। यह समाचार सुनकर भी कौसल्या को लेशमात्र कष्ट नहीं होता। ऐसे स्थल पर उनमें कर्तव्य और भावना का सङ्घर्ष दिखलायी पड़ता है, जिसके अन्तर्गत उनकी स्नेहप्रवणता एवं अन्तर्द्वन्द्व के दर्शन होते हैं–

जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होइ संदेहू॥

---- ---- ----

यह बिचारि नहिं करउं हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ॥

इनका विवेक इतना प्रबल है कि राम–वन–गमन के कारण अत्यन्त व्याकुल दशरथ को भी धैर्य की प्रेरणा देती हैं–

धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं न बूड़िहि सबु परिवारू॥

भरत के मातुल–गृह से लौटने पर कौसल्या उन पर कुपित न होकर भरत के प्रति भी वात्सल्यरस से आप्लावित हो उठती हैं। उनको भी धैर्य एवं आश्वासन प्रदान कर अपने उदार हृदय का परिचय देती हुई अपने विवेक का प्रतिष्ठापन करती हैं–

मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी संभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि॥

सामाजिक दृष्टि से भी कौसल्या का चरित्र महान् गुणों से परिपूर्ण है। वे भक्तिस्वरूपिणी हैं, पतिव्रता देवी हैं, धैर्यशीला हैं। उनका अपनी पुत्रवधू के प्रति व्यवहार प्रशंसनीय है–

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउं प्रान जानकिहिं लाई।

इस प्रकार राम की माता होने का गौरव तो कौसल्या को है ही, अपितु एक आदर्श पत्नी, ईश्वर के अविचल अनुराग की अधिकारिणी होने के कारण उनके अन्तर्गत भक्ति, विवेक, ज्ञान, कर्तव्यपरायणता, मृदुल व्यवहार, धैर्यशीलता आदि अनेक ऐसे उदात्त गुणों का भी समावेश हो गया है कि पाठक का हृदय उनके समक्ष मातृत्व भाव की श्रद्धा से हठात् नत हो जाता है।

सुमित्रा

रामचरितमानस में सुमित्रा का चरित्र अत्यन्त संक्षिप्तरूप से चित्रित किया गया है, परन्तु इस संक्षिप्त दृश्य (झाँकी) में भी उनके अप्रतिम गुणों की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भव्य प्रतिमा प्रदर्शित की गयी है। स्वभाव से वे विवेकशील, धर्मनिष्ठ तथा अत्यन्त मितभाषिणी हैं। इनका हृदय स्वभावतः कोमल, छल–प्रपञ्चों से रहित, निर्दोष और सांसारिक सुखों से निर्लिप्त है। उनकी सरलता का ज्ञान इस घटना से अधिक स्पष्ट हो जाता है कि अयोध्या की भीषण क्रान्ति का उन्हें ज्ञान नहीं हो सका था। लक्ष्मण जब स्वयं विदा माँगने के लिये उनके पास गये तब उन्हें इस भयानक कौतुक का ज्ञान हुआ; जिसे सुनते ही सूक्ष्मदर्शिनी एवं दूरदर्शिनी सुमित्रा के नेत्रों के सम्मुख भावी अन्धकार छा गया–

गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा।।

भावी दृढ़ आशङ्काओं से त्रस्त सुमित्रा की मनोवैज्ञानिक अन्तर्दशा का चित्रण तुलसीदास ने अत्यन्त सफलता से किया है–

समुझि सुमित्रा राम सिय रूपु सुसील सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ।।

अपने परिजन के प्रत्येक पात्र की भावी दशाओं का वास्तविक अनुमान तत्काल लगा लेना उनकी बुद्धि की निपुणता का परिचायक है। ऐसे विषम सङ्कट के समय वे क्षणभर के लिये विस्मित अवश्य हुई; परन्तु उनके मुख से किसी की कटु आलोचना का अमर्यादित शब्द न निकला, अपितु परम धैर्यशीला रूप में अपने पुत्र लक्ष्मण को सहर्ष विदा देने लगीं। उन्होंने विदाई ही नहीं दी, अपितु उन्हें पथ का पाथेय भी अत्यन्त सारगर्भित नीति, धर्म, भक्ति एवं वात्सल्यप्लावित उपदेशामृत के रूप में दिया–

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही।।
अवध तहाँ जहँ राम निवासु। तहँइ दिवसु जहं भानु प्रकासू।।
जौ पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।।
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें।।
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू।।

सुमित्रा राम की परम भक्त हैं, अतः वे अपने पुत्र को भी रामभक्त होने और उनकी सेवा करके अपने जीवन को पूर्ण कृतकृत्य बनाने का साधन निर्देश करती हैं–

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुं इन्ह के बस होहू।।
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई।।

इस प्रकार सुमित्रा ने राम के अलौकिक रूप का ज्ञान लक्ष्मण को कराया है। समस्त नारीसमाज में रामभक्त पुत्रयुक्ता माता को ही पुत्रवती की मान्यता प्रदान करना उनकी भक्तिप्रवणता का सूचक है–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई।।
न तरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत ते हित जानी।।

सुमित्रा इस गुण से परिपूर्ण हैं। हनुमान् से लक्ष्मण–मूर्च्छा का समाचार सुनकर उनका शोकातुर मन अन्ततः रामसेवार्थ पुत्र के बलिदान को सोच कर उल्लास से परिपूर्ण हो जाता है और अपने दूसरे पुत्र को उसी उल्लास से राम की सहायता के लिये भेजना चाहती हैं–

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामि–काज संग्राम सुभट सो लोहे ललकारि लरे हैं।।
सुवन–सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति–भगति बरे हैं।।
छिन–छिन गात सुखात छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं।।
(गी० ६/१३)

लङ्का से अयोध्या लौटने पर जब सुमित्रा को विश्वास हो गया कि राम की सेवा लक्ष्मण ने विधिवत् की और लक्ष्मण के हृदय में राम के प्रति भक्ति पूर्णरूपेण उत्पन्न हो गयी तब वात्सल्य प्रेम से उन्हें हृदय से लगा लेती हैं--

भेटेउ तनय सुमित्रा राम चरन रति जानि।

वे किसी भी विषम परिस्थिति में किसी की आलोचना करती हुई नहीं दिखलायी पड़तीं। चित्रकूट में सुनयना द्वारा कैकेयी की आलोचना इन्हें. प्रिय नहीं लगती और उसका वे विरोध करती हैं–

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा।।
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी।।

इस प्रकार अपने समस्त आदर्श गुणों के कारण सुमित्रा सर्वत्र आदर की पात्र हैं, अपने मृदुल व्यवहारों के कारण इन्होंने समस्त "मानस" में एक ऐसी अमिट छाप छोड़ी है जिसका रंग राम–भक्ति में डूबकर इतना गाढ़ा हो गया है कि वह अमिट है।

कैकेयी

कैकेयी दशरथ की द्वितीय पत्नी, राम के वनवास का कारण बनीं, और बहुचर्चित हुई। उनकी दोनों सपत्नियों के समान राम के वनवास के सन्दर्भ में ही कैकेयी का चरित्र रामकथा में चित्रित है, अतः कैकेयी का चरित्र एक ही साथ प्रशंसनीय और निन्दनीय हुआ है। कैकेयी के सम्पूर्ण चरित्र पर दो दृष्टियों से विचार करना आवश्यक प्रतीत हो रहा है।

रूपसौन्दर्य की दृष्टि से– कैकेयी का रूप–सौन्दर्य सात्विक कम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परन्तु राजसी और तामसी अधिक है। वैसे शक्ति–सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य में कैकेयी प्रशंसनीय हैं, वह वीराङ्गना हैं। पति का युद्धस्थल तक साथ निभानेवाली सहधर्मिणी हैं। अपनी युवावस्था में भी वृद्ध पति पाकर सन्तुष्ट रहने वाली आदर्श नारी हैं।

शीलसौन्दर्य और शक्तिसौन्दर्य की दृष्टि से– कैकेयी एक पूर्ण नारी हैं। रामराज्याभिषेक और भरत का ननिहाल में होना–दोनों की उन्हें चिन्ता नहीं है। राम उनको उतने ही प्रिय हैं जितने भरत। इतना ही नहीं, राम को वे प्राणों से प्रिय मानती हैं–

प्रान ते अधिक रामु प्रिय मोरे। तिन्ह के तिलक छोभु कस तोरे॥

इन्हीं गुणों के कारण जब दशरथ ने सभी रानियों को राम–राज्याभिषेक का समाचार सुनाया तो सभी रानियाँ पुलकित हो गयीं और प्रसन्न वदन से समारोह की तैयारी करने लगीं।

परन्तु "को न कुसंगति पाइ नसाई" के अनुसार, मन्थरा से प्रोत्साहित एवं प्रेरित होने के कारण, कैकेयी की प्रकृति में नितान्त परिवर्तन होने लगता है। कैकेयी की सरलता का कुटिलता में परिवर्तन अतिस्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है। मन्थरा कैकेयी के समक्ष सपत्नी के राजमाता बनने पर उनकी स्थिति, भरत को राज्याधिकार से सदा वञ्चित रखने का षडयन्त्र आदि बातें बड़े तर्कसंगत ढंग से रखती है और मन्थरा की कपट बुद्धि से कैकेयी का हृदय पराजित हो जाता है और इसकी प्रतिक्रिया कैकेयी के द्वारा मन्थरा के समक्ष तत्काल व्यक्त होती है। परिणामस्वरूप कैकेयी महत्त्वाकांक्षा के मार्ग पर अग्रसर होती हैं एवं दुष्परिणामों का चिन्तन बिना किये उनके विचारों में परिवर्तन हो जाता है। तुलसीदास ने कैकेयी के इस मानसिक परिवर्तन तथा प्रत्येक घटना को जगन्नियन्ता की प्रेरणा बतलाया है। इसी प्रेरणा से ही जन्म–जन्मान्तर के लिये "होहि राम सिय पूत पतोहू" का वरदान माँगने वाली कैकेयी के हृदय में "भावीवस प्रतीति उर आई" का निर्देश करके तुलसीदास ने उनके सभी अपराधों को ढककर सभी की सहानुभूति दिलाने का प्रयास किया है। कैकेयी के चरित्र से यदि अलौकिकता का आवरण हटा दिया जाय तो उनके चरित्र का एक रूप और पाठक के समक्ष आकर प्रस्तुत होता है। वे एक महत्त्वाकांक्षिणी स्त्री हैं, अपने कार्य की सिद्धि होने पर दशरथ की मृत्यु तथा रामवनगमन के शोक को छोड़कर भरत को देख कर प्रमुदित हो उनकी आरती करती हैं–

आवत सुत सुनि कैकेयनंदिनि। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि॥
सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनी स्वार्थपरता की पूर्ति के लिये वह क्रूरतम कार्य को सम्पन्न करने के लिये प्रस्तुत हो जाती है–

जौं विधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चख पूतरि आली।।

पतिव्रत धर्म को भूलकर कैकेयी अपने सङ्कल्प की पूर्ति के लिये अपने पति का विद्रोह करती है और उन पर कटु व्यङ्ग्य वाणों की वर्षा करती है। अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये एक कुशल वाक्पटु की भाँति दशरथ की सत्यसन्धता में उनको ही बाँध लेने का कार्य कैकेयी के द्वारा किया जाता है। इस भाँति कैकेयी स्त्रैण दशरथ की दुर्बलता का पूरा–पूरा लाभ उठाकर अपने कार्य को सिद्ध करा सकने में पूर्णरूपेण सफल हो जाती हैं। जो कुछ भी हो, कैकेयी की सरलता से सर्वथा विरुद्ध यह कुटिलता भयङ्कर रूप धारण कर गयी। इस कुटिलता के कारण वह पति, सपत्नी, पुत्र, लक्ष्मण, वशिष्ठ, सुमन्त्र तथा पुरवासियों की भर्त्सना का पात्र बनीं।

सीता

सीता–चरित्र के निरूपण के सम्बन्ध में डॉ० भ० ह० राजूरकर का मत उल्लेख्य है– "जिस प्रकार मर्यादापुरुषोत्तम राम भारतीय जगत् के लिये राम–कथा के सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं, उसी प्रकार राम की पत्नी सीता आदर्श स्त्री हैं। राम–पत्नी सीता के गुणों का, शील तथा सुन्दरता का निरूपण राम–चरित में बहुत कुछ अपने आप हो जाता है। उसी प्रकार सीता–चरित में राम के गुणों का पुनरुच्चारण हो जाना स्वाभाविक है। दोनों पति–पत्नी का चरित्र परस्पर इतना पोषक है कि एक के बिना दूसरे का चरित्र अपूर्ण ही रहेगा।"[३९] तुलसीदास सीता का चरित्र बहुत तन्मयता से गाया है, विशेषकर सीता के अलौकिकत्व अयोनिजत्व वाला रूप तुलसीदास ने व्यक्त किया है। तुलसीदास एक भक्त कवि हैं। अतः उन्होंने सीता को सामान्य धरातल पर न सोचकर उनके जन्म से मृत्यु तक के रूपों को अलौकिकत्व प्रदान कर दिया है। उनके अनुसार सीता आदिशक्ति मायास्वरूपा हैं जो पृथ्वी पर अवतरित होने पर भी, जनक–पालिता विदेहकन्या, राम–पत्नी और माता हैं तथा इन तीनों रूपों में उनके सौन्दर्य तथा शील, शक्ति का चित्रण अद्भुत है।

तुलसीदास का सीता के प्रति मातृवत् प्रेम है, अतः जिस प्रकार एक पुत्र, सेवक या भक्त अपनी माता, स्वामिनी और आराध्या के गुण–दोष का सम्यक् आलोचना नहीं कर सकता, वही बात तुलसीदास में पायी जाती है। तुलसीदास ने इसीलिये पवित्रता की मूर्ति सीता के सौन्दर्य का वर्णन मातृत्व के कारण परिष्कृत कर आदर्श एवं मर्यादित कर दिया है, कहीं भी नखशिख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का सूक्ष्म वर्णन नहीं मिलता। उनके अनुसार सीता का सौन्दर्य अनुपम है। उनकी सुन्दरता की तुलना त्रैलोक्य की किसी भी स्त्री से नहीं की जा सकती। सीता के रूप में मानों ब्रह्मा ने अपनी सारी निपुणता को मूर्तिमती किया है। उनकी सुन्दरता, सुन्दरता को भी सुन्दर करनेवाली है—

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहं प्रगटि देखाई॥
सुन्दरता कहुं सुन्दर करई। छबिगृह दीप सिखा जनु बरई॥

तुलसीदास की सीता ब्रह्म की मायाशक्ति हैं, अतः उनकी सुन्दरता के लिये वे किसी उपमान का प्रयोग नहीं करते; क्योंकि सभी उपमान उनकी दृष्टि में पूर्ण नहीं है[1]। स्वयं रमा के समान सीता की तुलना नहीं करते। परन्तु आगे के प्रसङ्गों में तुलसीदास ने सीता के लिये उपमानों का भी प्रयोग किया है और रमा भी कहा है। जैसे सीताहरण के पश्चात् विरही राम के मुख से निःसृत शब्दों को देखिये—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल कनक कदलि हरखाही। नैकु न संक सकुच मन माहीं॥

रावण की मृत्यु के पश्चात् हनुमान्‌जी सीता को राम के पास ले जाने के लिये अशोकवाटिका में आते हैं तब उन्हें देखकर सीता अत्यन्त गद्‌गद हो उठती है, उस स्थल पर उन्हें रमा भी कहा गया है। यथा—

अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।

इस प्रकार तुलसीदास की सीता

''सोह नवल तन सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी॥''

हैं। उनके लिये माँ का नखशिख वर्णन सम्भव नहीं था, किन्तु महाकाव्य के गुणों को दृष्टि में रखकर यह वर्णन आवश्यक था, अतः उपमानों के माध्यम से राम के श्रीमुख से सीता का नखशिख वर्णन अत्यन्त मर्यादित हैं। यदि प्रसङ्गानुसार तुलसीदास के दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो जिस सीता के हरण पर राम विलाप करते हैं वह वास्तविक सीता नहीं है; अपितु उसकी प्रतिच्छायामात्र है। इसीलिये उनके सौन्दर्ययुक्त वर्णन में उपमानों का प्रयोग किया है और ''रमा'' शब्द का प्रयोग भी इसी सीता के लिये किया गया है; क्योंकि तुलसीदास की सीता पञ्चवटी में अग्नि को सौंप दी जाती हैं और उनके स्थान पर माया–सीता की प्रतिच्छाया रख दी जाती है। इसी सीता–प्रतिच्छाया का हरण रावण के द्वारा होता है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही।।

राम की यह लीला स्वयं लक्ष्मण को भी अज्ञात है—

निज प्रतिबिंब राखि तहं सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता।।
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।।

लङ्काविजय के पश्चात् राम के द्वारा सीता की अग्नि–परीक्षा होती है। उस समय प्रतिबिम्ब–सीता अग्नि में प्रवेश करती हैं, फलस्वरूप उनकी कलङ्कयुक्त प्रतिच्छाया सीता भस्म हो जाती हैं और वास्तविक सीता को अग्निदेव राम को सौंप देते हैं।

सीता का रूप–सौन्दर्य, उनके शील–सौन्दर्य के कारण, अत्यधिक निखर आया है। सीता के उज्ज्वल चरित्र का मूलाधार उनका अटल पातिव्रत धर्म है। इस पातिव्रत धर्म–पालन में सीता अत्यधिक आनन्द का अनुभव करती हैं। भक्त तुलसीदास की धार्मिक दृष्टि के अनुसार सीता के लिये राम का सान्निध्य ही, चाहे वह वनवास ही क्यों न हो, सर्वस्व है। रामवनगमन का समाचार सुनते ही सीता दृढ़ निश्चय कर लेती हैं कि वह राम का अनुसरण करेंगी, अथवा प्राण दे देंगी।

चलन चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू।।
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना।।

कौसल्या का संकेत पाकर राम सीता को समझाते हैं और वन में मिलनेवाली व्यथा से उन्हें भयभीत करते हैं—

रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन भारी।।

अन्त में उनके कर्तव्यों की ओर संकेत हैं कि उन्हें गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना चाहिये—

सहज सुहृद गुर स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि।।

परन्तु सीता बहुत शालीनता एवं नम्रता के साथ उत्तर देती हैं कि पति–वियोग से बढ़कर इस संसार में और कोई दुःख नहीं है—

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं।।

पति के अभाव में स्वर्ग भी नरक बन जाता है और पति के साहचर्य से नरक भी स्वर्ग के समान आनन्ददायी होता है—

तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान।

क्योंकि एक सती साध्वी पतिपरायणा स्त्री के लिये माता–पिता, भाई–बहन, प्रिय, परिवार, सुहृत्समुदाय तथा सुशील पुत्र आदि जितने सम्बन्धी हैं सब के सब पति के बिना ग्रीष्मकालीन प्रचण्ड सूर्य से अधिक दाहक बन जाते हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहु ते ताते।।

दशरथ को जब यह आभास होता है कि सीता भी राम के साथ वन में जा रही हैं तब वे सुमन्त्र और कौसल्या से उन्हें लौटा लाने का आग्रह करते हैं। उस स्थल पर सीता का प्रत्युत्तर प्रशंसनीय है। उन्होंने पातिव्रत धर्म की विशद विवेचना करते हुए राम के साहचर्य को सम्पूर्ण सुखों का मूल माना। वे अरण्य को पितृ–गृह तथा मातृ–गृह के वैभवों से अधिक सम्पन्न बतलाती हैं। सीता ने अपने कथन को व्यावहारिक रूप भी दिया। पति के साथ अरण्यवासिनी होकर भी उन्हें लेशमात्र दुःख का अनुभव नहीं होने दिया, अपितु उनकी सेवा करके आनन्दपूर्वक जीवनयापन किया।

सीता के उज्ज्वल चरित्र को अपहरणोत्तर प्रसङ्ग में तुलसीदास ने भक्ति से प्रेरित होकर गाढ़े रंग से रंग दिया है। रावण यति का वेश धारण करके सीता के समक्ष राजनीति की चर्चा करते हुए प्रेम और भय दिखाता है–

नाना विधि करि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई।।

और सीताजी बहुत शालीनता और धार्मिकता के कारण प्रत्युत्तर देती हैं–

कह सीता सुनु जती गोसाई। बोलेहु बचन दुष्ट की नाई।।

लङ्का में पति–वियोगिनी सीता पति की स्मृति में जीर्णशीर्ण हो गयीं। उनकी इस दशा को हनुमान् ने देखा। उस समय रावण कुछ स्त्रियों के साथ आकर सीता को अनेक प्रकार की नीति के द्वारा समझाने लगा–

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा।।
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी।।
तव अनुचरी करउं पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा।।

किन्तु सीता तिनके की ओट से कहती हैं कि जुगनू की ज्योति से क्या किसी ने कमलिनी को खिलते देखा है!

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुं कि नलिनी करइ बिकासा।।

उसके पश्चात् खुल कर उसे राम के वाणों की स्मरण दिलाती हैं और अपना धैर्य छोड़कर उसे शठ, अधम तथा निर्लज्ज तक कह देती हैं। सीता की कटु वाणी से मर्माहत रावण क्रोध से विवश हो तलवार निकाल कर सीता को मारने के लिये उद्यत हो जाता है; किन्तु सीता ने रावण का लेशमात्र भी भय नहीं माना।

अतः यदि सीता के चरित्र से अलौकिकता को निकाल दिया जाय तो सीता का लौकिक बलिदान अद्भुत है। अन्त तक वह पातिव्रत धर्म का निर्वाह करती हुई वियुक्ता रहीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डॉ० विद्या मिश्र के शब्दों में सीता का समष्टि चित्रण सर्वोपरि है। धर्म का प्राणपन से परिपालन, स्त्री सीता का चरित्र जाज्वल्यमान ध्रुव नक्षत्र है जिसमें असाधारण पातिव्रत धर्म, त्याग, शील, अभय, शान्ति, क्षमा, सहनशीलता, धर्मपरायणता, सेवातत्परता, संयम, सद्व्यवहार, साहस, शौर्य, व्यवहारकुशलता आदि प्रखर किरणें उनकी कीर्त्ति–ज्योति को विकीर्ण करती हैं[१७]।

उर्मिला

तुलसी–पूर्व रामकाव्यों में लक्ष्मण की वल्लभा उर्मिला के चरित्र–चित्रण का नितान्त अभाव है। वाल्मीकीय रामायण तथा अध्यात्मरामायण में विवाह–प्रसङ्ग के अवसर पर केवल उर्मिला के नाम का उल्लेख किया गया है। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार पणिग्रहण–संस्कार के समय महाराज जनक मुनिवर वसिष्ठ से कहते हैं कि मैं सीता को श्री राम के लिये और उर्मिला को लक्ष्मण के लिये समर्पित करता हूँ। विवाह के समय उर्मिला के सन्दर्भ में इसी प्रकार का वर्णन अध्यात्मरामायण में भी मिलता है–

सीतां रामाय भद्रं ते उर्मिलां लक्ष्मणाय वै।
वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम्॥

(वा० रा०, बालकाण्ड, सर्ग ७१–२१)

उर्मिलां चौरसीं कन्यां लक्ष्मणाय ददौ मुदा॥

(अध्यात्म०, बालकाण्ड, सर्ग ६–५५)

सम्भवतः अपने पूर्ववर्त्ती कवियों का अनुसरण करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरितमानस एवं अपने अन्य ग्रन्थों में उर्मिला–चरित्र का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त रूप से किया है। रामचरितमानस में विवाह के अवसर पर ही त्यागमयी उर्मिला का संक्षिप्त परिचय प्राप्त होता है। पाणिग्रहण संस्कार के समय तुलसीदास कहते हैं कि उर्मिला सीता की कनिष्ठा भगिनी और सर्वगुणसम्पन्न एवं समस्त सुन्दरियों में शिरोमणि हैं। इस प्रसङ्ग में उर्मिला के स्वभाव की निश्छलता, असीम त्याग, पवित्र प्रेम तथा धर्मनिष्ठा की गरिमा दृष्टिगत होती है। इन्हीं सभी गुणों को ध्यान में रखकर महाराज जनक ने उर्मिला को लक्ष्मण के करकमलों में सौंपा।

जानकी लघु भगिनी सकल सुन्दरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्हीं ब्याहि लखनहि सकल विधि सनमानि कै॥

गीतावली में भी विवाह के अवसर पर तुलसीदास ने उर्मिला की शोभा, शील, रूप और प्रेम आदि का अतीव सुन्दर रूप से चित्रण किया है–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे ललित लाल लषन लोने
तैसिये ललित उरमिला परस्पर लखत सुलोचन कोने।। १ ।।
सुषमासार सिंगारसार करि कनक रचे हैं तिहि सोने।
रूपप्रेम–परमिति न परत कहि, बिथकि रही मति मौने।। २ ।।
सोभा सील सनेह सोहावने, समउ केलिगृह गौने।
देखि तियनि के नयन सफल भए, तुलसीदास हू के होने।। ३ ।।

निश्चय ही उर्मिला रूप और गुण में सर्वश्रेष्ठ थीं; क्योंकि तुलसीदास ने इनके अनेक गुण और रूप की प्रशंसा अपनी अन्य रचनाओं में की है। जानकीमङ्गल में भी उर्मिला के रूप का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया गया है–

सिय लघु भगिनि लषन कंह रूप–उजागरि।।

रामचरितमानस में भी उर्मिला का चरित्र मौन है। उर्मिला के मौन चरित्र में तुलसीदास ने बहुत बड़ी आध्यात्मिकता का निरूपण किया है। पाणिग्रहण संस्कार के पश्चात् विवाहमण्डप में चारों भाई अपनी–अपनी नवविवाहिता पत्नियों के साथ किस प्रकार शोभायमान हैं– उसके वर्णन में कवि ने उर्मिला के आध्यात्मिक स्वरूप को अव्यक्त रखा है–

सुन्दरी सुन्दर बरन्ह सह सब एक मण्डप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं।।

चारों बधुएँ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय ये चार अवस्थाएँ हैं। इनके विभु भी क्रम से विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्म हैं। "परिशेष न्याय" के अनुसार उर्मिला "जाग्रत् अवस्था" हैं तो लक्ष्मण उनके विभु विराट हैं। जिस प्रकार विराट का आधार जाग्रत् अवस्था होती है और जाग्रत् अवस्था की स्थिति विराट् में होती है; उसी प्रकार लक्ष्मण का आधार उर्मिला और उर्मिला की स्थिति लक्ष्मण में निहित है।

इसी विवाह–प्रसङ्ग में तुलसीदास लक्ष्मण को "धर्म" तथा उर्मिला को उनकी "सुकृति" मानते हैं–

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

जिस प्रकार धर्म का आधार सुकृति होती है और सुकृति की शोभा धर्म से होती है, उसी प्रकार लक्ष्मण का आधार उर्मिला है और उर्मिला की शोभा लक्ष्मण से है।

वस्तुतः उर्मिला–चरित्र के दार्शनिक स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि वह पतिप्राणा नारी निःसन्देह लोकनायक राम के सुविशाल महिमारूपी प्रासाद की नींव का एक पत्थर थी। यदि राम कीर्त्ति–पताका का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आधार लक्ष्मण का यश–दण्ड है तो उस यश–दण्ड की दृढ़ता और शक्ति उर्मिला का सतीत्व और त्याग है। राम की सेवा के लिये लक्ष्मण का जन्म हुआ था। जिसकी सार्थकता अरण्य में होती है। यदि राम की सेवा में लक्ष्मण अपने को मनसा, वाचा, कर्मणा समर्पित न करते तो उनका यशोदण्ड इतना दृढ़ न होता जो राम–कीर्ति–पताका को सदा फहराये रख सकता। लक्ष्मण के शौर्य और पराक्रम का मुख्य उद्देश्य भी था ''राम प्रताप'' की परिधि को अधिकाधिक प्रसारित करना। यदि लक्ष्मण को अपने जीवन के उद्देश्यों में सफलता मिली है तो इन समस्त सफलताओं की नैपथ्यगत आधारशिला है उर्मिला का मौन त्याग। वास्तव में उर्मिला का लक्ष्मण के साथ एक बार भी वन चलने का आग्रह न करना उनके असीम त्याग का द्योतक है। लक्ष्मण राम के सेवक बनकर माँ की आज्ञा से वन में गये थे। यदि उर्मिला भी वन में जाती तो लक्ष्मण को राम की पूर्ण सेवा करने में बाधा पहुँचती। इस सम्पूर्ण पक्ष को विचार कर उर्मिला अपने पति के कर्त्तव्य–पथ का बाधक नहीं बनी, अपितु साधक ही बनी।

लक्ष्मण अपने कर्मक्षेत्र में सदैव विजयी रहे, जिसका आधार–स्तम्भ उर्मिला का त्याग है। इस परिप्रेक्ष्य में निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि लक्ष्मण को परम सती उर्मिला का जो सतीत्वरूपी अभेद्य कवच प्राप्त था उसी अमोघ शक्ति के बल पर लक्ष्मण ने लङ्का के रणाङ्गण में दुर्धर्ष मेघनाद को पराजित कर राम की विजय–कीर्ति रूपी पताका फहरायी। निष्कर्ष यह है कि 'कहिअत भिन्न न भिन्न' सिद्धान्त केअनुसार–

१. लक्ष्मण सूर्य हैं तो उर्मिला उसकी प्रभा।
२. लक्ष्मण चन्द्र हैं तो उर्मिला उसकी चन्द्रिका।
३. लक्ष्मण शरीर हैं तो उर्मिला उसकी छाया।
४. लक्ष्मण अग्नि हैं तो उर्मिला उसकी दाहिका शक्ति।
५. लक्ष्मण स्वर्ण हैं तो उर्मिला उसकी कान्ति।
६. लक्ष्मण जल हैं तो उर्मिला उसकी तरङ्ग।
७. लक्ष्मण असि हैं तो उर्मिला उसकी धार।
८. लक्ष्मण चन्दन हैं तो उर्मिला उसकी शीतलता।
९. लक्ष्मण ढाल हैं तो उर्मिला उसकी दृढ़ता।
१०. लक्ष्मण पुष्प हैं तो उर्मिला उसकी सुगन्ध। और
११. लक्ष्मण सुधा हैं तो उर्मिला उसकी मधुरता।

इस प्रकार तात्त्विक दृष्टि से विवेचन करने पर संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"यह तत वह तत एक है एक प्राण दोऊ गात।।

उर्मिला के मूक त्याग एवं अनन्य प्रेम के वशीभूत हो लक्ष्मण सदा उर्मिला में रमण करते हैं।

उर्मिलारमण, कल्याणमङ्गलभवन, दासतुलसी–दोष–दवन–हेतू।।

तुलसी–साहित्य के प्रमुख चरित्र और उनकी दृष्टि में लक्ष्मण का मूल्याङ्कन

राम– लक्ष्मण राम के सदा सहयोगी हैं। शैशवावस्था से जीवनपर्यन्त उन्होंने राम का साथ निभाया है। अतः राम एक अग्रज के रूप में लक्ष्मण की सम्पूर्ण भावनाओं का यथावत् आदर करते हैं, परन्तु मर्यादा की सीमा का उल्लङ्घन करते ही लक्ष्मण को संयत भी करते रहते हैं। राम का हृदय लक्ष्मण के प्रति वात्सल्य से परिपूर्ण है और लक्ष्मण का चरित्र राम के समक्ष सङ्कोच, शील और मर्यादा से। बालसुलभ लक्ष्मण की नगर देखने की रुचि का आभास होते ही राम गुरु के अनुशासन की याचना करते हैं। लक्ष्मण के मन में जनकपुरदर्शन की विशेष लालसा होती है, किन्तु प्रभु राम के भय से कुछ कह नहीं पाते। राम अनुज की मुखाकृति का अवलोकन कर उनके मनोभावों को भली–भाँति समझ जाते हैं। इस स्थल पर लक्ष्मण के प्रति राम का वात्सल्य अपनी पराकाष्ठा पर प्रतिष्ठित हो जाता है।

राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हिय हुलसानी।।

राम लक्ष्मण से अत्यन्त मधुर शब्दों में नगर की शोभा का वर्णन करते हैं और एक अबोध बालक के रूप में लक्ष्मण को समझाते हैं–

राम देखावहिं अनुजहिं रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना।।

दोनों भाइयों के प्रेम और भक्ति का अद्भुत दृश्य जनकपुर में विश्वामित्र के निवासस्थल पर भी उपस्थित होता है। गुरु की आज्ञा पाकर शयनकक्ष में उपस्थित राम और लक्ष्मण दोनों में परस्पर स्नेह दिखलायी पड़ता है। लक्ष्मण राम के चरण दबा रहे हैं और स्नेहाधिक्य के कारण राम उनसे बार–बार सोने का आग्रह करते हैं–

चापत चरन लखनु उर लाएं। सभय सप्रेम परम सचु पाएं।।
पुनि–पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता।।

ऐसे कितने ही स्थल रामचरितमानस में समाहित हैं, जहाँ राम और लक्ष्मण के मर्मस्पर्शी प्रेम का दर्शन होता है।

यों तो मानस में लक्ष्मण के प्रति राम का वात्सल्यभाव अनेक स्थलों पर प्रकट हुआ है, किन्तु पुष्पवाटिका–प्रसङ्ग में लक्ष्मण के प्रति राम का स्नेह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

केवल एक अनुज का नहीं, अपितु मित्रवत् दृष्टिगोचर होता है। जिस प्रकार कालिदासप्रणीत "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" नाटक में दुष्यन्त, शकुन्तला के नख–शिख सौन्दर्य से आकृष्ट हो कर अपनी अन्तरङ्ग भावनाएँ मित्र माधव्य से कहते हैं, उसी प्रकार पुष्पवाटिका में राम, जनकनन्दिनी सीता के अलौकिक सौन्दर्य से आकृष्ट हो लोकोत्तर आनन्द का अनुभव करते हुए अपने मनोभावों को लक्ष्मण से कहते हैं। शृङ्गारिक प्रसङ्गों को छोटे भाई से कहना मर्यादा की दृष्टि से उचित एवं युक्तिसङ्गत नहीं है। किन्तु इस स्थल पर लक्ष्मण को राम केवल अपना कनिष्ठ भ्राता ही नहीं, अपितु एक मित्र भी मान रहे हैं। अतः मर्यादापुरुषोत्तम की मर्यादा कुछ शिथिल सी दृष्टिगोचर होती है। परिणामस्वरूप सीता के अलौकिक सौन्दर्य से क्षुब्ध राम, लक्ष्मण से कहते हैं–

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥

इसी प्रकार "सीताहरण" के पश्चात् विरही राम वनाञ्चल में सीता का अन्वेषण करते हुए अपनी विरहजनित वेदना को लक्ष्मण से कहते हैं, जो मर्यादा की दृष्टि से तो समीचीन नहीं है; परन्तु लक्ष्मण के प्रति राम के सख्यभाव को अवश्य प्रदर्शित कर देती है–

देखहु तात बसंत सुहावा। प्रियाहीन मोहि भय उपजावा॥

प्रवर्षणगिरि पर निवास करते हुए विरही राम आकाश में गर्जन करते हुए घनसमूह को देखकर लक्ष्मण से कहते हैं–

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥

इस स्थल पर भी लक्ष्मण के प्रति राम का मैत्री भाव प्रदर्शित हो रहा है। यही कारण है कि गोस्वामी तुलसीदास ने राम के लक्ष्मण से तीन सम्बन्ध माने हैं–लक्ष्मण राम के सेवक भी हैं, मित्र भी हैं और भाई भी।

राम जानते हैं कि लक्ष्मण के स्वभाव की उग्रता कभी दुर्भावनाप्रेरित नहीं होती, यह उग्रता भी उनके निष्कलुष एवं निष्कपट हृदय की एक पहचान है। सर्वोपरि अन्तर्यामी राम को यह भी ज्ञान है कि लक्ष्मण का क्रोध अकारण या निरर्थक नहीं होता। फिर भी वात्सल्य के कारण ही समय–समय पर वे लक्ष्मण को नियन्त्रित भी करते रहते हैं। योगिराज जनक के "वीर विहीन मही मैं जानी" कहने पर जब लक्ष्मण सभा के मध्य प्रभु–प्रताप–कीर्ति को फहराते हुए गर्जना करते हैं तो उचित समय पर राम अनुज को शान्त हो जाने का संकेत करते हैं और उधर संकेत पाते ही लक्ष्ण अपने आप को संयत कर लेते हैं–

सयनहिं रघुपति लखन निवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥

धनुषभङ्ग के पश्चात् "छोटे कुमार" की "खोट" से नितान्त क्रुद्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परशुराम को शान्त करते समय राम का वात्सल्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच ज़ाता है जब वे भृगु–नन्दन से कहते हैं कि लक्ष्मण तो दुधमुँहा बालक है, उस पर मुनि को कोप नहीं करना चाहिये–

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिय न कोहू।।

"राम–वनगमन" के प्रसङ्ग में भी राम और लक्ष्मण के अनन्य प्रेम का दिग्दर्शन होता है। एक, दूसरे के सुख का ध्यान रखकर उन्हें कर्तव्य–पथ से अवगत कराकर प्रेमाधिक्य के कारण अयोध्या में रहने का उपदेश देते हैं[1] तो दूसरे राम की सेवा का ध्यान रखकर उनकी आज्ञा और उपदेश को ठुकरा देते हैं। यह है लक्ष्मण के प्रति राम के अप्रतिम वात्सल्य और लक्ष्मण का राम के प्रति अनन्य भक्ति का ज्वलन्त उदाहरण, जो केवल तुलसीदास के रामचरितमानस में ही उपलब्ध है। जहाँ राम को भाई के प्रेम के कारण झुकना पड़ा और वन में साथ चलने की आज्ञा देनी पड़ी। राम समय–कुसमय सीता की रक्षा का भार इन्हीं को सौंपते हैं[1]; क्योंकि इनकी शक्ति और चरित्र दोनों पर राम का पूर्ण विश्वास है। मारीच–वध करके लौटते समय लक्ष्मण को देख इनका मन भावी चिन्ता से व्यथित हो जाता है, ये लक्ष्मण को प्रेम से डाँटते भी हैं। सीता–हरण के बाद मानवोचित रुदन करते हैं। विवेक को छोड़कर जब विलाप और प्रलाप करते हैं तब लक्ष्मण राम को समझाते हैं[1]। वर्षाकाल और शरद् के आगमन पर अपनी विरह–व्यथा राम लक्ष्मण के समक्ष व्यक्त करते हैं[1]। जब विभीषण राम की शरण में आते हैं तब सुग्रीव से राम–लक्ष्मण की प्रशंसा करके उनकी शक्ति की ओर संकेत करते हैं–

जग महुं सखा निसाचर जेते। लछिमन हनहिं निमिष महुं तेते।।

लङ्का में लक्ष्मण और मेघनाद के प्रथम युद्ध में मेघनाद के द्वारा मूर्च्छित हो जाने पर लक्ष्मण को हृदय से लगाकर राम ने जो विलाप किया है, उसमें राम के द्वारा लक्ष्मण के गुण, यश, धर्म और शक्ति का ही वर्णन किया गया है। उनके मृदुल स्वभाव, त्याग की प्रशंसा करते हुए राम ने उनके प्रति अनुपम अनुराग का परिचय दिया है। लक्ष्मण के बिना राम अपने जीवन को उसी प्रकार असहाय बतलाते हैं, जिस प्रकार पङ्ख से विहीन पक्षी, मणि से विहीन सर्प और सूँड से विहीन गज असहाय हो जाता है। इस प्रकार राम अपने को पुरुषार्थ हीन कहते हैं[1]।

"गीतावली" में राम कहते हैं कि विपत्ति बटाने वाले अनुज लक्ष्मण के विना मैं पुरुषार्थहीन हो गया हूँ। सदा लक्ष्मण के अग्रगामी रहने वाले राम आज लक्ष्मण के अनुगामी बन रहे हैं–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेरो सब पुरुषार्थ थाको।
बिपति बटावन बंधु–बाहु बिनु करौं भरोसो काको।
— — — — — — — — — — — —
गिरि कानन जैहें साखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती।।

इसी प्रसङ्ग में लक्ष्मण की विशेषताओं का मूल्याङ्कन करते हुए राम कहते हैं–

सेवक सखा भगति भायक गुन चाहत अब अथये हैं।।
निज कीरति करतूति तात! तुम सुकृती सकल जये हैं।
मैं तुम्ह बिनु तनु राखि लोक अपने अपलोक लये हैं।।

इस प्रकार राम के अनन्य सहायक के रूप में लक्ष्मण ने अपने चरित्र को विकसित किया है। मेघनाद का वध करके रावण–वध का कारण बनते हैं। लक्ष्मण का चरित्र वास्तव में राम के चरित्र का पूरक है। कुछ ऐसे स्थल हैं, जहाँ मर्यादा की रक्षा के लिये राम कुछ कार्यों को पूर्ण नहीं कर सकते और उन कार्यों को पूर्ण किये बिना राम के जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो नहीं पाता। सीता की अग्नि–परीक्षा के लिये काष्ठ एकत्र करना एवं सीता–निर्वास इसी के अन्तर्गत आते हैं जिन्हे राम लक्ष्मण के द्वारा सम्पन्न कराते हैं। अपने उज्ज्वल चरित्र से राम की सेवा करके लक्ष्मण पाठकों के लिये एक आदर्श प्रस्तुत कर पाते हैं।

भरत–रामचरितमानस में भरत एक ऐसे पात्र हैं जिनका महान् आदर्शों से ओत–प्रोत निष्कलङ्क जीवन, देश और काल की सीमा–रेखाओं से ऊपर उठकर सम्पूर्ण मानवता के लिये एक चिरकालीन प्रेरणा–स्रोत स्वरूप है। इनके चरित्र की प्रशंसा करते हुए राम नहीं अघाते, जनक और वशिष्ठ जैसे महान् ज्ञानी पुरुषों की वाणी प्रशंसा करते थक जाती है। ऐसे भरत के मन में लक्ष्मण के लिये अपार स्नेह सञ्चित है। वस्तुतः आदर्शमय जीवन के साथ–साथ भरत के चरित्र का एक अन्य पक्ष है–अतिसंवेदनशील भावुकता। पर इस भावुकता ने भरत के चित्त को कभी किसी रूप में आच्छन्न नहीं किया; अपितु सदा जाग्रत् विवेक द्वारा नियन्त्रित रहकर उनके चरित्र में और अधिक निखार ला दिया है; और अधिक स्वच्छता एवं पवित्रता का समावेश कर दिया है। मानस के रचनाकार ने इसी रूप में कैकेयी के पुत्र को अपने काव्य में अङ्गीकार किया है। अतः लक्ष्मण के प्रति भरत का मनोभाव भी इसी संवेदनशील भावुकता की मार्मिक व्यञ्जना से युक्त है और जब जब भरत ने लक्ष्मण की ओर दृष्टिपात किया है, उनके भावुक नेत्रद्वय राम–सेवा–रत लक्ष्मण को देखकर सजल हो उठे हैं। भरत का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निष्कपट एवं स्वच्छ हृदय लक्ष्मण की राममयता को पहचानने में कोई भूल नहीं करता और इस प्रकार राम के इस अभिन्नात्मा सहचर के सम्मुख भरत अपने आप को हेय अनुभव करते हैं। ननिहाल से भरत और शत्रुघ्न के लौटने के बाद आपातकालीन परिस्थिति में आहूत जिस राजसभा में माता कौशल्या, गुरु वशिष्ठ तथा मन्त्रीगण, भरत से अयोध्या का राज्य स्वीकार कर लेने का आग्रह करते हैं, उसी राजसभा में लक्ष्मण से अपनी तुलना करते हुए भरत कहते हैं कि "देह–गेह" की आसक्ति को पूर्णतया त्यागकर राम–चरणों में अपने आप को समर्पित कर देने वाले लक्ष्मण को ही केवल जीवन का लाभ प्राप्त हुआ है। अपने जन्म को वे प्रभु (राम) के वन–निष्कासन का कारण ठहराते हैं–

जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरण मनु लावा॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउं अभागी॥

लक्ष्मण के प्रति भरत का यह हृदयोद्गार किसी प्रकार की हीन भावना से ग्रस्त नहीं है, अपितु यह तो उनकी गुणग्राहिता है। महान् भरत के हृदय में लक्ष्मण के लिये असीम श्रद्धा एवं अगाध प्रतिष्ठा के भाव विद्यमान हैं। उनकी दृष्टि में लक्ष्मण महान् है; क्योंकि उन्होंने राज–विलास के वैभव का त्याग कर, माता, पिता, पत्नी का मोह छोड़कर, वन में राम की सेवा में स्वयं को पूर्णतया समर्पित कर दिया है।

जिस भरत के लिये राम ने बार–बार कहा कि भरत जैसा भाई न तो हुआ और न है–

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुअन भरत सम भाई॥

पुनश्च–

लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥

जिस भरत की प्रशंसा में माता कौशल्या ने अपनी सुबुद्धि का सदुपयोग कर दिया है–

बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भए ग्यानु बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥

और प्रेम के वशीभूत होकर जिस भरत को "तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे" कहा, उसी भरत ने लक्ष्मण को "सिय रघुबीरहि प्रान पियारे" कहकर लक्ष्मण के प्रति असीम प्रेम प्रदर्शित किया है। राम और भरत का प्रेम यदि एक आदर्श प्रस्तुत करता है तो भरत और लक्ष्मण का प्रेम एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की भाँति अर्थयुक्त है। भरत का लक्ष्मण के प्रति इतना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अधिक प्रेम है कि राम के साथ लक्ष्मण भी उनके आराध्य बन गये हैं। जब कभी उन्हें राम की स्मृति आयी है, लक्ष्मण को भी उनके साथ स्मरण किया है—

कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ अहहिं कहहु केहिं देस।

— — — — — — — — — — — —

कहुं कहं तात कहां सब माता। कहं सिय राम लखन प्रिय भ्राता।।

— — — — — — — — — — — —

मातु तात कहं देहि देखाई। कहं सिय रामु लखनु दोउ भाई।।

— — — — — — — — — — — —

सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय बिनु पद देखें।।

— — — — — — — — — — — —.

आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रणामू। सुमिरे लखन सहित सिय रामू।।

भरत आजीवन अपने इस अनुज के गुणग्राही रहे। लक्ष्मण के शौर्य और पराक्रम से वे भली—भाँति परिचित थे। पर लक्ष्मण—चरित्र की जो विधा भरत के लिये सर्वथा सराहनीय थी, वह थी राम के लिये लक्ष्मण की एकनिष्ठ 'सेवकाई' की तल्लीनता और इस कार्य के सफल सम्पादन हेतु लक्ष्मण की त्याग और कृच्छ्रता युक्त कठोर जीवन—साधना।

चित्रकूट जाते समय वनमार्ग में लक्ष्मण की तृणशय्या न देखकर भरत को जब आभास होता है कि लक्ष्मण सोये नहीं, रात्रि में राम—सीता के सजग प्रहरी बन, जगकर रात बितायी है तो उनका हृदय द्रवित हो जाता है। विदीर्ण हृदय से वे कह उठते हैं—

लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने।।
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहि प्रानपिआरे।।
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ।।
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहिं छाती।।

ऐसे आदर्शचरित्र भरत के मुख से लक्ष्मण के लिये "भे न भाइ अस अहहि न होने" का प्रयोग लक्ष्मण के चरित्र की महत्ता का द्योतक है। राम—लक्ष्मण को प्राणों से अधिक मानने वाले भरत किसी स्थल पर राम—लक्ष्मण को दुःखी देखते हैं तो उनकी आत्मा व्यथित हो उठती है। भरद्वाज के आश्रम में राम, लक्ष्मण और सीता के प्रति उनके मन से जो उद्गार निकलता है, वह सहृदय व्यक्तियों को रुला देने में पर्याप्त है—

राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं।।

भरत की दृष्टि चित्रकूट में सर्वप्रथम लक्ष्मण पर पड़ती है, और उनके मन में अनुराग उमड़ पड़ता है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूँछे बचन कहत अनुरागे।।

भरत जब जब राम का स्मरण करते हैं तबतब लक्ष्मण को धन्य कहते हैं; क्योंकि वे वन में राम की सेवा में रत हैं। भरत की आत्मा ग्लानि से भर जाती है, वे प्रभुको दुःख देने के अतिरिक्त किसी काम न आ सके। लक्ष्मण–शक्ति का समाचार हनुमान् द्वारा पाकर उनका मन क्षोभ से भर जाता है, किन्तु लक्ष्मण के भ्रातृत्व की प्रशंसा किये बिना उनके मन को सन्तोष नहीं होता। वनवास की अवधि समाप्त होने पर भरत को राम, लक्ष्मण और सीता का न लौटना अत्यधिक कष्टकर हो गया। वे लक्ष्मण की प्रशंसा के व्याज से अपने मन के दुःख को व्यक्त करते हैं–

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी।।

भरत के मन में लक्ष्मण के प्रति जो असीम भ्रातृ–प्रेम का स्वरूप चित्रित किया गया है वह एक महान् आदर्श प्रस्तुत करता है। भरत की दृष्टि में लक्ष्मण एक निर्दोष, सरल, मृदुल स्वभाव वाले कोमल भाई हैं जिन्होंने राम की कठिन सेवा कर अपने जीवन को धन्य कर लिया है। उनकी भ्रातृभक्ति और भ्रातृसेवा के कारण भरत के हृदय में उनका सर्वोच्च स्थान है।

दशरथ–दशरथ लक्ष्मण के पिता हैं। वे रामचरितमानस की अधोलिखित चौपाइयों को पूर्णतः सार्थक करते हैं–

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा।
कोइ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता।।
कोई सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहिं प्रीति सम होई।।

अर्थात् राम को वे अत्यधिक प्यार करते हैं तो लक्ष्मण के प्रति भी उनके हृदय में असीम प्रेम है। राम की अपेक्षा लक्ष्मण के प्रति इनके हृदय में कहीं भी प्रेम की न्यूनता दृष्टिगोचर नहीं होती। जब कभी भी उन्हें राम की स्मृति आयी है लक्ष्मण भी स्वाभाविक रूप से स्मरण हो गये हैं। इसीलिये राम और लक्ष्मण दोनों उनके प्राण तुल्य हैं;–

मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ।।

जनकपुर से जनक के दूत के द्वारा राम–लक्ष्मण विषयक पत्र पाकर दशरथ के मन में दोनों पुत्रों के प्रति समान रूप से वात्सल्य उमड़ता है–

बारि बिलोचन वांचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती।।
रामु लखनु उर कर बर चीठी। रहि गए कहत न खाटी मीठी।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सीता और लक्ष्मण के साथ वन में राम को जाते हुए देखकर दशरथ की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है—

सिय समेत दोउ तनय निहारी। व्याकुल भयउ भूमिपति भारी।।
सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बस राउ लेइ उर लाइ।।

सुमन्त्र के लौट आने पर दशरथ तीनों की कुशलता पूछते हैं—

राम कुसल कहु सखा सनेही। कहं रंघुनाथ लखनु बैदेही।।

दशरथ राम—विरह को अधिक दिनों तक सहन नहीं कर सके और उनकी स्मृति में उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। मरण से पूर्व जीव की कुछ ऐसी ही गति हो जाती है कि वह एक बार अपने प्रियजन को देखना चाहता है, जिनके ममत्व से वह बँधा हुआ होता है। दशरथ की भी ऐसी ही दशा हो जाती है, वे कह उठते हैं—

सखा रामु सिय लखनु जहं तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहउं सतिभाउ।।
— — — — — — — — —
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। रामु लखनु सिय नयन देखाऊ।।

अन्ततोगत्वा मृत्यु से पूर्व दशरथ के प्रलाप की स्थिति का चित्रण अत्यन्त मार्मिक है—

हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर।

स्पष्ट है कि दशरथ राम की ही भाँति लक्ष्मण को भी प्यार करते हैं, क्योंकि अयोध्या में विश्वामित्र मुनि को राम और लक्ष्मण को सौंपते समय उनको ऐसा लगा था कि अपने प्राण ही वे मुनि को दे रहे हैं। जनकपुर में दशरथ अपने दोनों पुत्रों को पाकर सही अर्थ में जीवित हुए—

पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाई।।
सुत हियँ लाइ दुसह दुःख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेटे।।

लक्ष्मण एक पितृभक्त, आज्ञाकारी पुत्र हैं। पुत्र के कर्तव्यों से वे पूर्ण परिचित हैं। पिता के प्रति ममत्व उनके हृदय में है और आदर के भाव भी। जनकपुर में पिता को देखकर उन्हें प्रणाम करने के लिये ललक उठे। उनका इस प्रकार ललक उठना उनके पितृभक्त होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है[1]। चित्रकूट में वशिष्ठ द्वारा पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर लक्ष्मण मर्माहत हो उठते हैं—

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी।।

पिता के प्रति आदर के भाव होते हुए भी वन में राम के कष्ट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देखकर उनका मन खिन्न हो उठता है और उस खिन्नता के वशीभूत सुमन्त्र से दशरथ के प्रति कटु वचन कह देते हैं। किन्तु जब सीता के निर्वासन का कार्य लक्ष्मण को ही सौंपा गया तब उनका मन ग्लानि से भर गया। इस कठोर कार्य को पूर्ण करने में उनकी आत्मा उन्हें बार–बार धिक्कारती रही और उनके मन में पिता के प्रति प्रयुक्त अपने कटु वचनों की स्मृति आने लगी। दु:खों से व्यथित मन को धीरज देते हुए वे अपने आप से कह उठे—

प्रेम निधि पितु को कहे मैं परुष बचन अघाइ।
पाप तेहि परिताप तुलसी उचित सहे सिराइ।। (गी०, ७/३०)

इस भाँति दशरथ के लिये लक्ष्मण प्रिय पुत्र और लक्ष्मण के लिये दशरथ प्रेमनिधि पिता है। दोनों में पिता–पुत्र का आदर्श सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है।

जनक—राम और लक्ष्मण को देखकर योगिराज एवं जनक के मन में उनका परिचय जानने की जिज्ञासा होती है। विश्वामित्र से जनक प्रश्न करते हैं—

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनि कुल तिलक कि नृपकुल पालक।।
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा।।

जनक ने लक्ष्मण के रूप–सौन्दर्य का विशेष रूप से वर्णन किया है। "गीतावली" में जनक लक्ष्मण के रूप–सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि लक्ष्मण का वर्ण पीत–कमल के समान है। राम के साथ वे ब्रह्म के साथ जीव की भाँति सुशोभित हो रहे हैं। रूप–सागर के रत्न, सुन्दर कामिनियों के नेत्रों को सुख देने वाले, अश्विनीकुमार की भाँति, वसन्तऋतु की तरह आनन्द प्रदान करने वाले, सुकृतरूपी वृक्ष के फल की भाँति लक्ष्मण जनक को दिखलायी पड़े *(गी० १/ ६५)*। रामचरितमानस में अनेक स्थलों पर विदेह ने राम के साथ लक्ष्मण के रूप–सौन्दर्य का वर्णन किया है। राम और लक्ष्मण की परस्पर प्रगाढ़ प्रीति देखकर उन्हें ब्रह्म और जीव के सहज स्नेह का आभास हुआ—

सुन्दर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनंदहू के आनंद दाता।।
इन्ह के प्रीति परस्पर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि।।
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू।।

अतः राम और लक्ष्मण के प्रति वात्सल्य भाव का उदय उनके मन में उन दोनों को देखते ही हो गया। यही कारण है कि उनके सम्मान के लिये सभी मञ्चों से विशाल और सुन्दर मञ्च का निर्माण कराकर उस पर दोनों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाइयों को मुनि के साथ आदर सहित बैठाया। राजा जनक के "बीर बिहीन मही मैं जानी" कहने पर लक्ष्मण की भौंहें तन गयीं, क्रोध से उनके अधर फड़कने लगे तथा भरी सभा में गर्जन कर उठे। लक्ष्मण के क्रोध को देखकर स्वयम्बर में आये हुए समस्त राजागण भयभीत हो उठे और जनक भी सङ्कुचित हो उठे।

पर इस प्रसङ्ग के बाद जनक ने लक्ष्मण को सम्मानित वात्सल्य प्रदान किया है और लक्ष्मण ने अपने शील और स्वाभाविक मृदुलता का ही परिचय दिया है, जिसका निर्वाह उन्होंने अन्त तक किया।

हनुमान्— प्रथम दर्शन में ही लक्ष्मण के लिये हनुमान् के मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है—

जग कारन तारन भवभंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवनपति लीन्ह मनुज अवतार।।

इस जिज्ञासा का स्पष्टीकरण रामचरितमानस तथा विनयपत्रिका में तुलसीदास ने व्यक्त किया है। वास्तव में लक्ष्मण शेष के अवतार, जग–कारण, भूमिभय–टारन और अखिलभुवनपति हैं—

सेस सहस्त्र सीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमिभय टारन।।
— — — — — — — — — — — —
धरनी–धरनहार, भंजन–भुवनभार[१]।
— — — — — — — — —
अखिल बिस्व कारन करन।

अपनी जिज्ञासा का स्पष्टीकरण हो जाने पर हनुमान् ने भक्त के रूप में राम की सेवा की और वैसा ही भक्तिपूर्ण व्यवहार उन्होंने लक्ष्मण के साथ भी किया है। उनका सम्पूर्ण जीवन राम और लक्ष्मण की सेवा में व्यतीत हुआ है। क्रोधित लक्ष्मण की क्रोध–शान्ति के लिये स्तुति करना इनकी भक्ति का परिचायक है—

तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना।।
करि बिनती मंदिर लै आये। चरन पखारि पलंग बैठाये।।

चरण धोकर विधिवत् लक्ष्मण की सेवा करके सीता के अन्वेषण के लिए सुग्रीव द्वारा बनायी गयी सम्पूर्ण व्यवस्था से लक्ष्मण को परिचित कराकर हनुमान् ने अपनी भक्ति का परिचय दिया है।

युद्धस्थल में लक्ष्मण के साथ–साथ युद्ध किया और लक्ष्मण को यथाशक्ति सहयोग दिया। लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर राम के पास उन्हें ले आना, सुषेण वैद्य को उठा लाना, लक्ष्मण के लिये सञ्जीवनी बूटी लाना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आदि ऐसे स्थल हैं, जहाँ हनुमान् ने लक्ष्मण की भक्तिपूर्वक सेवा की है। उनकी राम की भाँति लक्ष्मण को भी अपने अनुकूल रखने की प्रबल कामना रही है। यही कारण है कि सीता ने उनकी कामना के अनुरूप ही आशीष दिया है—

सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति, रहहुँ समेत अनन्त॥

हनुमान् की दृष्टि में लक्ष्मण शेषावतार हैं और उनकी भक्ति, सेवा उन्हें प्रिय है।

विभीषण— विभीषण ने लक्ष्मण को क्रुद्ध रूप में नहीं देखा है। इन मनोरम शारीरिक सौन्दर्य पर वे मुग्ध हैं। प्रथम दर्शन में ही राम और लक्ष्मण की मनोरम छवि देखकर वे कृतकृत्य हो गये। उनका जीवन राम और लक्ष्मण का सौन्दर्य देखकर धन्य हो गया है—

दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता॥

बहुत ही शालीनतापूर्वक विभीषण लक्ष्मण से गले मिलते हैं। उन्होंने एक सच्चे आर्त भक्त के रूप में उन्होंने राम तथा रामानुज लक्ष्मण की सेवा की है। उनकी दृष्टि में राम साक्षात् विष्णु के अवतार हैं और शेषावतार लक्ष्मण उनके सेवक हैं।

लक्ष्मण ने विभीषण को रावण के लघु भ्राता के रूप में ही देखा है। विभीषण पर बहुत समय तक उनको विश्वास नहीं होता। इसलिये समुद्र से विनय करने की विभीषण की नीति लक्ष्मण को अच्छी नहीं लगती—

मंत्र न यह लछिमन मन भावा। रामबचन सुनि अति दुख पावा॥
नाथ दैव कर कौन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥
कादर मन कहुं एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

परन्तु विभीषण अपने कार्यों से लक्ष्मण के विश्वासपात्र बन गये। अपने भ्राता की मृत्यु पर विभीषण ममतावश रुदन करने लगे, तब लक्ष्मण ने बहुत प्रकार से उन्हें समझाया तथा राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने नल, नील, अङ्गद, हनुमानादि श्रेष्ठ वानरों के साथ लङ्का जाकर विभीषण को वहाँ का राजा बनाया। विधिवत् लक्ष्मण ने विभीषण का राज्याभिषेक किया।

अयोध्या से विदाई के समय दी जाने वाली उपहार की वस्तुएं, आभूषण वस्त्रादि लक्ष्मण ने विभीषण को अपने हाथों से दिये—

प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए॥

और सम्मानपूर्वक विभीषण की विदाई की।

अतः लक्ष्मण और विभीषण की पूर्व की विचार—विभिन्नताएँ समाप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो गयीं और लक्ष्मण ने विभीषण तथा विभीषण ने लक्ष्मण का विधिवत् सम्मान किया।

मेघनाद– मेघनाद एक महान् योद्धा के रूप में रामचरितमानस में चित्रित है। लक्ष्मण की वीरता का उसे भली भाँति ज्ञान है, अतः प्रथम युद्ध के समय ही वह उन्हें खोजता है–

कहं कोसलाधीस द्वौ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता।।

मेघनाद संसार के श्रेष्ठ योद्धाओं में अग्रगण्य है। सम्मुख–युद्ध में वह अपराजेय है–

वारिदनाद जेठ सुत तासू। भट मँहु प्रथम लीक जग जासू।।
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई।।

देवराज इन्द्र को भी युद्ध में पराजित करके वह "इन्द्रजीत" के नाम से भुवनविख्यात है। पर वही मेघनाद अपने प्रतिद्वन्द्वी योद्धा लक्ष्मण की वीरता का लोहा मानता है। रणस्थल में लक्ष्मण के शस्त्रों की विनाशकारी अमोघ प्रहार शक्ति को देखकर वह चकित हो जाता है और मन ही मन आशङ्कित हो उठता है कि कहीं लक्ष्मण मेरा प्राणान्त न कर दें–

नानाविधि प्रहार कर सेषा। राक्षस भयउ प्रान अवसेषा।।
रावनसुत निज मन अनुमाना। संकट भयउ हरिहि मम प्राना।।

मेघनाद की यह स्वीकारोक्ति स्पष्ट प्रमाणित करती है कि इन्द्र को भी पराजित करने वाला रावणात्मज किस सीमा तक आतङ्कित है अप्रतिम धनुर्धर सुमित्रात्मज से। लक्ष्मण के प्रति मेघनाद का यह विचार लक्ष्मण के पुरुषार्थ, शौर्य, शक्ति और धनुर्विद्या में प्रवीणता आदि गुणों को विशेष गौरव प्रदान करता है। वस्तुतः वीरता का सही मूल्याङ्कन तभी होता है जब वह शत्रु द्वारा भी प्रशंसित हो।

लक्ष्मण और मेघनाद तुल्य बल के योद्धा और वीर हैं। रामचरितमानस में दोनों वीरों का युद्ध प्रशंसनीय है।[1] मेघनाद का युद्ध मायायुक्त है, अतः लक्ष्मण को उस पर विजय प्राप्त करने में कठिनाई हुई। जब राम ने लक्ष्मण को मेघनाद के यज्ञ का विध्वंस कर उसे मारने की आज्ञा दी तो राम के सम्मुख लक्ष्मण ने मेघनाद के वध की प्रतिज्ञा की–

जौ तेहि आजु बधे बिनु आवौं। तौ रघुपति सेवक न कहावौं।।
जौ सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतउं रघुबीर दोहाई।।

वानरों द्वारा मेघनाद के विजय–यज्ञ को विध्वस्त कराकर लक्ष्मण ने रण में उसे आने का आह्वान दिया। अबकी बार मेघनाद के मायावी युद्ध को लक्ष्ण ने असफल कर दिया। मेघनाद के भयङ्कर युद्ध से वानरों को त्रस्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देखकर लक्ष्मण ने उसका वध कर दिया। मेघनाद से देवता लोग त्रस्त हो चुके थे, इसलिये उसका वध होने पर उन्होंने भी फूलों की वर्षा करके अपनी प्रसन्नता व्यक्त की।

रावण एक महान् योद्धा है, किन्तु वह साथ ही दम्भी भी है। उसके दम्भ के कारण ही उसका विनाश होता है। लक्ष्मण द्वारा भेजे हुए पत्र का अपने अभिमान के कारण सम्मान नहीं करता। उसको राम और लक्ष्मण के तेज का ज्ञान नहीं है। लक्ष्मण के "सीता देइ मिलउ न त आवा काल तुम्हार" के सन्देश का अपनी प्रमत्तता के कारण उपहास करता है और उन्हें एक साधारण तपस्वी समझता है। अङ्गद से लक्ष्मण को "अनुज तासु दुख दुखी मलीना" कहकर उनकी उपेक्षा करता है। अपने समान योद्धा अपने वीर पुत्र मेघनाद की मृत्यु का समाचार पाकर स्वयं राम की सेना पर चढ़ आता है और वानरों को त्रस्त करता है। फलस्वरूप लक्ष्मण को युद्धस्थल में आना पड़ता है—

निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ, नाइ रामपद माथ॥

लक्ष्मण रावण से अत्यन्त भयङ्कर युद्ध करते हुए मूर्च्छित हो जाते हैं। चेतना आने पर लक्ष्मण अपने अनवरत वाणों के प्रहार से रावण को मूर्च्छित कर देते हैं। रावण मायावी युद्ध करता है। लक्ष्मण उसकी माया को समझने में असमर्थ हैं।

रावण लक्ष्मण पर क्रुद्ध होता है; क्योंकि उन्होंने उसके पुत्र मेघनाद का वध किया है—

खोजत रहेउं तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावऊँ छाती॥

परन्तु राम से विरोध करके किसी का भी कल्याण नहीं हुआ है, रावण इसे अभी तक नहीं समझ रहा है। इस कारण लक्ष्मण की दृष्टि में रावण खल है, मूढ़ है। दोनों की दृष्टि में दोनों एक दूसरे के कट्टर प्रतिद्वन्द्वी हैं। रावण ने सत्य का आश्रय त्याग कर राम के साथ वैर किया है तो लक्ष्मण ने श्रद्धा और भक्तिपूर्वक राम की सेवा की है। एक ने अपने को विनाशरूपी तट पर खड़ा कर दिया है तो दूसरे ने अपने पराक्रम को भीं राम का प्रताप स्वीकार कर लिया।

कौसल्या एक आदर्श माता हैं। उनके लिए चारों पुत्र एक समान हैं। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों पुत्रों के प्रति उनका वात्सल्य प्रशंसनीय है। वह वात्सल्य राम और भरत के प्रति विशेष रूप से प्रदर्शित हुआ है। लक्ष्मण की राम–सेवा देखकर स्वाभाविक रूप से लक्ष्मण के प्रति माता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कौसल्या का वात्सल्य अधिक निखर गया है। वह वात्सल्य अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है। चित्रकूट में माँ कौसल्या द्वारा लक्ष्मण का आलिङ्गन करना एवं अपनी स्नेहाश्रुओं से उन्हें नहला देना लक्ष्मण के प्रति उनके असीम ममत्व को प्रदर्शित करता है। माता से समुचित स्नेह पाकर बालक का प्रफुल्लित हो उठना अत्यन्त स्वाभाविक है। माँ का प्रेम भी उस स्थल पर अपनी उदात्तता पर पहुँच गया है। कौसल्या द्वारा अपने प्रेमाश्रुओं से नहला देने के कारण लक्ष्मण विगतश्रम हो गये।

माताएँ स्नेहाधिक्यवश पुत्रविरह अधिक समय तक नहीं सह पातीं और पुत्र के आगमन की उत्कट कामना के वशीभूत तरह–तरह की मनौतियाँ मान देती हैं। यह साधारण स्वाभाविक प्रवृत्ति कौसल्या में भी दिखलायी पड़ती है। वनवास की अवधि समाप्त होने पर भी पुत्रों को न देख पायी कि माँ कौवे को दूध–भात देकर प्रसन्न करने की कामना कर बैठीं–

दूध भात की दोनी देहों, सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम–लखन उर लैहौं।।

(गी० ६/१९)

माता के हृदय में अवधि की समाप्ति होने पर पुत्र को देखने की कामना का बहुत ही मनोवैज्ञानिक चित्रण गोस्वामीजी ने किया है। पुत्रों को पाकर आनन्द से प्रमुदित होकर पुत्रों की सुकुमारता को देखकर, भयङ्कर राक्षसों के विनाशक के रूप में पाकर एक कौतूहल का भी अभ्युदय होता है।

कौसल्या की दृष्टि में लक्ष्मण एक आदर्श पुत्र हैं। सच्चे अर्थ में राम सेवक होने के कारण उनके मन में लक्ष्मण का विशिष्ट स्थान बन गया है। यही कारण है कि राम को देखकर उन्हें जितना हर्ष होता है उतना ही लक्ष्मण को देखकर भी।

सुमित्रा– सुमित्रा एक ऐसी माता हैं जिनका अपने पुत्र के प्रति ममत्वपूर्ण अन्धा प्रेम नहीं हैं। पुत्र को कर्तव्य की ओर प्रेरित करना उनका परम आदर्श है। सच्चे अर्थ में वे राम की हितकारिणी हैं। अतः एक वीराङ्गना की भाँति पुत्र को सत्कर्म की ओर प्रेरित करती हैं। राम–सेवार्थ लक्ष्मण को वन जाने की प्रेरणा और उपदेश देकर अपने तथा अपने पुत्र का गौरव बढ़ा देती हैं। राम का वनगमन सुनकर उन्हें कदाचित् ही दुःख हुआ, अपितु लक्ष्मण को राम की सेवा का अवसर मिला– इस कल्पना से वे प्रमुदित ही होती हैं।

अपने पुत्र लक्ष्मण को नाना प्रकार की उपदेशात्मक बातों से राम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की सेवा करने का आदेश देना उनके आदर्श विचारों का द्योतक है। सत्कर्म पर चलने का आदेश तो सभी माताएँ पुत्रों को देती हैं, किन्तु प्रेमाधिक्य के कारण पुत्र को कठिन कार्यों के सम्पादन का भार सौंपना केवल सुमित्रा ही कर सकती हैं जिन्हें पुत्र की सुकुमारता से अधिक राम-सेवा के लिये कठिन कष्ट झेलना ही श्रेयस्कर लगता है। अपनी दी गयी शिक्षाओं पर पूर्णरूपेण आचरण करते हुए लक्ष्मण को देखना उनकी उत्कट अभिलाषा है। यही कारण है कि अयोध्या या चित्रकूट में विदाई के समय अपने पुत्र से मिलती नहीं और जब लक्ष्मण अपनी परीक्षा में खरे उतरते हैं, तब सुमित्रा अतिशय वात्सल्य से लक्ष्मण का आलिङ्गन करती हैं—

भेटेउ तनय सुमित्रा रामचरन रति जान।

लक्ष्मण एक आज्ञाकारी, आदर्श माता के आदर्श पुत्र हैं। माता के मन को कठिन कार्य के सौंपने में शङ्का है, किन्तु लक्ष्मण माँ से भी आगे बढ़ जाते हैं। माता की आज्ञा पाकर प्रमुदित मन से अपने भाग्य की सराहना करते हुए उत्कण्ठित मन से राम की सेवा के लिये प्रस्तुत हो उठते हैं। रामचरितमानस तथा गीतावली में इस स्थल का तुलसीदास ने बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है। लक्ष्मण की मानसिक स्थिति के स्वाभाविक चित्रण में तुलसीदास की कला निखर उठी है। दोनों ग्रन्थों में एक ही प्रसङ्ग पर उनकी द्विविध कलात्मकता दिखलायी पड़ती है—

मातु चरन सिर नाइ, चले तुरत संकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ, मनहुं भाग मृग भाग बस।।
तुलसी सुनि सिष चले चकित चित, उड़्यों मानो बिहग बधिक भए भोरे।।
(गी० २/११)

राम की सेवा करना लक्ष्मण अपना कर्तव्य समझते हैं, तथा लक्ष्मण का भ्रातृ-सेवाव्रत सुनकर सुमित्रा को हार्दिक सुख की अनुभूति होती है—

सुवन सोक संतोष सुमित्रहिं रघुपति भगति बरे हैं।
छिन-छिन गात सुखात छिनहि छिन हुलसत होत हरे हैं।।
(गी०६/१३)

सुमित्रा की दृष्टि में लक्ष्मण का वास्तविक व्यक्तित्व कुछ नहीं है। उनकी दृष्टि से दो पुत्रों के होने पर भी वह पुत्रवती नहीं है। यदि लक्ष्मण राम की प्रगाढ़ भक्ति करके अपने जीवन को धन्य कर लेते हैं तब सुमित्रा अपने को पुत्रवती समझती हैं। राम से अनुपम प्रेम होने के कारण उनका आदर्श ही भिन्न है—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कैकेयी– लक्ष्मण के प्रति कैकेयी की दृष्टि एक ममतामयी जननी के समान है। "प्राण ते अधिक राम प्रिय मोरे" के अनुसार ही लक्ष्मण से भी स्नेह करती हैं। उनका वात्सल्य लक्ष्मण के प्रति भी उसी प्रकार प्रवहमान है जिस प्रकार भरत के प्रति। कैकेयी को यह विदित है कि लक्ष्मण चपल एवं कुछ क्रोधी स्वभाव के हैं, पर उन्हें यह भी विदित है कि उनका क्रोध किसी प्रकार की ईर्ष्या या हीनभावनाजनित नहीं है, अपितु प्रकारान्तर से वह क्रोध उनकी निश्छलता का ही द्योतक है। तभी तो हीनमति मन्थरा जब उनसे मिलकर विरूप बोलती है तो क्रोधी पुत्र के स्वभाव से परिचित एक माँ का स्नेह बोल उठता है–

हँसि कह रानि गालु बड़ तोरे। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे।।

कैकेयी हँसी के साथ मन्थरा की बात को टाल देती हैं। इतना ही नहीं, वे मन्थरा से अपने पुत्र भरत से भी पहले लक्ष्मण की कुशल पूछती हैं–

सभय रानि कह कहसि किन, कुशल रामु महिपालु।
लखनु भरतु रिपुदवनु सुनि, भा कुबरी उर सालु।।

पर वहाँ तो "विघन मनावहिं देव कुचाली" क्रियाशील थे, अतः मन्थरा की कुमन्त्रणा सफल हो गयी। रामराज्याभिषेक में कैकेयी को अयोध्यांनरेश दशरथ द्वारा अपने पुत्र भरत को वञ्चित करने का षड्यन्त्र दिखलायी पड़ता है। परिणामस्वरूप राम के प्रति उनका विचार बदल जाता है। राम को वन जाना पड़ता है। राम के साथ जब लक्ष्मण भी वनगमन को उद्यत होते हैं तो कैकेयी लक्ष्मण के प्रति उदासीनता का भाव प्रदर्शित करती हैं। लक्ष्मण का व्यवहार भी कैकेयी के प्रति उदासीन है। एक स्थल पर कैकेयी के प्रति उनके मन में आक्रोश आता है, किन्तु राम की मर्यादा से वे कुछ कह नहीं पाते। निषाद के मुख से कैकेयी को दुर्वचन कहते सुन उसे समझाना इनके शालीन व्यवहार का द्योतक है। यही कारण है कि अयोध्या लौटने पर वे कैकेयी से बार–बार मिलते हैं; क्योंकि राम की सेवा का अवसर लक्ष्मण को माता कैकेयी के कारण ही मिला। माँ कैकेयी के प्रति इनके मन में जो प्रेम उमड़ता है उसका परिणाम उल्लेखनीय है–

लछिमन सब मातन्ह मिलि, हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहं पुनि पुनि मिले, मनकर छोभु न जाइ।।

सीता– सीता की दृष्टि में लक्ष्मण "सहज सुभाय सुभग तन गोरे" प्रिय लघु देवर हैं। सीता के हृदय में लक्ष्मण के प्रति उतना ही स्नेह है जितना स्नेह एक आदर्श भारतीय महिला के हृदय में लघु देवर के प्रति होता है। सीता के हृदय में लक्ष्मण के प्रति पुत्रवत् वात्सल्य है–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जल को गये लक्खन है लरिका, परिखौं, पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
(कविता०२/१२)

किन्तु सीता राम के समान लक्ष्मण के शौर्य की भी प्रशंसा करती हैं। उनकी वीरता, धैर्य, संयम तथा सेवा पर सीता को गर्व है। इसका स्पष्टीकरण सुमन्त्र से उन्होंने किया भी है—

प्रान नाथ प्रिय देवर साथा। वीर धुरीन धरे धनु भाथा।

माँ गङ्गा से पति और देवर की समान रूप से मङ्गल की कामना करती है, यह उनके हृदयस्थल में निहित लक्ष्मण के प्रति असीम स्नेह का द्योतक है—

पति देवर संग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहिं पूजा तोरी।।

लक्ष्मण एक आदर्श देवर की भाँति सीता की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए विधिवत् उनकी सेवा करते हैं। राम की आज्ञा के विरुद्ध सीता के "मरम वचन" से विवश लक्ष्मण सीता को वन में अकेली छोड़कर राम के पास जाते हैं। कर्तव्यपरायणता ने लक्ष्मण को यहाँ भी बाध्य किया और आत्मसन्तोष के लिये सीता को वे "वन दिसि देव" को सौंप देते हैं, जिसके कारण राम से उन्हें कटु वचन भी सुनना पड़ता है।

सीता का विवेक उनके अपहरण के बाद जाग्रत् होता है, तब उन्हें लक्ष्मण का स्मरण आता है जो अत्यन्त स्वाभाविक है। अतः हठात् उनके मुख से निकल पड़ता है—

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउं कीन्हेउं रोसा।।
— — — — — — — — — — — —
कहे कटु बचन, रेख नाँघी मैं, तात छमा सो कीजै। (गी०३/७)

और लक्ष्मण के प्रति कहे गये दुर्वचन के कारण खेद प्रकट करती हैं।

इसके अतिरिक्त मानस में कई ऐसे स्थल आते हैं, जब सीता राम के साथ लक्ष्मण को स्मरण करती हैं। हनुमान् से दोनों के मङ्गल—समाचार जानने की जिज्ञासा करती हैं। लङ्का—विजय के बाद राम के दुर्वचनों से बचने के लिये लक्ष्मण से अग्नि—प्रकट करने की याचना करती हैं जिसका अक्षरशः लक्ष्मण पालन भी करते हैं—"पावक प्रगटि काठ बहुलाये"।

वन में सीता को निर्वासित करते समय लक्ष्मण की मानसिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। यह कठोर कार्य करते हुए लक्ष्मण को बहुत ही हार्दिक दुःख है। उनकी आत्मा विलख उठती है। सीता को लक्ष्मण की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भावनाओं का पूर्ण ज्ञान है। उनको अपने निर्वासन से अधिक दुःख लक्ष्मण की आन्तरिक पीड़ा से है। वहाँ सीता का वात्सल्य देखने योग्य है—

दीनबन्धु दयालु देवर, देखि अति अकुलानि।
कहत वचन उदास तुलसीदास त्रिभुवन रानि।। (गी०७/२८)

इस स्थल पर लक्ष्मण का हृदय ग्लानि और कर्तव्यपालन की भावना के द्वन्द्व में सङ्घर्षरत है, जिसका बहुत ही मनोवैज्ञानिक चित्रण गीतावली उत्तरकाण्ड में तुलसीदास ने किया है—

इतहिं सीय—सनेह—संकट उतहिं राम—रजाइ।
मौनही गहि चरन गौनै सिख सुआसिष पाइ।। (गीता ७/३०)

उर्मिला—रामकथा के प्रबुद्ध पाठकवर्ग के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होना अत्यन्त स्वाभाविक है कि लक्ष्मण जैसे पति के लिये उनकी पत्नी उर्मिला किस प्रकार का विचार रखती हैं। लक्ष्मण, जो अपनी यशोवर्द्धक कीर्तिरश्मियों के साथ रामचरितमानस के विशाल नभोमण्डल में एक अत्युज्ज्वल ज्योतिष्क की भाँति चिर देदीप्यमान हैं, उन्हें पति रूप में पाकर अनुपम रूप—लावण्य से युक्त सीरध्वज—नन्दिनी क्या अनुभव करती हैं; दोनों के दाम्पत्य—जीवन में किस प्रकार की अभिज्ञताएँ सञ्चित होती हैं; अपने कर्मवीर पति के वृहत्तर कर्ममय जीवन के प्रति उनकी क्या दृष्टिभङ्गिमा है? आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनसे पाठक—हृदय सहज ही आन्दोलित हो उठता है।

परन्तु रामचरितमानस की सम्पूर्ण परिधि में केवल विवाह—प्रसङ्ग के एक दो स्थलों पर उर्मिला के अति संक्षिप्त उल्लेख के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी उनका वर्णन उपलब्ध नहीं है। विचारणीय प्रश्न यह है कि गोस्वामी तुलसीदास ने उर्मिला—चरित्र पर कोई प्रकाश क्यों नहीं डाला? क्या उनकी दृष्टि में उर्मिला मानस की एक नगण्य पात्र हैं? तुलसी की इसी न्यूनता को दृष्टि में रख कर सुधी समीक्षक यह आरोप लगाते हैं कि कवि ने उर्मिला के साथ न्याय नहीं किया। जहाँ मानस में सीता—चरित का निरूपण आद्योपान्त किया वहीं उर्मिला—चरित—निरूपण में तुलसीदास मौन हैं। कवि ने उर्मिला—चरित्र पर प्रकाश क्यों नहीं डाला? इस पर "इदमित्थं" कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि तुलसी—पूर्व आर्ष ग्रन्थों में भी उर्मिला की चर्चा नहीं के बराबर है। यहाँ तक कि आदिकवि वाल्मीकि ने भी अपने महाकाव्य में उर्मिला—चरित्र पर प्रकाश नहीं डाला। बहुत सम्भव है कि "नानापुराण—निगमागम" के उद्घोषक गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपने पूर्ववर्ती कवियों का ही अनुसरण किया हो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परन्तु यह तो हुआ विचार का एक पक्ष। किसी भी विषय पर विवेचन के कई पक्ष हो सकते हैं; क्योंकि किसी व्यक्ति–विशेष के व्यक्तित्व के कई आयाम होना जिस प्रकार अस्वाभाविक नहीं है, उसी प्रकार एक ही घटनाक्रम के प्रति भिन्न भिन्न चारित्रिक वैशिष्ट्यों से युक्त चरित्रों की प्रतिक्रियाओं एवं आचरणों में भिन्नता का विद्यमान रहना भी असम्भव तथा असङ्गत नहीं है। यहाँ तक कि उस परिस्थिति में भी, जबकि सभी चरित्र एक ही उद्देश्य की ओर बढ़ रहे हों। इसी सन्दर्भ में यह तथ्य भी विचारणीय है कि कभी कभी एकाधिक चरित्रों की भिन्न भिन्न प्रतिक्रियाओं के संयुक्तीकरण से कोई एक विशेष जीवन–धारणा या मूल्यबोध स्पष्ट होता है अथवा किसी उद्देश्यविशेष की सिद्धि होती है। इसी बिन्दु पर विचार करते हुए यदि हम कहें कि तुलसी ने एक परिच्छन्न सचेतनता के साथ ही एक तरफ सीता के मुख्य व्यक्तित्व एवं दूसरी तरफ उर्मिला के मौन व्यक्तित्व का प्रतिपादन कर भारतीय संस्कृति एवं ऐतिह्य के अनुकूल महान् पातिव्रत धर्म की एक आदर्श रूपरेखा प्रस्तुत कर दी है, तो क्या साहित्य के समालोचक, गवेषक, समीक्षकों के लिये यह नितान्त अग्राह्य तथ्य होगा? वस्तुतः उर्मिला–चरित्र के रहस्य का उन्मोचन, उर्मिला की अन्तरतम मौन अभिव्यक्तियों को व्यक्त रूप में उपस्थित करने का यही एक मात्र आधार हो सकता है।

रामचरितमानस की सर्वाग्रगण्या नारी ने यदि काव्य में अपनी उपस्थिति का प्रबल आभास कराते हुए पातिव्रत धर्म के निर्वाह हेतु पति के साथ जाना ही श्रेयस्कर समझा, तो लक्ष्मणप्रिया उर्मिला के अस्तित्व का काव्य में दूर–दूर तक कोई आभास ही नहीं! यह कैसा विरोधाभास! पर यह विरोधाभास सद्यः रसाभास में परिवर्तित हो जाता है। जब प्रबुद्ध पाठक का चित्त यह अनुभव कर हर्षविभोर हो उठता है कि पति के जीवन–उद्देश्यों की पूर्ण चरितार्थता हेतु एक पत्नी अपने व्यक्तित्व को किस सीमा तक न्यूनातिन्यून कर सकती है! इसी अनुभूति के मार्ग पर चलकर हम गोस्वामी तुलसीदास के चिन्तन–धरातल तक पहुँच जाते हैं, जहाँ उर्मिला की नीरव वाणी का वेणुरव हमारे हृदय में व्यक्त होकर ध्वनिमय हो उठता है।

पतिव्रता नारी के लक्षणों का वर्णन करते हुए मानसकार कहते हैं कि पतिपरायणा नारी मनसा, वाचा, कर्मणा अपने आप को पति के चरणों में समर्पित कर देती है, पतिसेवा ही उसका एकमात्र धर्म एवं व्रत होता है—

"एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय बचन मन पति पद–प्रेमा।।

"पति पद प्रेमा"—तुलसी की इस छोटी सी अर्द्धाली का चतुर्थांश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक साथ बहुत कुछ कह देता है। पति के चरणों में प्रेम रखने वाली पत्नी के समक्ष तो पति के सामर्थ्यों की उत्कर्षता, पति की श्रेष्ठता स्वतः सिद्ध है।

विवाह–प्रसङ्ग में तुलसीदास उर्मिला के आध्यात्मिक स्वरूप की व्याख्या करते हैं जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। उर्मिला का आध्यात्मिक स्वरूप यह प्रमाणित करता है कि वे एक असाधारण नारी हैं जिनके लिये कवि अत्यन्त उच्च एवं श्रेष्ठ धारणा रखते हैं। अतः यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि पतिव्रता स्त्री के रूप में उर्मिला को मानसकार अवश्य उत्तम कोटि की श्रेणी में रखते हैं। महासती अनसूया के माध्यम से तुलसी की अपनी मान्यता है कि उत्तम कोटि की पतिव्रता नारी की दृष्टि स्वप्न में भी अन्य पुरुष पर नहीं जाती–

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥

परख की इस कसौटी को स्वीकार कर लेने पर हम पाते हैं कि लक्ष्मण न केवल उर्मिला के जीवन में अद्वितीय पुरुष हैं, अपितु उनके लिये वे पुरुषश्रेष्ठ भी हैं। इस स्थल पर हम इस संशयजनित अन्तर्द्वन्द्व से विचलित हो सकते हैं कि कदाचित् उर्मिला का मौन उनकी विवशता तो नहीं था? पर वस्तुस्थिति इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि अयोध्या के राज–परिवार में गृहवधुओं के लिये घुटन का वातावरण कहीं नहीं था। फिर सम्पूर्ण रामचरितमानस में "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" का सिद्धान्त ही तो बलवान् है। ऐसे परिवेश में यदि एक वधू अपने पति का अनुगमन कर सकती है तो दूसरे को भी तद्रूप आचरण करने की स्वतन्त्रता अवश्य थी। समस्त परिस्थितियों का सूक्ष्म एवं औचित्यपूर्ण अवलोकन यह स्पष्ट करता है कि उर्मिला के प्रखर प्रतिभासम्पन्न विवेक ने अपने पति के कर्तव्य कर्मों के स्वरूप एवं प्रयोजन को पहचाना, उनका आकलन किया और अन्ततः अपने पति के प्रति अगाध आस्था, प्रेम एवं श्रद्धा का प्रदर्शन करते हुए स्वेच्छा से अपने आप को अन्तरालवर्तिनी ही रखा। उर्मिला के विशाल मौन में अपने पति के लिये महान् गौरवबोध एवं परिपूर्ण समर्पण की भावना निहित है।

समस्त तुलसी–साहित्य में उर्मिला एक शब्द भी लक्ष्मण के प्रति सम्बोधित नहीं करतीं। यह त्रिकालदर्शी तुलसी की कुशाग्र बुद्धि की विशेषता है। तुलसीदास यदि उर्मिला द्वारा लक्ष्मण के प्रति कोई सम्बोधन करा देते तो उर्मिला की वह अमर गरिमा समाप्त हो जाती जो उसकी मूक भाषा में है।

उर्मिला के लिये लक्ष्मण एक आदर्श पति हैं, इसलिये वह अपने समस्त सुखों का त्याग कर पति को अपने कर्तव्य की ओर प्रेरित करती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिस्थितियों से आये दुःख को मौन भाव से सहन करती हैं, पति की राम–भक्ति और सीता–सेवा पर गर्व करती हैं।

सम्पूर्ण तुलसी–साहित्य में उर्मिला का न तो दुःख प्रकट हुआ है और न उनकी मूक वेदना। उनका मौन ही उनकी पतिपरायणता का द्योतक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सप्तम अध्याय

वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में लक्ष्मण-चरित्र का मूल्याङ्कन

- रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास की शील-योजना एवं लक्ष्मण
- शील एवं चरित्र का अन्तर
- लक्ष्मण-चरित्र के विकास में तुलसीदास द्वारा अधीत ग्रन्थों का प्रभाव
- आधुनिक भारतीय समाज में लक्ष्मण-चरित्र की उपयोगिता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सप्तम अध्याय

वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में लक्ष्मण-चरित्र का मूल्याङ्कन

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास की शील-योजना एवं लक्ष्मण

साहित्य संस्कृति का वाहक है और कवि संस्कृति के सभी अङ्गों द्वारा प्रेरणा प्राप्त करते हुए अध्येता के लिये अभिव्यक्ति प्रदान करता है। परम्पराओं का विरोध करनेवाले क्रान्तिकारी कवि भी सांस्कृतिक तत्त्वों का अपलाप नहीं कर पाते। यही कारण है कि संस्कृति का वह स्वरूप, जो सार्वकालिक और सार्वभौम है, कवि की वाणी में प्रतिष्ठा प्राप्त कर शाश्वत हो जाता है। साहित्यकार के लिये मानव का स्वास्थ्य और मङ्गल इष्ट है, जो संस्कृति का प्राण है।

संस्कृति जीवन को अपूर्णता से पूर्णता की ओर ले जाने वाली है। व्यक्ति को अन्धकार, अज्ञान और अविवेक से निकाल कर प्रकाश, माधुर्य और सौन्दर्य तथा ज्योति की ओर अग्रसर कराती है। संस्कृति कुल, समाज, जाति तथा विश्व के समक्ष मानव-सन्तति के लिये शिष्टता, सुजनता तथा शील के मूल्यवान् आदर्शों को प्रस्तुत करती है। ये प्रतिष्ठित आदर्श विचार तथा कर्म दोनों क्षेत्रों में पल्लवित, पुष्पित एवं विकसित होते रहते हैं। लोक-जीवन की विशिष्टताएँ तथा आध्यात्मिक क्षेत्र की उपलब्धियाँ संस्कृति के आवश्यक अवयव हैं। दृष्टिकोण की उदारता के लिये और पूर्णता की ओर प्रयाण करने के लिये मानव को श्रेष्ठ साधना करनी पड़ती है। जिस व्यक्ति की आत्मिक शक्ति क्रियाशील नहीं है, जिसका दृष्टिकोण उदार नहीं है, जिसकी भावना में तीव्रता और चित्त-वृत्ति में विस्तार नहीं है और जो असहाय दीन दुःखियों के लिये अवलम्बन देने की क्षमता नहीं रखता, वह अपूर्ण है, असंस्कृत है। वेद ने संस्कृत पुरुष को आर्य की संज्ञा प्रदान की है। वैदिक दृष्टिकोण से आर्य अनेक ऐसे सद्गुणों से ओत-प्रोत मानव है जिसमें चेतनता है, जागरूकता है, सचेष्टता है और जो स्वकर्तव्यनिष्ठ है एवं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परोपकारपरायण है; उसका वीर्य, ओज और तेज श्लाघ्य है। वह दिव्यता से सम्पन्न और यजनशील है।

संस्कृति, विचार तथा कर्म दोनों क्षेत्रों को सींचती है और पल्लवित करती है। "शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते"–शास्त्र की चिन्ता बौद्धिक क्षेत्र के लिये और शस्त्र–सङ्घर्ष के लिये तथा राष्ट्र की सुरक्षा के लिये आवश्यक तत्त्व है। देश की समृद्धि और विकास के लिये शस्त्र और शास्त्र दोनों की आवश्यकता हमारी संस्कृति में मान्य है। शास्त्र की चिन्ता सत्य और शिव के परिज्ञान के लिये तथा साहित्य का निर्माण उन्हें सौन्दर्य से मण्डित करने के लिये होता है। साहित्य का निर्माण शास्त्र के निर्माण से इस अर्थ में भिन्न है कि शास्त्र केवल शान्ति–युग में स्वस्थ विकास करता है, परन्तु साहित्य भीषण उद्वेगजन्य परिस्थितियों में भी निर्मित होता रहता है। सत्य तो यह है कि जब जीवन अनेक विषमताओं से, झञ्झावात से (तूफानी दौर से) गुजरता रहता है तब महान् साहित्यकार जीवन के विराट् रूप की कल्पना करता हुआ समस्याओं का भावनापरक समाधान प्रस्तुत करता है। संश्लेषण और विश्लेषण की पद्धति द्वारा वह ऐसे निष्कर्षों को प्रस्तुत करता है जो सार्वभौम और सार्वकालिक हो जाते हैं।

साहित्य चिन्तनपक्ष में ऐसे महाकाव्य प्रस्फुटित होते हैं जो व्यक्ति और समाज की मर्यादाओं के लिये शास्त्र–मन्त्रों की तरह कार्य करते हैं। साहित्य के माध्यम से ही भूत वर्तमान में चित्रित होता है और भविष्य के गर्भ का अवलोकन करता है। साहित्य के द्वारा किसी जाति की संस्कृति का शाश्वत सत्य उद्घाटित होता है। काव्य में समय के चित्र के साथ–साथ ऐसे चारित्रिक चित्रों को भी प्रस्तुत किया जाता है जो अभीष्ट हैं। रामायण एवं महाभारत के रचनाकारों ने ऐसे सांस्कृतिक चित्रों की झाँकी प्रस्तुत की है, जो सांस्कृतिक तत्त्वों का उद्घाटन करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास आर्य संस्कृति के अटल पुजारी हैं, इसलिये उनके साहित्य में संस्कृति के सभी अङ्ग अभिव्यक्ति पाते हैं। रामचरितमानस में तुलसीदास ने संस्कृत और असंस्कृत–दोनों प्रकार के चरित्रों को प्रस्तुत किया है। साहित्य का लक्ष्य आनन्द है।

धर्म, अधर्म, मङ्गल, अमङ्गल, क्रोध, करुणा, ध्वंस और निर्माण–सभी मिलकर काव्य के भावपक्ष को स्फुरित करते हैं। राम, परात्पर परम ब्रह्म की आनन्दकला के शक्तिमान् रूप हैं। इनके चरित्र में जहाँ एक ओर मधुरता है, वहीं दूसरी ओर कठोरता भी है। जहाँ एक ओर प्रचण्डता है, वहीं दूसरी ओर करुणा तथा आर्द्रता भी है। इन विरोधी भावों के सामञ्जस्य से ही कर्मक्षेत्र की महत्ता एवं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोक की सौन्दर्य–सृष्टि झलकती है। लोकधर्म एव लोकमर्यादा की रक्षा के लिये ही राम का चरित्र वर्णित है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि व्यवस्था या वृत्ति से ही, जिससे लोक में मङ्गल का विधान होता है, अभ्युदय की सिद्धि होती है, धर्म है। अतः अधर्म वृत्ति को हटाने में धर्म–प्रवृत्ति की तत्परता, चाहे वह उग्र हो या प्रचण्ड, चाहे कोमल हो या मधुर, भगवान् की आनन्दकला के विकास की ओर बढ़ती हुई गति है। शुक्लजी ने इस गति में ही सुन्दरता को स्वीकार किया है। राम द्वारा रावण का वध, धर्म की जय और अधर्म की पराजय है। पाश्चात्त्य साहित्यकारों से भिन्न, हमारे यहाँ के कवि मङ्गल और अमङ्गल के द्वन्द्व में मङ्गलशक्ति की सफलता स्वीकार करते आये हैं। तुलसीदास ने—

''मंगल भवन अमंगलहारी। द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी''

के द्वारा इसी मङ्गल–विधान के लिये राम ऐसे लोकनायक की कल्पना की है।

राम राजा हैं। राज्य के सञ्चालन के लिये शासन की आवश्यकता है। शासन में दण्ड प्रधान है। तुलसीदास ने राम–राज्य की पताका फहराने के लिये लक्ष्मण के चरित्र को दण्ड के समान प्रस्तुत किया है। जिस राज्य में शासक अथवा दण्ड का भय समाप्त हो जाता है, उस राज्य के राजा का भी पतन अवश्यम्भावी है। चाहे वह राज्य लोकतान्त्रिक ही क्यों न हो!

रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

की उक्ति द्वारा रामराज्य के शासक और उसके यश की पताका फहराने वाले लोक–धर्म की मर्यादा एवं रक्षा के लिये, अधर्म के विनाश के लिये, भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण रखने के लिये, तुलसीदास ने लक्ष्मण के चरित्र में दण्ड के समान ही सारी दृढ़ता, ओज और शक्ति का रूप प्रस्तुत किया है।

आज के सामाजिक सन्दर्भ में भी शासनतन्त्र की जो जर्जरता दिखायी पड़ती है, वह इस दण्ड भाव के तिरोहित हो जाने के कारण ही है। शासन और न्याय की रक्षा तभी सम्भव है जब दण्ड–विधान प्रबल हो। राम की करुणा, माधुर्य और शील की शक्ति लक्ष्मण के पराक्रम, धैर्य एवं कर्त्तव्यपरायणता पर ही अधिष्ठित है। राज्यशासन, धर्मशासन, समाजशासन आदि की व्यवस्था के द्वारा ही कर्म–सौन्दर्य का उद्धारक रूप निर्मित होता है। जिसे कवि अपनी वाणी द्वारा आकृति प्रदान करता है। ऐसे कर्मवीरों द्वारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही मनुष्य जाति का उद्धार होता रहा है। ऐसे चरित्र ही घोर से घोर कष्ट और यातनाओं को सहते हुए प्राणों का उत्सर्ग करते हैं। लक्ष्मण के चरित्र में तुलसीदास ने इन सब गुणों का समावेश करते हुए रूप–माधुर्य की सृष्टि की है।

कविवर माइकेल मधुसूदनदत्त अपने मेघनाद–वध नामक महाकाव्य में मेघनाद के रूप–सौन्दर्य की सृष्टि करके भी लक्ष्मण के स्वरूप को धूमिल नहीं कर सके।

आज के सामाजिक सन्दर्भ में विचार करने वाले कवि और आलोचक नई उद्भावनाओं और कल्पनाओं से ओत प्रोत होकर परम्परा से चले आते हुए चिर प्रतिष्ठित आदर्शों की अवहेलना करते हैं; परन्तु सामयिक परिस्थितियों द्वारा नये आख्यानों और नये आयामों की सृष्टि तो हो सकती है, किन्तु नवीनता के दुराग्रह से पूर्णतः प्रतिष्ठित आदर्श पात्रों की अवहेलना नहीं की जानी चाहिये। तुलसीदास ने लक्ष्मण के चरित्र में उसी निर्वैयक्तिक और निर्विशेष बीजभाव की प्रतिष्ठा की है जो हमारी सांस्कृतिक परम्परा के आदर्शों में चरित्र के कर्म–सौन्दर्य के लिये स्थायी भाव बन सकते हैं। सौन्दर्य का विधान कर्म की गतिशीलता में है। रामचरितमानस के सभी पात्रों में लक्ष्मण सबसे अधिक गतिशील पात्र हैं। शक्ति–सामर्थ्य की कसौटी कर्म–कुशलता है। भावों की उज्ज्वल झलक कर्मसम्पादन द्वारा ही प्रकट होती है। व्यावहारिक धरातल पर शील और शक्ति से समन्वित कर्म द्वारा किसी चरित्र के सौन्दर्य की सृष्टि होती है। रामचरितमानस का महाकवि शक्ति को शील से समन्वित कर चरित्रों की धीरोदात्त एवं दिव्य रूप प्रदान करने का कुशल शिल्पी है। किसी भी महाकाव्य के नायक को स्थायित्व प्रदान करने के लिये शील, शक्ति एवं सौन्दर्य को साहित्यकारों ने विशिष्ट गुण माना है। लक्ष्मण के शक्ति–सौन्दर्य का निरूपण अन्य अध्यायों में विस्तृत रूप से किया गया है। अतएव इस अध्याय में गोस्वामीजी की शील–योजना के सन्दर्भ में केवल लक्ष्मण के शील का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

मानव मन मनोरागों का कदाचित् सबसे विशाल संग्रहालय है। साथ ही मानवीय अस्तित्व एवं स्पन्दन के जागरूक प्रहरी ये मनोराग अथवा मनोवेग ही सम्भवतः उसके जीवन की सर्वाधिक कोमल, उज्ज्वल एवं महत्तम विभूतियाँ हैं। हम इन्हें मानव हृदय का स्पष्टतम मानचित्र भी कह सकते हैं। जीवन के साथ ये इतना अधिक घुल–मिल कर एक हो जाने की चेष्टा करते हैं कि शरीर की बाह्यार्थसूचक चेष्टाओं व मुद्राओं को भी वे अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाव से अछूता नहीं रखते। तभी गोस्वामीजी ने विनयपत्रिका में राम के शील–स्वभाव की चर्चा करते हुए कहा है—

मोद न मन, तनपुलक नयन–जल सो नर खेहर खाऊँ[1]।

मानव जीवन की क्रियाशीलता इन्हीं मनोरागों के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं और यदि इन मनोरागों की सम्यक् समीक्षा की जाय तो किसी व्यक्तिविशेष के शील, सदाचारादि गुणों की स्वाभाविक व्याख्या हो जायगी।

शील के दो स्वरूप हैं—व्यक्त एवं अव्यक्त अथवा कायिक एवं मानसिक। भरत का अयोध्या से चित्रकूट तक की अपनी पवित्र ऐतिहासिक यात्रा में राम के विभिन्न विश्रामस्थलों किंवा पड़ावों को देखकर साश्रुनयन हो जाना, निषादराज को साग्रह गले से लगा लेना एवं पथ में अङ्कित राम के चरणचिह्न देखकर पुलकित हो उठना, ये सब क्रियाएँ व्यक्त शील के अन्तर्गत ही परिगणित की जायँगीं। साथ ही उनका यह सोचना कि मेरा धर्म तो सिर के बल चल कर राम के पास पहुँचना था—

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा।

शील की अव्यक्त सत्ता के अन्तर्गत माना जायगा।

मन की चेतन–भूमि में वचन एवं कर्म की व्यञ्जक शैली में अपने अस्तित्व का प्रमाण प्रस्तुत करने वाला यह शील तत्त्व सम अथवा विषम परिस्थितियों से प्रभावित हुए विना नहीं रहता। उसकी इस युग–धर्मावलम्बिता में ही हमें उसके विभिन्न रूपों का भी साक्षात्कार होता रहता है। फलतः एक बार हम जिस प्रगल्भा कैकेयी को नागिन की तरह अवध के राजप्रासाद में फुफकार करते हुए पाते हैं[1], उसी को दोबारा हतभागिनी नारी के रूप में चित्रकूट की सीमा में फटी हुई पृथ्वी के गर्भ में सदेह समा जाने की मौन अभिलाषा से भी मुखर पाते हैं।[1] यह है शील का गतिशील धर्म एवं उसकी सहज परिवर्तनीय सत्ता।

अतः हम शीलनिरूपण के लिये जिन आधारभूत सिद्धान्तों को निष्कर्ष रूप में स्वीकार कर सकते हैं, उन्हें क्रमशः जीवन–वैविध्य, परिवर्तनशीलता, परिस्थितिसापेक्षता, न्यायपूर्ण तटस्थदर्शिता, जीवन के प्रति आस्था एवं सम्वेदनशीलता की संज्ञा दी जा सकती है। वस्तुतः इन्हीं सिद्धान्तों की उर्वर भूमि में सच्चे शील का शिलान्यास किया जा सकता है। इस सिद्धान्तशिला के अभाव में जो चरित्र–संयोजना किंवा शील–संविधान किया जाता है वह प्रस्तर खण्डों में मनमानी टांकी लगाते रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'शील' एवं 'चरित्र' का अन्तर

साधारणतः तो ''शील'' शब्द से हम व्यक्ति की दैनिक लोक–व्यवहार–पद्धति अथवा आचरण का ही आशय ग्रहण करते हैं; किन्तु दूसरी ओर हम चरित्र को अपेक्षाकृत अधिक व्यापक रूप में देखना चाहते हैं। इसके अन्तर्गत हम किसी भी व्यक्ति को उसके विस्तृत शील–सन्दर्भ से, उसकी जीवनव्यापी नैतिकता अथवा अनैतिकता के प्रतिमान से देखने के लिये बाध्य हैं; किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि चरित्र की इस व्यापक संसृष्टि का आधार बीज रूप में अन्तर्निहित उसका शील तत्त्व न होकर कोई दूसरा उपादान है। वस्तुतः वह आधार शील ही है। दूसरे रूप में यह कहा जा सकता है कि शील यदि सूक्ष्म है तो चरित्र स्थूल, शील यदि अन्तरङ्ग है तो चरित्र बहिरङ्ग। संक्षेप में शील की विराट् स्वर्णमञ्जूषा में ही चरित्र का अमूल्य आभूषण बन्द रहा करता है।

बीज रूप में शील स्वयं भी एक मनोभाव ही है। किन्तु इसी मनोभाव को चरित्र अथवा शील रूप में प्रतिष्ठापित करने के लिये नाटककार अथवा प्रबन्धकार को किसी पात्र की जीवनधारा में उसे कई बार उद्बुद्ध करना पड़ता है, तब कहीं सम्पूर्ण शील की पात्रगत संयोजना हो पाती है। अतएव शीलसंयोजना के लिये जिन दो बातों पर विशेष दृष्टि रखनी पड़ती है उनमें एक तो है मनोभावों का सूक्ष्म अध्ययन, दूसरी उनकी पात्रगत संयोजना। यह पात्रगत संयोजना ही वस्तुतः शील–संविधान का कर्मपक्ष है। किसी मनोविकार की स्थानीय अभिव्यक्ति तो शील की एक मुद्रा अथवा एक क्षणवर्ती झलक भर देकर समाप्त हो जाती है; किन्तु शील रूप में उसकी प्रतिष्ठा के हेतु प्रबन्धकार को कई बार अनेक स्थलों पर अपने पात्रों में ऐसी ही मुद्राओं की उद्भावना करानी होती है। शील का सम्यक् उद्घाटन तभी किसी पात्र में हो पाता है। किसी भी पात्र में घटना एवं परिस्थितिसापेक्ष वैचित्र्य होने के साथ ही शील की एक जीवनव्यापी एकरूपता या अन्विति भी होनी चाहिये। एक बार जिस किसी पात्र में हम शील एवं शक्ति के समन्वित स्फुरण का आरोप कर चुके होते हैं, अन्य परिस्थितियों में उसका चरित्राङ्कन कुछ दुर्बल भी हो सकता है, किन्तु यह उसका जीवनव्यापी चरित्राङ्कन न होगा। उसका जीवनव्यापी चरित्राङ्कन तो आदर्श की उज्ज्वल तूलिका से किया जायगा। यही शील की ''गत्यात्मक एकरूपता'' कही जा सकती है।

रामचरितमानस के शील–संयोजक तुलसीदास ने भरत, लक्ष्मण, हनुमान्, कौसल्या आदि पात्रों में इसी प्रकार से शील की रेखाएँ अङ्कित की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। लक्ष्मण के शीलविन्यास में यह गत्यात्मक एकरूपता अत्यधिक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। स्थल-स्थल पर हमें तो उनके शील में उग्रता एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व-निदर्शन की प्रवृत्ति दिखायी देती है, वह इसी गत्यात्मक एकरूपता का प्रमाण है। परशुराम से उनका वाद-विवाद[1], अवध लौटते हुए सुमन्त से उनकी कठोर शब्दावली[1], जनक से उनकी सदर्प वार्ता[1], सीता के मर्मवचन पर उनका मौन रहना[1], समुद्र-सन्तरण के अवसर पर राम की अहिंसात्मक एवं विनम्र नीति पर उनकी अन्यमनस्कता[1] एवं लङ्काकाण्ड में सीता की अग्निपरीक्षा के अवसर पर उनकी मौन विवशता[1] तथा सीता-निर्वासन के पश्चात् ग्लानि[1] आदि लक्ष्मण के ओजस्वी व्यक्तित्व की उसी एकरूपता की स्फुट चिनगारियाँ हैं जो एक साथ मिल जाने पर उनके समस्त चरित्र को प्रकाशित करने में समर्थ होती हैं।

लक्ष्मण-चरित्र के विकास में तुलसीदास द्वारा अधीत ग्रन्थों का प्रभाव

तुलसीदास एक क्रान्तिकारी दृष्टि रखने वाले विलक्षण प्रतिभा के महान् कवि थे, अतः उनका अध्ययन भी विशाल था। उन्होंने समस्त भारतीय वाङ्मय का अवगाहन करके आगम-निगम के सार को आत्मसात् कर लिया था और भक्ति, ज्ञान, धर्म, दर्शन, सत्य, अहिंसा, आदर्श चरित्र, मानवतावादी दृष्टिकोण, नीति-सूक्तियों से परिपूर्ण ऐसे रामचरितमानस महाकाव्य की रचना की जो सत्य, शिव, सुन्दर तथा शक्ति, शील सौन्दर्य का अनुपम सामञ्जस्य प्रस्तुत करने में पूर्णरूपेण सक्षम हैं। तुलसीदास की रचना का आधार कवि की कल्पना नहीं, अपितु इतिहासोद्भूत है।

"नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि" की प्रारम्भिक घोषणा द्वारा उन्होंने स्वयं भी इसी वस्तुस्थिति के प्रति हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। यही नहीं, रामचरितमानस के अन्तर् एवं बाह्य का अवलोकन करने के बाद सामान्यतः किसी को यह स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होगी कि कवि ने अपनी कथा-सङ्घटना के लिये रामकथा का आधार लेकर प्रचलित प्रायः सभी पूर्ववर्ती काव्यों तथा नाट्यग्रन्थों का अन्वीक्षण अवश्य ही किया होगा। राम-कथा के तन्तु को लेकर रचित ग्रन्थों की इस लम्बी तालिका में प्रायः वे समस्त ग्रन्थ आ जाते हैं, जिनमें राम के चरित्र का कुछ न कुछ वर्णन प्राप्त होता है। "रामायण सतकोटि अपारा" साथ ही "जे प्राकृत कवि परम सयाने" एवं "कलि के कबिन्ह करौं परनामा" की भी अभिव्यक्ति करने वाले "मानस" प्रणेता के मानस-क्षितिज पर संस्कृत,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राकृत, अपभ्रंश एवं अन्य भाषाओं में लिखे रामकथा–सम्बन्धी प्रायः समस्त ग्रन्थों की सामान्य रूपरेखा अवश्य रही होगी, इसमें सन्देह नहीं। रामचरितमानस की कथा–भूमि को विस्तार देने तथा उसके विभिन्न प्रसङ्गों को काव्यात्मक गरिमा से पुष्ट करने वाले ग्रन्थों में मुख्य रूप से वाल्मीकि रामायण, दामोदरमिश्रकृत हनुमन्नाटक, जयदेव कृत प्रसन्नराघव तथा भक्तिपरक ग्रन्थ अध्यात्मरामायण का नाम लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त गौण रूप से भवभूतिकृत उत्तररामचरित, कालिदासकृत रघुवंश एवं शिवपुराण तथा श्रीमद्भागवत के नाम उल्लेख्य हैं। योगवाशिष्ठ, कठोपनिषद्, भगवद्गीता, आनन्दरामायण तथा मेघदूत का प्रभाव भी आंशिक रूप से स्वीकार किया जा सकता है।

लक्ष्मणचरित्र का विकास— तुलसी–साहित्य में लक्ष्मण के चरित्र का विकास भी कवि का स्वतन्त्र उपहार (देन) नहीं है। पूर्ववर्ती अनेक अधीत ग्रन्थों के कुछ आधारभूत प्रसङ्गों को लेकर तुलसीदास ने अपनी कला द्वारा लक्ष्मण–चरित्र को इस ढंग से समायोजित कर दिया है कि लक्ष्मण के चरित्र की संरचना तुलसीदास की अपनी देन है— ऐसा आभास होता है। परन्तु लक्ष्मण–चरित्र का सम्यक् विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि लक्ष्मणचरित्र की सम्पूर्ण चारित्रिक विशेषताएँ उनके पूर्ववर्ती ग्रन्थों में यत्र–तत्र बिखरी पड़ी थीं, जिन्हें उन्होंने एक सूत्र में पिरोकर ऐसी एकरूपता प्रस्तुत कर दी है कि लक्ष्मण का एक निखरा नवीन व्यक्तित्व हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। कुछ प्रसङ्ग यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिन्हें लक्ष्मण के सन्दर्भ में तुलसीदास ने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों से ग्रहण किया है।

लक्ष्मण की बाल्यावस्था— तुलसीदास ने लक्ष्मण के बाल्यावस्था से ही रामचरण अनुरागी होने के प्रसङ्ग को वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म रामायण से ग्रहण किया है। बाल्यावस्था से ही लक्ष्मण के हृदय में राम के प्रति सेवा और भक्ति के भाव उत्पन्न हो गये थे और उत्तरोत्तर उनके चरित्र में इन भावों की वृद्धि होती चली गयी।[1] तुलसीदास ने उक्त भाव को ज्यों का त्यों रामचरितमानस में ग्रहण कर लिया और लक्ष्मण के लिये "बारेहि ते निज हितपति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी" कहकर राम के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में लक्ष्मण के व्यक्तित्व को समाहित करके लक्ष्मण को एक परम

---

1. *क– वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग १९, श्लोक २८–३६।*
ख– अध्यात्म रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ३, श्लोक ६०–६३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भक्त और सच्चे सेवक के रूप में चित्रित कर दिया है। तीनों ग्रन्थों की बाल–क्रीड़ा में बहुत समानता है और इस समानता का कारण तुलसीदास का गम्भीर अध्ययन है।

जनकपुर में प्रवेश– विश्वामित्र के साथ दोनों भाइयों के जनकपुर में प्रवेश करते ही उनके अप्रतिम सौन्दर्य पर मुग्ध होकर ज्ञानी विदेह का भक्त रूप में परिणत होने का प्रसङ्ग तुलसीदास ने अध्यात्मरामायण से ग्रहण किया है। वाल्मीकि रामायण में यह प्रसङ्ग प्रकारान्तर से आया है[५]; क्योंकि वाल्मीकि रामायण में राम तथा लक्ष्मण के ईश्वरत्व का कम और महापुरुषत्व का अधिक चित्रण किया गया है, किन्तु अध्यात्म रामायण पौराणिक परम्परा में परिगणित एक भक्तिपरक काव्य है। इस ग्रन्थ में जनक के मानस पटल पर चामत्कारिक परिवर्तन दरसाया गया है।[२३] तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में "भयहु विदेह विदेह बिसेखी" कहकर उसी भाव को ग्रहण किया है। रघुवंश (११/३५) और महावीरचरित *(प्रथम अङ्क, २२)* के उपमानों को लेकर तुलसीदास ने सन्देहालङ्कार के माध्यम से उपमानों की एक लम्बी परम्परा जोड़ दी है।[१]

पुष्पवाटिका– यह प्रसङ्ग तुलसीदास को प्रसन्नराघव से प्राप्त हुआ है। वाल्मीकि रामायण तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में पुष्पवाटिका का वर्णन कहीं भी नहीं प्राप्त होता। प्रसन्नराघव के द्वितीय अङ्क में इस प्रसङ्ग का बहुत ही शृंगारिक ढंग से वर्णन किया गया है। उस स्थल पर राम को अत्यधिक रसिक और लक्ष्मण को चपल दरसाया गया है। राम ने मर्यादा की सीमा का अतिक्रमण कर, सीता के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन लक्ष्मण से किया है और अपने मन में सीता के प्रति अङ्कुरित प्रेम का आभास भी लक्ष्मण को करा दिया है। इस प्रेमप्रसङ्ग को पूर्ण करने के लिये लक्ष्मण ने राम का सहयोग भी किया है। रामचरितमानस में तुलसीदास ने इस प्रसङ्ग को अत्यन्त मर्यादित कर दिया है। किन्तु "मानस" में लक्ष्मण का मातृत्व–प्रेम सीता के प्रति प्रदर्शित कराना तुलसी का मुख्य उद्देश्य था, अतः सम्पूर्ण प्रसङ्ग में लक्ष्मण मौन रहते हैं। उनके सौम्य व्यक्तित्व का ही चित्रण तुलसीदास ने किंया है। राम अपने मन का परिवर्तन लक्ष्मण से बार–बार आग्रह करके कहते हैं[१], किन्तु लक्ष्मण एक बार भी प्रत्युत्तर नहीं देते। इस प्रसङ्ग में तुलसीदास की मर्यादा ने लक्ष्मण को आदि से अन्त तक मौन रखा है।

धनुषयज्ञ का प्रसङ्ग– इस प्रसङ्ग में दो स्थलों पर लक्ष्मण के स्वरूप को तुलसीदास जी ने हनुमन्नाटक से ग्रहण किया है। सभी आगत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नृपों की असफलता पर जनक का खेद "बीर बिहीन मही मैं जानी" के रूप में प्रस्फुटित हुआ जिसे लक्ष्मण सहन नहीं कर सके और क्रोधावेश में ललकार उठे कि धनुष क्या, इस ब्रह्माण्ड को भी मैं कन्दुक की भाँति उछाल सकता हूँ। हनुमन्नाटक के अतिरिक्त संस्कृत के किसी अन्य काव्य में ऐसा प्रसङ्ग नहीं मिलता।[१०] इस भाव को तुलसीदास ने यहीं से लेकर उसमें पौराणिक सौन्दर्य का समावेश कर, लक्ष्मण के शेषत्व का प्रदर्शन किया है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण बाद के प्रसङ्ग से अधिक सरल हो जाता है जब राम द्वारा धनुष उठाते समय जगत् के कर्णधारों को लक्ष्मण सचेत करते हैं। इस भाव पर भी हनुमन्नाटक का ही प्रभाव है। इस नाटक से यह भाव ज्यों का त्यों उद्धृत है।[१०]

परशुराम–संवाद– वाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण आदि प्राचीनतम ग्रन्थों में विवाह के बाद मार्ग में परशुराम की राम से भेंट होती है। उस स्थल पर लक्ष्मण और परशुराम से प्रत्यक्ष कोई वार्ता नहीं होती; क्योंकि वहाँ दशरथ तथा राम एवं भरत उपस्थित हैं। शिष्टाचार का ध्यान रखते हुए लक्ष्मण का बोलना उचित भी नहीं था, किन्तु प्रसन्नराघव (चतुर्थ अङ्क) में धनुषभङ्ग होने के पश्चात् ही परशुराम रङ्गशाला में उपस्थित होते हैं, जहाँ लक्ष्मण का उनसे विस्तार के साथ वाग्युद्ध होता है। तुलसीदास ने प्रसन्नराघव के चतुर्थ अङ्क से ही परशुराम का प्रसङ्ग यह ग्रहण किया है और इस प्रसङ्ग का, १८ दोहों के अन्तर्गत, मानस में विस्तृत रूप से वर्णन किया है जिसमें लक्ष्मण का चापल्य स्पष्ट रूप से प्रदर्शित हुआ है। इस प्रसङ्ग में लक्ष्मण परशुराम का कटूक्तियों और व्यङ्ग्य वाक्यों से उपहास करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।[१] तुलसीदास ने इस स्थल पर लक्ष्मण को साहसी, निर्भीक, वाक्पटु और भ्रातृवत्सल रूप में चित्रित किया है।

रामवनगमन पर लक्ष्मण का रौद्र रूप– वाल्मीकिरामायण, अध्यात्म–रामायण तथा प्रतिमानाटक में रामवनगमन–प्रसङ्ग पर लक्ष्मण का रौद्र रूप दिखलायी पड़ता है, किन्तु रामचरितमानस के लक्ष्मण में इस अवसर पर हृदय की विकलता और भक्ति की शालीनता तथा दैन्यभाव ही अधिक उभर कर आया है। इस भाव पर अध्यात्म रामायण के संस्कारों का प्रभाव है। अध्यात्मरामायण में लक्ष्मण राम से साथ चलने और सेवा करने की दीनतापूर्ण याचना करते हैं।[१३] रामचरितमानस के लक्ष्मण की मानसिक दशा का विलक्षण वर्णन तुलसीदास ने किया है, जिसे उन्होंने अध्यात्मरामायण से ग्रहण किया और अपनी कला द्वारा विकसित कर मानव मन को अधिक द्रवीभूत कर दिया।[१]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शृङ्गवेरपुर में राम एवं सीता— वाल्मीकिरामायण में शृङ्गवेरपुर में राम और सीता को कुश–शय्या पर विश्राम करते हुए देखकर निषादराज गुह दुःखी होता है। उस स्थल पर लक्ष्मण आर्त स्वर में राम की अवस्था पर विलाप करते हैं[1], किन्तु "मानस" में निषादराज कैकेयी को इस दुःख का कारण बताता है। इस पर लक्ष्मण निषाद को लक्ष्मण ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का उपदेश देते हैं। इस उपदेश में ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का समन्वय कराया गया है और अन्त में भक्ति की महत्ता को सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है।[1] तुलसीदास का यह भाव उनकी अपनी कल्पना (उपज) नहीं है, अपितु इस भाव को उन्होंने अध्यात्मरामायण से लेकर अनुवाद कर दिया है।[23] जैसा कि पूर्व में कहा गया है, अध्यात्मरामायण एक दार्शनिक भक्तिपरक काव्य है, उसमें पदे पदे आध्यात्मिक चर्चा मिलती है। लक्ष्मण द्वारा निषाद को दिये गये उपदेश में भी दार्शनिकता अधिक है। तुलसीदास ने भी उक्त भाव का सम्यक् समन्वय अपने ग्रन्थ रामचरितमानस में किया है।

सुमन्त्र का अयोध्या लौटना— सुमन्त्र को अयोध्या लौटते समय लक्ष्मण ने दशरथ को कठोर वाक्यों से सम्बोधित किया। रामचरितमानस के इस प्रसङ्ग पर केवल वाल्मीकिरामायण का प्रभाव है। तुलसीदास ने लक्ष्मण के वाक्यों को मर्यादा से अनुशासित कर दिया है।[1] वाल्मीकि रामायण में उन कठोर वाक्यों को स्पष्ट रूप से कहा गया है।[1] शेष अन्य ग्रन्थों में यह प्रसङ्ग उपलब्ध नहीं है। चित्रकूट में लक्ष्मण द्वारा राम की सेवा का प्रकट रूप "मानस" में वर्णित है।[1], इस प्रसङ्ग–वर्णन पर भी वाल्मीकि का पूर्णतः प्रभाव है।[1]

चित्रकूट–आगमन— जिस प्रकार भरत के चित्रकूट आगमन पर वाल्मीकिरामायण में अपने प्रिय आराध्य राम के अनिष्ट की कल्पनावश, लक्ष्मण ससैन्य भरतवध तक के लिये सन्नद्ध हो उठे और अपने को, इस कुकृत्य करने के पश्चात्, उऋण होने तक की कल्पना करने लगे,[1] उसी भाँति रामचरितमानस में भी सतत प्रभु–मुखानुभावों के निरीक्षक लक्ष्मण प्रभु के मुख पर द्वन्द्व के भाव परिलक्षित कर अत्यन्त व्याकुल हो उठे। राम के हृदय में आलोड़न या सङ्घर्ष सेवाव्रती लक्ष्मण को कैसे सह्य होता! उनका अनन्य प्रेमी हृदय भरत को आक्रमणकारी मान लेता है; क्योंकि ससैन्य भरतागमन इस शङ्का की पुष्टि कर रहा था। अतः राम का अनिष्ट चाहनेवाले भरत को अनुज सहित मारने की लक्ष्मण ने प्रतिज्ञा कर डाली। इस प्रसङ्ग के भाव को तुलसीदास ने मूलतः वाल्मीकिरामायण से ग्रहण किया है।

इसी भाँति शूर्पणखा और लक्ष्मण की वार्ता का भाव भी तुलसी ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाल्मीकिरामायण से ग्रहण किया है। रामचरित–मानस में शूर्पणखा के प्रणय–निवेदन पर अपने को राम का दास कहते हुए लक्ष्मण उससे नीति की बात कहते हैं, और राम को ही वरण करने का आदेश देते हैं।

वाल्मीकि रामायण के भाव को लेकर तुलसीदास ने नीतिसम्बन्धी सूक्तियों को जोड़कर उसे अपनी शैली में प्रभावशाली बना दिया है।[1] वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण ने ताड़का, शूर्पणखा और अयोमुखी तीन राक्षसियों के नाक–कान काटे हैं।[1] किन्तु रामचरितमानस में केवल शूर्पणखा के नाक–कान काटने की बात कही गयी है, शेष को तुलसीदास ने महत्त्वहीन समझकर उद्धृत ही नहीं किया। शूर्पणखा का यह प्रसङ्ग अध्यात्मरामायण[23], आनन्द–रामायण[26], रघुवंश (३५/४०), आश्चर्यचूड़ामणि (२/१३) में कुछ परिवर्तनों के साथ अवश्य आया है, किन्तु तुलसीदास के रामचरितमानस में इस प्रसङ्ग पर वाल्मीकि का ही प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है। आश्चर्यचूड़ामणि में तो शूर्पणखा लक्ष्मण को अपनी भुजाओं में भरकर आकाश में तिरोहित हो जाती है।

पञ्चवटी में सीता की कटूक्ति— पञ्चवटी में लक्ष्मण के प्रति सीता की कटूक्ति वाल्मीकि में अपनी चरम सीमा पर है। सीता और लक्ष्मण एक दूसरे पर दोषारोपण करते हुए पाये जाते हैं। अन्ततोगत्वा मर्माहत लक्ष्मण को राम की आज्ञा की अवहेलना करनी पड़ती है।[1] अध्यात्मरामायण[23], महाभारत[41], आनन्दरामायण[26] और हनुमन्नाटक[40] आदि ग्रन्थों में यह भाव ज्यों का त्यों है, किन्तु तुलसीदास ने उस भाव को वाल्मीकि से ग्रहण करके "मरम बचन जब सीता बोला" कहकर मर्यादित कर दिया है। लक्ष्मणरेखा का प्रसङ्ग वाल्मीकिरामायण तथा अन्य प्रारम्भिक ग्रन्थों में भी नहीं मिलता। तुलसीदास के "मानस" में—

बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावण ससि राहू।।

इतना प्राप्त होता है, किन्तु लङ्काकाण्ड में—

रामानुज लघु रेख खचाई। सो नहिं नांघेउ असि मनुसाई।।

कहने से ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदास को लक्ष्मण–रेखा की बात स्वीकार है। उनको यह प्रसङ्ग हनुमन्नाटक और आनन्दरामायण से मिला है।

सुग्रीव पर लक्ष्मण का क्रोध— इस प्रसङ्ग को तुलसीदास ने वाल्मीकि रामायण एवं अध्यात्मरामायण से ग्रहण किया है। वाल्मीकिरामायण तथा अध्यात्म–रामायण में राम को दुःखी देखकर लक्ष्मण क्रुद्ध होकर सुग्रीववध के लिये तत्पर होते हैं, किन्तु रामचरितमानस में राम के क्रुद्ध होने पर—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतौं मूढ़ कह काली।।

लक्ष्मण क्रुद्ध होकर सुग्रीव को मारने के लिये उद्यत हो उठते हैं। अध्यात्मरामायण में यही वाक्य लक्ष्मण सुग्रीव से कहते हैं–

त्वमेव वालिनो मार्गं गमिष्यसि मया हतः।[२३]

सुग्रीव के क्षमा माँगने का प्रसङ्ग प्रायः समानरूप में सभी ग्रन्थों मे आया है। महाभारत[४१], और आनन्दरामायण[२६] में अत्यन्त संक्षेप में यह प्रसङ्ग मिलता है।

मेघनादवध– यह प्रसङ्ग लक्ष्मण–चरित्र का मुख्य प्रसङ्ग है, अतः मेघनाद से घोर युद्ध तथा उसकी शक्ति से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना और सञ्जीवनी–पान से पुनः चेतना का लौट आना और फिर रणभूमि में मेघनाद का वध प्रायः अनेक ग्रन्थों में आया है। तुलसीदास पर वाल्मीकिरामायण का मुख्य प्रभाव है, किन्तु साथ ही अध्यात्म, महाभारत, आनन्दरामायण का भी प्रभाव है।

युद्धपूर्व मेघनाद–वध करने की प्रतिज्ञा वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस और आनन्दरामायण तीनों ग्रन्थों में समान रूप से वर्णित है। मेघनाद द्वारा विजय–यज्ञ करते समय वानरों सहित लक्ष्मण द्वारा यज्ञ–विध्वंस की कथा वाल्मीकिरामायण, महाभारत और रामचरितमानस में समान रूप से है। लक्ष्मण का, वाण छोड़ने से पूर्व, राम के तेज और प्रताप का वर्णन करने का प्रसङ्ग वाल्मीकि, अध्यात्मरामायण और रामचरितमानस तीनों ग्रन्थों में मिलता है। मेघनाद के वध की प्रक्रिया में तुलसीदास ने रामचरितमानस में अपनी नवीनता जोड़ दी है। मरते समय मेघनाद ''रामानुज कहं राम कहं'' ऐसा कहते हुए प्राण त्यागता है। अतः लक्ष्मण और मेघनाद की मूलकथा वाल्मीकि रामायण की ही कथा है, जिसे तुलसीदास ने ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है। अन्तर इतना ही है कि जहाँ वाल्मीकि का मेघनाद अतुलित वीर योद्धा है, वहाँ तुलसीदास का मेघनाद मायावी और कपटी है। रामचरितमानस में उसकी वीरता का खुलकर वर्णन नहीं किया गया।

सीता की अग्निपरीक्षा– लङ्का–विजय के पश्चात् सीता की अग्नि–परीक्षा का प्रसङ्ग तुलसीदास को वाल्मीकिरामायण से प्राप्त हुआ है। सीता के आदेश से लक्ष्मण का चिता तैयार करना और उसमें अग्नि लगाने का कार्य लक्ष्मण ने किया है।[१] वाल्मीकिरामायण में यह प्रसङ्ग ज्यों का त्यों आया है जिसमें सीता की करुण व्यथा और मानसिक पीड़ा का भी वर्णन है।[१] अध्यात्मरामायण[२३] और आनन्दरामायण[२६] में भी उक्त प्रसङ्ग प्रकारान्तर से आया है, किन्तु रामचरितमानस पर वाल्मीकिरामायण का ही प्रभाव है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सीता का परित्याग— लक्ष्मणचरित्र का अन्तिम प्रसङ्ग सीता का परित्याग है। यह प्रसङ्ग अत्यन्त करुण है, जिसे पढ़कर और सुनकर पाठक, श्रोता एवं चिन्तक को हार्दिक क्लेश होता है। वाल्मीकिरामायण में राम की आज्ञा से आरोपित कलङ्किनी सीता को जङ्गल तक पहुँचाने का कार्य लक्ष्मण को करना पड़ता है। राम की आज्ञा के कारण यह अत्यन्त क्रूर कर्म भी अनिच्छापूर्वक लक्ष्मण ने किया है।[1]

"मानस" में तुलसी ने इस प्रसङ्ग को नहीं ग्रहण किया है, किन्तु अन्तर्निहित भावों का वे पूर्णरूपेण संवरण नहीं कर सके। गीतावली में तुलसी ने इस प्रसङ्ग को ग्रहण किया है और अत्यन्त मार्मिक ढंग से उसे प्रस्तुत किया है। (गी० उत्तर० २५–३१)।

आधुनिक भारतीय समाज में लक्ष्मण–चरित्र की उपयोगिता

तुलसीदास की रामकथा में उनकी रामभक्ति तो निहित ही है, किन्तु एक युगद्रष्टा होने के कारण भावी समाज की एक आदर्श कल्पना से भी वह परिपूर्ण है। तुलसीदास के समय तक भारत का समस्त परिवेश अस्त व्यस्त हो चुका था। परम्पराएँ टूट रही थीं, मान्यताएँ ध्वस्त हो रहीं थी, सामाजिक आचार और मूल्यों का विघटन बहुत तेजी से हो रहा था। सम्पूर्ण उत्तर भारत में शिक्षा का प्रायः तिरोभाव हो चुका था। ऋषिकुल, गुरुकुल नालन्दा और तक्षशिला जैसी शिक्षा संस्थाएँ बहुत पहले ही समाप्त हो चुकीं थीं। गुरुगृहों एवं सामान्य शिक्षणसंस्थाओं में इस्लामी कुप्रभाव के कारण शिक्षा का सामान्य स्तर समाप्तप्राय हो चुका था। उत्तरी भारत में नैतिक शिक्षा तो दूर रही, लोगों को सामान्य अक्षरज्ञान की सुविधाएँ भी सुलभ नहीं थीं। सर्वत्र निराशा का निविड़ अन्धकार छाया हुआ था और भारतीय जनता उस तमोमयी रात्रि में इधर–उधर भटक रही थी। धर्म के प्रति सब की आस्थाएँ समाप्त हो रही थीं, वर्णाश्रम–व्यवस्था भङ्ग हो रही थी। भाषा, संस्कृति और धर्म के झगड़ों में पारिवारिक विघटन भी बहुत तीव्रता से हो रहा था। ब्राह्मण अपने धर्म का परित्याग कर रहे थे। क्षत्रियों की वृत्ति बदलती जा रही थी। गोस्वामी तुलसीदास के मन में भारत की संस्कृति एवं मर्यादा की विशृङ्खलित कड़ियों को जोड़ने की उत्कट कामना थी जिसकी पूर्ति हेतु इन्होंने रामचरितमानस जैसे अनमोल ग्रन्थ के सर्जन का बीड़ा उठाया और मूलकथा को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये इस भाँति संजोकर भारतीय जनता के समक्ष प्रस्तुत किया कि यह राजनीति, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र और समाजशास्त्र के उच्चादर्शों से परिपूर्ण एक धार्मिक ग्रन्थ बनकर सम्पूर्ण भारत के जन–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानस का हृदयहार बन गया। रामचरित–मानस के प्रत्येक पात्र का चरित्र–सङ्गठन विशेष आदर्शों को रखकर निर्मित किया गया है जिससे वर्णाश्रम व्यवस्था, धर्म, नैतिकता, आस्था और आचारादि की सम्यक् शिक्षा पाठकों को प्राप्त हो सके और वे अपनी भाषा, संस्कृति, धर्म, समाज आदि की सुरक्षा में समर्थ हो सकें।

अतः लक्ष्मण के चरित्र की संयोजना भी विशेष उद्देश्यों को रखकर ही प्रस्तुत की गयी है। राम, तुलसीदास के मर्यादापुरुषोत्तम एवं आराध्य हैं और लक्ष्मण जीवनपर्यन्त राम के सहगामी। लक्ष्मण के चरित्र की कुछ ऐसी प्रमुख विशेषताएँ हैं जिनके कारण सच्चे अर्थ में वर्णाश्रमधर्म की रक्षा हो पायी है और आज के वर्तमान टूटते हुए भारतीय संयुक्त परिवार में लक्ष्मण के चरित्र की बहुत अधिक उपयोगिता है।

आज के विज्ञान और प्रोद्योगीकरण के कारण भारतीय संयुक्त परिवारों का विघटन होना समाजशास्त्र का नियम है, इसे कोई रोक नहीं सकता। किन्तु भारतीय संस्कृति का आदर्श तो इन्हीं संयुक्त परिवारों में छिपा हुआ है। सुखी और सम्पन्न जीवनयापन के लिये संयुक्त परिवार सञ्जीवनी हैं। वर्तमान युग में अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, जापान धनाढ्य देश माने जाते हैं। नियमतः वहाँ के लोगों का साधारण जीवन सबसे अधिक सुखी होना चाहिये, किन्तु वह उतना सुखी नहीं है। इसका कारण है कि उनके यहाँ संयुक्त परिवारों की मर्यादित व्यवस्था नहीं है। किसी भी व्यक्ति पर मर्यादा का अङ्कुश नहीं है। संयुक्त परिवार की समृद्धि के लिये ही ऋषियों ने यहाँ वर्ण, आश्रम, संस्कार, ऋणत्रय, पुरुषार्थचतुष्टय आदि नियमों के अन्तर्गत उन्हें सीमित कर दिया था। समय की गतिशीलता एवं परिवर्तित परिवेश में इन मान्यताओं तथा परम्पराओं को बदला हुआ देखकर उन्हें पुनः स्थापित करने की योजना तुलसीदास के मन में थी और इस क्षेत्र में उन्हें महत्त्वपूर्ण सफलता भी मिली।

यद्यपि तुलसीदास ने राम में देवत्व की स्थापना करके उन्हें साधारण मानव के धरातल से ऊँचा उठा दिया है, तथापि उनके पात्रों का मानवीय धरातल पर मूल्याङ्कन करना अधिक श्रेयस्कर होगा; क्योंकि मानव का चरित्र मानव के व्यवहार में व्यक्त होता है और मानव व्यवहार जटिल है, जिसकी जटिलता के विषय में डॉ० देवराज लिखते हैं–

"मानव व्यवहार की जटिलता वस्तुतः मनुष्यों के विभिन्न स्वभावों, मनोभावों विश्वासों तथा आदर्शों की जटिलता है। जटिलता का सबसे बड़ा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अधिष्ठान मनुष्य की विविध–रूप चेतना है। फलतः हम मानव व्यवहार की जटिलता को भीतर से ही समझ सकते हैं। केवल बाहर से देखकर नहीं। मानव–जीवन तथा व्यवहार की जटिलता उन आत्मिक अर्थों की जटिलता है जो उसकी विभिन्न क्रियाओं में निहित रहती हैं। (संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृष्ठ–८३)।

मानव का वस्तुओं के साथ जो व्यवहार होता है उससे सभ्यता की प्रगति का ज्ञान होता है और इसी तरह अन्य मानव बन्धुओं के साथ उसका जो व्यवहार होता है उससे उसका चरित्र झलकता है और चरित्र के व्यक्त होने में संस्कृति व्यक्त होती है। अतः चारित्रिक मूल्याङ्कन ही तद्युगीन सांस्कृतिक मूल्याङ्कन है।

परिवार मानव–जीवन की सर्वोत्तम पाठशाला है, जिसमे रहकर मानव सामाजिक व्यवहारों का सर्वोत्तम अध्ययन करता है। परिवार के माध्यम से ही मनुष्य शक्ति का ग्रहण करके अपना विकास करता है। उच्च स्तर पर मानव का सम्बन्ध समाज के विविध वर्गों से होते हुए राज्य तक पहुँचता है।

राम–कथा में भी जो अनेक परिवारों का चित्रण है, इनमें से दो परिवार तो ऐसे हैं जिनमें भाइयों में विरोध दरसाया गया है। परिणामस्वरूप उन परिवारों में द्वन्द्व, सङ्घर्ष और विनाश खुलकर प्रकट हुआ है। तीसरा और प्रमुख परिवार दशरथ का है जो एक आदर्श और मर्यादित परिवार के रूप में चित्रित हुआ है।

पारिवारिक संस्कारों के कारण भाइयों में इतना अधिक प्रेम है कि राजसत्ता का भी लोभ किसी को नहीं है। राम चौदह वर्ष पूर्व उसे तृण के समान ठुकरा देते हैं तो भरत चौदह वर्ष बाद उसका त्याग करते हुए सुख का अनुभव करते हैं। इन दोनों भाइयों के मध्य लक्ष्मण का त्याग अप्रतिम है। उन्हें अपनी युवा पत्नी, माता, पिता, राज–वैभव–विलास आदि सभी सुख अपने अग्रज के चरणों की सेवा सुख से तुच्छ प्रतीत होते हैं। अरण्यवासी भ्राता के सुख को ही अपना सुख समझने वाले भाई भारत–भूमि में ही सम्भव हैं। उस आदर्श परिवार की बहुओं का आदर्श प्रत्येक भारतीय परिवार के लिये आदर्श प्रस्तुत करता है। *एक* राज–वधू पति के साथ अरण्यवासिनी होकर सन्तुष्ट है और *दूसरी* चौदह वर्ष तक राजभवन में पति–विरहिणी। *तृतीय* चौदह वर्ष तक राजभवन में पति के साथ होते हुए भी विरहिणी बन अपने को जलाकर भारतवर्ष की महिलाओं के महत्त्व को अपनी विभूति से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चमका देती है, जो विश्व संस्कृति के लिये अद्भुत आदर्श बन गया। प्रशंसनीय बात यह है कि तीनों में किसी को न तो मानसिक क्लेश है और न किसी के मन में दूसरे के प्रति क्षोभ।

वर्तमान युग में लक्ष्मण–चरित्र का आदर्श बहुत ही उपयोगी है। आज के समाज के लिये लक्ष्मण के त्याग, बलिदान और वीरता तथा सेवाभाव की ही आवश्यकता है। आज के टूटते हुए परिवार में बढ़ती हुई कुण्ठा, सन्त्रास और घुटन से लोगों को मुक्ति पाने के लिये लक्ष्मण के आदर्शों का अनुगमन करना आवश्यक सा प्रतीत होता है।

वस्तुतः आधुनिक परिवेश में भटकते हुए युवकों को सच्चे मार्ग पर अग्रसर होने के लिये लक्ष्मण की भ्रातृवत्सलता, निर्लिप्तता, कर्त्तव्यपरायणता और सेवाभाव की बहुत ही आवश्यकता है। आज के परिवारों के टूटने का प्रधान कारण आर्थिक विषमताएँ हैं और संयुक्त परिवारों के टूटने से ये विषमताएँ विपत्तियाँ, चिन्ताएँ तथा दारिद्र्य दिन प्रतिदिन तीव्रतर होते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप आज के मानव में नैतिकता का अभाव होता जा रहा है और अपराधी प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं। मानव में पारिवारिक सदस्यों के प्रति निष्ठा का अभाव होता जा रहा है। प्राचीन संस्कृति के आदर्श और अवधारणाएँ बदलती जा रही हैं। इसका प्रधान कारण है कि अपने प्राचीन आदर्शों का त्याग करके आज का नवयुवक दिग्भ्रान्त होकर भटक गया है, आज उसकी दशा लक्ष्य–विहीन है। जब युवक को लक्ष्य का ही ज्ञान नहीं है तब लक्ष्य की प्राप्ति कैसे सम्भव है? परिणामतः उसके मानसिक सन्तुलन बिगड़ते जा रहे हैं। उसकी मानसिक, शारीरिक और बौद्धिक शक्ति का ह्रास होता जा रहा है।

अर्थ की लोलुपता मानव की प्रमत्तता को प्रश्रय देती जा रही है। अर्थोपार्जन के लिये सभी उचित अनुचित साधनों का प्रयोग हो रहा है। सम्पूर्ण भ्रातृभाव का त्याग कर मानव अर्थ के लिये भाई के ही रक्त का पिपासु बनता जा रहा है। संयुक्त परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति को हड़पने के लिये मानव नाना प्रकार के छल और असत्य का आश्रय लेता जा रहा है। परिवार के प्रति त्याग की भावना का पूर्णतः लोप होता जा रहा है, उसके स्थान पर घृणा, ईर्ष्या, द्वेष पनपते जा रहे हैं, आतङ्क, अन्तर्द्वन्द्व और आन्तरिक सङ्घर्ष बढ़ता जा रहा है।

राम सपत्नीक वन जा रहे हैं और भरत ननिहाल में हैं, यदि लक्ष्मण चाहते तो अयोध्या में रहकर कुछ दिनों तक निर्विघ्न शासक बन सकते थे,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किन्तु लक्ष्मण के मन में क्षणमात्र के लिये यह विचार नहीं आया और सभी प्रकार के वैभव–विलास और सुख का त्याग कर, तपस्वी बनकर राम के साथ उनकी सेवा के लिये चल दिये। वनवास राम को हुआ था, यदि लक्ष्मण वन में न जाते तो भी कोई उनके चरित्र पर दोष न लगाता; किन्तु आदर्श परिवार के सभी सदस्य आदर्श होते हैं। लक्ष्मण ने अयोध्या में रहने की अपेक्षा वन में जाना अधिक श्रेयस्कर समझा। आज के नवयुवकों को ऐसे ही त्याग और निर्लिप्तता की महती आवश्यकता है। इस प्रकार की त्याग–भावना यदि आज के नवयुवकों में आ जाय तो न तो उन्हें आर्थिक परिस्थितियों से त्रस्त होना पड़ेगा, न उनमें कोई दिशा–हीनता ही आश्रय पा सकेगी और न तो वे कुण्ठाग्रस्त हो सकेंगे।

यद्यपि क्रोध की प्रवृत्ति और अन्तर्द्वन्द्वों से लक्ष्मण का सम्पूर्ण जीवन प्रभावित है जिसके कारण प्रबुद्ध आधुनिक समीक्षकों ने नवीन प्रणाली से लक्ष्मण के चरित्र की व्याख्या करने का प्रयास किया है और लक्ष्मण–चरित्र को व्यक्तिगत चरित्र मानकर उन पर सामाजिक मर्यादाओं की अवहेलना करने का दोष भी दरसाया है, किन्तु मनोवैज्ञानिक धरातल पर भी तुलसीदास के आदर्श पात्र लक्ष्मण खरे उतरते हैं और उन्हें हम कुण्ठा, अन्तर्द्वन्द्व से मुक्ति पाते हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान ने मन के चेतन, अवचेतन, उपचेतन और अचेतन चार भाग किये हैं, जिसके अनुसार सभी प्रकार की दमित इच्छाएँ अचेतन मन में सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती हैं। चेतन मन में विवेक होता है, अतः वह प्रत्येक व्यवहार को सामाजिक मर्यादाओं के धरातल पर तौलता है और प्रकट रूप से वही कर्म करता है जो समाज के अनुकूल हो, किन्तु कुछ उसकी ऐसी भी इच्छाएँ होती हैं जिसे सामाजिक भय से वह नहीं कर पाता। इस प्रकार की इच्छाएं मरती नहीं; अपितु उनका दमन करने से वे सुषुप्तावस्था में अचेतन मन में पड़ी रहती हैं। किसी कारणवश जब चेतन मन शून्य अथवा निर्बल हो जाता है तब विवेक समाप्त हो जाता है और मानव का वही व्यवहार समाज में प्रकट होता है जिसे वह विवेक के कारण दबाये हुआ था।

तुलसीदास के लक्ष्मण शेष के अवतार हैं। उनके लक्ष्मण पर समीक्षकों द्वारा मढ़ा हुआ उक्त दोष निराधार सा लगता है; क्योंकि तुलसीदास पूर्णतः आदर्शवादी कवि हैं और भारतीय संस्कृति और भारतीय मर्यादा की रक्षा के लिये ही उन्होंने रामकथा को पूर्णतः मिथकीकरण का रूप दिया है तथा लक्ष्मण को उन्होंने शेष का अवतार स्वीकार किया है। शेष स्वभाव से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्रोधी होता है। सङ्कट (खतरे) का लेशमात्र आभास होने पर भी भयङ्कर फुफकार कर उठता है। शेष का अवतार होने के कारण क्रोध इनके अन्तर्मन में बीजरूप से विद्यमान है जिसका प्रदर्शन लक्ष्मण के सम्पूर्ण जीवन में दिखलायी पड़ता है।

पिता दशरथ और माता कैकेयी पर क्रुद्ध होना तो इनका स्वाभाविक था, इसके अतिरिक्त परशुराम, जनक तथा निःस्पृह भाई भरत एवं शत्रुघ्न पर भी इनके क्रोध का प्रदर्शन हुआ है। इन स्थलों पर लक्ष्मण का विवेक समाप्त सा हो गया है। क्रोध की स्थिति में विवेक का समाप्त हो जाना स्वाभाविक है। इसे हम लक्ष्मण–चरित्र का दोष नहीं कह सकते; क्योंकि काल की दमित इच्छाएँ–जिनके कारण व्यक्ति कुण्ठाग्रस्त होता है, प्रायः काम, सम्मान और अर्थ सम्बन्धी होती हैं, किन्तु लक्ष्मण इस प्रकार की कुण्ठाओं से पूर्णतः मुक्त हैं। उन पर तो सांसारिक वैभव और विलास का कुछ प्रभाव ही नहीं पड़ा है।

लक्ष्मण–चरित्र में अन्तर्द्वन्द्वों की बहुत अच्छी झाँकी प्रस्तुत की गयी है। वनगमन के समय, जनक द्वारा "बीर बिहीन मही मैं जानी" कहने के समय, सीताहरण से पूर्व, सीता को छोड़ते समय, समुद्र से राम द्वारा विनय करते समय, लङ्का–विजय के पश्चात् सीता की अग्नि–परीक्षा के लिये चिता–निर्माण करते समय, राम द्वारा सीता का परित्याग करते समय लक्ष्मण के अन्तर्द्वन्द्वों का दिग्दर्शन होता है; जिनको तुलसीदास ने अपने साहित्य में स्थान दिया है और सीता–परित्याग करते समय के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण गीतावली में और अन्य अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण रामचरितमानस में प्राप्त होता है। किन्तु सभी स्थलों पर राम–हित या राम के सम्मान के रक्षार्थ ही लक्ष्मण के अन्तर्द्वन्द्व प्रस्फुटित हुए हैं। लक्ष्मण का अपना व्यक्तित्व तो निष्कलङ्क है। क्रोध भी उन्होंने राम–सम्मान के रक्षार्थ ही किया है और उनके अन्तर्द्वन्द्वों का कारण भी राम की समस्याएँ हैं, लक्ष्मण की व्यक्तिगत समस्याएँ नहीं। अतः स्पष्ट हो जाता है कि लक्ष्मण की अन्तर्निहित क्रोध की भावनाओं, अन्तर्द्वन्द्वों के कारण लक्ष्मण के चरित्र को व्यक्तिगत चरित्र मान लेना मिथ्यारोपण है। इन बिन्दुओं से हटकर लक्ष्मण का चरित्र एक आदर्श चरित्र है और केवल निष्कलङ्क आदर्श चरित्र है जो वर्तमान भारतीय समाज के समक्ष एक आदर्श प्रेरणास्रोत प्रस्तुत करता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपसंहार

गोस्वामी तुलसीदास के सम्पूर्ण साहित्य का केन्द्रबिन्दु रामचरित्र है और राम की चरित्र–रचना का आधार आदर्श तथा मर्यादा है। इसी केन्द्रविन्दु और आधार की भूमिका पर रामकथा के पात्रों की चरित्र–रचना हुई है। इस कथा का भारत में धार्मिक महत्त्व है। यही कारण है कि मानस के विभिन्न पात्र भारत की सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक सत्ता के अन्तर्गत मान्य आचार–व्यवहार और निषेध–प्रतिषेध से सम्बद्ध मूल भावनाओं तथा विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यही नहीं, इन पात्रों ने अपने अपने चरित्रों के आधार पर भारतीय जन–जीवन को शताब्दियों से प्रभावित किया है और आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मिक बल प्रदान किया है। इसीलिये विगत चार सौ वर्षों से गोस्वामीजी के इस रामचरितमानस महाकाव्य की प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा में निरन्तर वृद्धि होती आ रही है और आर्य मनीषियों के एवं ज्ञान के तात्त्विक एवं सारभूत अवदानस्वरूप रामचरितमानस भारतीय सांस्कृतिक महत्ता को प्रतिष्ठापित करने वाला आस्तिक जनता का खुले ग्रन्थ के रूप में अद्यावधि भी प्रेरणा का स्रोत बना है और बना रहेगा। दीन–दुःखियों की कुटियों से लेकर राजप्रासादों तक और निरक्षर जन–मानस से लेकर पण्डितों एवं दार्शनिकों की गम्भीर विचारणा तक इस ग्रन्थ की व्याप्ति है। इसकी तुलना पाश्चात्त्य विचारकों ने अपने महान् धर्मग्रन्थ बाइबिल से की है, भारतीय सुधीजनों ने इसकी तुलना गीता से की है। प्रश्न है महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की इस ग्रन्थ–रचना का प्रयोजन क्या है?

महाकाव्य में विस्तृत चरित्र–चित्रण हुआ करता है और यही महाकाव्य का रचनात्मक उद्देश्य भी है। अपने इस महान् उद्देश्य को पूर्णता प्रदान करने के लिये मानसकार ने जातीय संस्कृति के अनुरूप भव्य प्रतिमाओं को उत्कीर्ण कर अपने महाकाव्यरूपी चरित–मन्दिर में प्रतिष्ठापित किया। गोस्वामीजी ने व्यष्टि के साथ समष्टि–जीवन का समन्वय कर राम आदि की रसात्मक किन्तु मर्यादित लीलाओं को महाकाव्यात्मक स्वरूप प्रदान किया।

गोस्वामी तुलसीदास भारतीय मध्यकाल के महान् क्रान्तद्रष्टा कवि थे। उनके कविसत्त्व एवं जीवनबोध में उनकी प्रज्ञा एवं उपज्ञा–दोनों में ही एक आदर्श सन्तुलन था और इस आदर्श सन्तुलन के कारण उनके महाकाव्य का उद्देश्य–पक्ष बहुत ही भव्य और लोकमाङ्गलिक हो सका है। महाकवि ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रेष्ठ जीवनबोध एवं सरस कवित्व इन दोनों की समन्वित भूमिका पर अपने "मानस" का निर्माण किया है। इस आदर्श को उन्होंने मङ्गलाचरण में ही सरस्वती एवं गणेश की युगपत् वन्दना करते हुए स्पष्ट कर दिया है। अतः दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि चरित्र–रचना और लीलागान द्वारा लोकाराधन ही गोस्वामीजी की काव्य सृष्टि का महान् उद्देश्य है। "सीय राम मय सब जग जानी" एवं "सुरसरि सम सब कहं हित होई" सदृश पंक्तियाँ ही उनकी लोकाराधन की व्यापकता को स्पष्ट करने में पर्याप्त है। इस लोकरञ्जन के महान् आदर्श को प्रतिष्ठापित करने के लिये गोस्वामीजी ने काव्य की भूमि पर जिस सुदृढ़ व्यावहारिक पक्ष का अभिज्ञापन दिया है वह अभूतपूर्व या विस्मयकारक है। रामचरितमानस महाकाव्य का यह व्यावहारिक उद्देश्य अत्यन्त व्यापक है। भारतीय आचार्यों द्वारा इङ्गित काव्य के प्रयोजनस्वरूप चतुर्वर्ग फल को और अधिक उदात्त रूप में प्रतिष्ठापित करने के हेतु गोस्वामीजी ने राज्याभिषेक के बाद राम–राज्य का विस्तृत वर्णन किया है। कथा के महाकाव्यात्मक शिल्प का चरम विकास आदर्शों एवं मूल्यों के व्यावहारिक स्वरूप को रामराज्य की उत्कृष्ट कल्पना द्वारा चरितार्थ किया है। "मानस" के उत्तरकाण्ड में कवि का मानस, व्यष्टि मानस का नहीं, प्रत्युत समष्टि–मानस का प्रतीक बन गया है। यहाँ उन्होंने मानव जीवन के ऐहिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं राजनीतिक आदि सम्पूर्ण परिदृश्यों को अपनी व्यापक जीवन–दृष्टि में समेटने का सफल प्रयत्न किया है। यहाँ आकर उनकी अन्तर्दृष्टि इतनी व्यापक हो गयी है कि सामाजिक जीवन और युगादर्शों की परिधि में आने वाले विराट् एवं लघु–सभी तत्त्वों को उन्होंने एक ही परिप्रेक्ष्य में संगृहीत कर लिया है।

संक्षेप में रामचरितमानस महाकाव्य के उद्देश्य की परिधियाँ असाधारण रूप से व्यापक हैं। एक ओर वे राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन–बोध के स्वर को स्पर्श करती हैं तो दूसरी ओर युगधर्म को शाश्वत धर्म–मूल्यों से भी सम्पृक्त करने का प्रयत्न करती हैं। सूत्ररूप में "मानस" महाकाव्य का मूल उद्देश्य रामभक्ति के माध्यम से परमशक्ति अथवा परम विश्राम की उपलब्धि है। यह शान्ति मनुष्य के बाह्याभ्यन्तर–दोनों को ही अपने में समाहित किये हुए है और इसी परम शान्ति के केन्द्रबिन्दु के चारों ओर आदर्श की दूसरी छोटी–बड़ी परिधियाँ बनती दीख पड़ती हैं। वाल्मीकिरामायण की भाँति गोस्वामीजी के महाकाव्य का उद्देश्य हमें जीवन की वीरगाथात्मक ओजस्विता, सङ्घर्ष अथवा विजय की अनुचेतना में नहीं दिखायी पड़ता। कालिदास की भाँति वह जीवन में विलासवैभव की रङ्गीन कल्पनाओं का भी अनुवर्ती नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा जा सकता। भारवि एवं माघ के पाण्डित्य–दर्शन को भी उन्होंने लक्ष्यरूप में अस्वीकार ही किया है। एक वाक्य में कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी ने समस्त साम्प्रदायिक सीमाओं से दूर अपने महाकाव्य के उद्देश्य को राष्ट्र–हित एवं विश्व–कल्याण की सीमाओं के निकट पहुँचा दिया है एवं लोकमङ्गल की यह विराट् साधना ही पूज्य गोस्वामीजी के महाकाव्य रचना के उद्देश्य की गरिमा का चरम सोपान है।

प्रत्येक महाकाव्य में घटनाचक्र के सञ्चालन हेतु ही कतिपय पात्रों की सृष्टि होती है। इसी को चरित्रतत्त्व कह सकते हैं। यदि काव्यतत्त्व महाकाव्य की प्राणशक्ति है तो चरित्रतत्त्व काव्यपुरुष का मेरुदण्ड है। महाकवि अपने व्यापक उद्देश्य को अपने जीवन्त पात्रों के माध्यम से ही व्यक्त करने में समर्थ होता है। एक ओर वह विराट् जीवन की अनुभूतियों के प्रकाश में अपने पात्रों के शील का समुद्घाटन करता है और दूसरी ओर उसके पात्र भी उसकी जीवनानुभूतियों के उद्गाता बनते हैं। इस प्रकार महाकाव्य में चरित्र तत्त्व की उसके उद्देश्य के साथ इतनी निकट सङ्गति है कि हम उसे उद्देश्य का संवाहक मान सकते हैं।

महाकाव्यों में "चरित्र" ही वह परिधि है जहाँ आकर काव्य का शिल्प गौण हो जाता है और उस पर व्यापक उद्देश्य के नये प्रतिष्ठान उभरते हुए दीख पड़ते हैं। वस्तुतः यहीं से महाकवि की भावयोगात्मक यात्रा का प्रारम्भ हो जाता है और यहीं से महाकवि, पात्रों के समारोहपूर्ण चित्रण के साथ, मानवीय चेतनाओं की सूक्ष्मतम विवृत्ति के लिये सजग दिखायी देता है।

इस क्षेत्र में हमें भारतीय एवं पाश्चात्त्य–दोनों ही विचारधाराओं में एक प्रकार की उभयनिष्ठता दिखायी देती है। पाश्चात्त्य विचार–सरणि में महाकाव्य के पात्रों को भद्र, कुलीन, वैभवशाली एवं यशस्वी होना चाहिये। इधर भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के नायक के पक्ष में तेजस्विता, गम्भीरता, सहिष्णुता, प्रच्छन्न अहङ्कारिता आदि जिन कतिपय गुणों की चर्चा की है उससे महाकाव्य की चरित्रगत भद्रता का ही पोषण होता दीख पड़ता है। अन्तर इतना ही है कि भारतीय दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक आदर्शमूलक है और वह अपनी परिधि में प्रतिनायक के तत्त्व को भी सम्पूर्ण रूप से समाहित किये हुए है।

रामचरितमानस महाकाव्य की चरित्र–नियोजना पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि गोस्वामीजी ने इस क्षेत्र में मूलतः प्राचीन भारतीय आचार्यों के काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण का ही अनुगमन किया है। जिस प्रकार नैतिक आधार का ग्रहण करते हुए प्राचीन आचार्यों ने सम्पूर्ण पात्रसमूह को धीरोदात्त, धीरप्रशान्त, धीरललित एवं धीरोद्धत–इन चार प्रमुख कोटियों में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विभक्त कर दिया है; उसी प्रकार गोस्वामीजी ने भी नैतिकता एवं धार्मिकता की ही कसौटी पर अपने पात्रों का शीलाङ्कन किया है। चरित्रनियोजन की परिधि में दिखायी देनेवाला गोस्वामीजी का यह दृष्टिकोण विशुद्ध रूप से भारतीय है एवं उनके पात्र प्रमुख रूप से सत् और असत् के ही दो विशाल कक्षों में विभक्त हो जाते हैं। इस प्रकार 'मानस' के राम, भरत, सीता, लक्ष्मण, हनुमान् ये सभी पात्र एक विशिष्ट (सात्त्विक) वर्ग के अन्तर्गत हैं और रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि दूसरे (तामस) ही वर्ग का प्रतिनिधित्व करते दीख पड़ते हैं। इन दोनों के बीच हमें विभीषण, तारा, मन्दोदरी, त्रिजटा सदृश पात्रों की अवस्थिति दीख पड़ती है जो एक प्रकार से सामान्य शील वाली (राजसी कोटि) के पात्र कहे जा सकते हैं।

रामकथा के पात्र मानव हैं और मानव होने के नाते उनका अध्ययन मानवीय धरातल पर ही किया जा सकता है। रामकथा के अन्यतम मुख्य पात्र (लक्ष्मण) को मानव मानकर उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण, उनके चरित्र का अध्ययन, उनकी वैयक्तिक गरिमा, उनका जीवनबोध–यह सब कुछ अपने आप में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इन सबके विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्याङ्कन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि लक्ष्मण–चरित्र के माध्यम से भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है। मानव का चरित्र मानव व्यवहार में व्यक्त होता है। अतः मानव चरित्र को समझने के लिये मानव व्यवहार का अध्ययन समीचीन है जो एक बहुत ही जटिल कार्य है। मानव चरित्र जटिल होने पर भी व्यवहारों के रूप में समाज में उसकी बाह्य अभिव्यक्ति होती रहती है और इसी अभिव्यक्ति के आधार पर मानव के चरित्र की पहचान की जा सकती है।

सामाजिक प्राणी के रूप में मानव का सम्बन्ध सर्वप्रथम परिवार नामक संस्था द्वारा स्थिर होता है। इसी के माध्यम से मानव सभी प्रकार की शक्तियाँ ग्रहण करता है और विकास करता है। इस दृष्टि से लक्ष्मण–चरित्र का मूल्याङ्कन पारिवारिक धरातल पर किया गया है।

तुलसीदास ने मनुष्य के चरित्र–निर्माण में कुटुम्ब के महान् योग को मानस में स्वीकार किया है। परिवार एक ऐसा शिक्षणालय है जो स्नेह और सौहार्द्र का, गुरुजनों के प्रति आदर और भक्तिभाव का, तथा सामूहिक कल्याण के लिये वैयक्तिक प्रवृत्तियों और महत्त्वाकांक्षाओं को नियन्त्रित करने का पाठ सिखाता है। अपने जीवन में लक्ष्मण ने अलौकिक गुणों का परिचय दिया है। उनकी जड़ें उनके पारिवारिक जीवन में जमी थीं। जहाँ उन्होंने सत्य, तप, त्याग, पवित्रता, सेवा, बलिदान, भ्रातृप्रेम, सख्यभाव,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सरलता, मृदुता, विद्या, नैतिकता आदि मानवीय सद्गुणों को विकसित किया, वहीं उन्होंने प्रजाजनों को चरित्रादर्श से, दीनों को दया से, गुरुजनों एवं बड़ों को सेवा से और शत्रुओं को धनुष से जीतना सीखा। राम के प्रति सेवाभाव, भ्रातृत्व आदि गुण, जो उनके सङ्घर्षमय जीवन में प्रकट हुए हैं, अपने उद्भव और विकास के लिये पारिवारिक सहयोग एवं पारिवारिक अनुशासन के ही ऋणी हैं। वस्तुतः "मानस" के उपनायक लक्ष्मण का समग्र जीवन, परिवार के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक सत् प्रभाव का उज्ज्वल दृष्टान्त है, जो महाकलाकार की महाकाव्य–रचना का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। अर्थात् दूसरे शब्दों में लक्ष्मण के चरित्र के माध्यम से गोस्वामीजी एक आदर्श परिवार की अभिव्यञ्जना करने में बहुत दूर तक सफल हुए हैं।

रामकथा का प्रारम्भ संयुक्त परिवार से होता है, किन्तु कैकेयी की दुर्भावना ने दशरथ के संयुक्त परिवार के सभी सदस्यों को छिन्न–भिन्न कर डाला। इस स्थल पर लक्ष्मण के जो मौन भाव व्यक्त हुए हैं और उन भावनाओं के कारण उनका जो व्यवहार परिवार के प्रति अभिव्यक्ति पा सका है उसी में पारिवारिक मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। इन मूल्यों के साथ लक्ष्मण का चरित्र उभर कर सामने आया है। राम–वनगमन के समय परिवार के सभी सदस्यों का व्यवहार भिन्न–भिन्न है। सीता तो राम के साथ जाती ही हैं, लक्ष्मण भी राम के साथ जाने को सन्नद्ध हो जाते है, यहीं लक्ष्मण राम की छाया के रूप में सामने आते हैं।

वाल्मीकि के लक्ष्मण, मुख्य रामकथा में राम के सदा साथ रहे हैं, मानों वे दोनों एक प्राण हों। यही कारण है कि "काल–आगमन" की घटनाविशेष से जब राम, लक्ष्मण का परित्याग करते हैं, तब लक्ष्मण का मानो देहपात ही हो जाता है। वाल्मीकि लक्ष्मण राम के अव्यक्त व्यक्तित्व का व्यक्त रूप हैं। गोस्वामीजी ने भी वाल्मीकि के ही समान लक्ष्मण को राम का पूरक माना है[1]। तुलसी के लक्ष्मण राम की छाया हैं—

"लखि सिय लखन बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं।"

लक्ष्मण राम के अनन्य दास तथा परम भक्त हैं। अतः वन्दनीय हैं। लक्ष्मण में प्रायः वे सभी गुण हैं, जो पुरुषोत्तम राम में प्राप्त होते हैं। लक्ष्मण में कुछ अधीरता तथा उग्रता अवश्य है, परन्तु साथ ही वीरता, उदारता, दया, क्षमा, विवेक तथा धैर्य आदि गुण भी हैं। यदि यह कहा जाय कि लक्ष्मण वस्तुतः घटना, व्यापार तथा चारित्रिक विशेषताओं की दृष्टि से रामकथा के दूसरे नायक ही हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। परन्तु नायकोचित लक्ष्मण का चरित्र राम के नायकत्व में लीन होने के कारण हम उन्हें उपनायक ही मान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकते हैं। रामकथा के एक आदर्श उपनायक लक्ष्मण के व्यक्तित्व में सौन्दर्य, शील तथा शक्ति का सुन्दर सामञ्जस्य उपस्थित हुआ है। परन्तु अपने महान् व्यक्तित्त्व का लक्ष्मण ने राम के लिये त्याग कर दिया है एवं ऐसे "व्यक्तित्व–विसर्जन का उदाहरण भारतीय साहित्य में ही क्या कदाचित् विश्व साहित्य में भी दुर्लभ है।" अतः स्पष्ट है कि लक्ष्मण के व्यक्तित्व–त्याग तथा राम के साथ एकप्राण होने के कारण रामचरित के साथ लक्ष्मण–चरित्र अविच्छिन्नरूप से जुड़ गया है। लक्ष्मण का समस्त चरित्र–वैशिष्ट्य राम के समान ही है। लक्ष्मण इसीलिये राम के आजीवन सहचर रह सके। यदि कहा जाय कि लक्ष्मण तथा राम एक दूसरे के विना कभी रहे ही नहीं तो अनुचित न होगा। वाल्मीकि का कथन है–

लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहिः प्राण इवापरः।
न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः।।
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति नहि तं विना।।[1]

इस प्रकार लक्ष्मण शक्ति हैं और राम उनके नियामक, जिसका प्रमाण हमें धनुषयज्ञ प्रसङ्ग में प्राप्त होता है। राम के अपमान पर लक्ष्मण का स्वभाव उग्र बनकर असंयत बन जाता है, तब राम के एक सङ्केतमात्र से लक्ष्मण शान्त एवं संयत भी हो जाते हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण–परशुराम–संवाद में लक्ष्मण की निर्भीकता, साहस, मर्यादा एवं विनयशीलता उल्लेखनीय है। यद्यपि लक्ष्मण ने इस प्रसङ्ग में असहिष्णुता का परिचय दिया है, परन्तु राम की गम्भीरता का रक्षण करने के लिये ही उन्होंने यहाँ धृष्टता तथा कठोरता का आश्रय लिया है। हमारे महाकवि गोस्वामी जी की चरित्र–नियोजना की अपनी यह एक विशेषता है कि उन्होंने इस महाकाव्य में स्थान–स्थान पर जहाँ कहीं भी आवश्यकता पड़ी है, लक्ष्मण–चरित्र द्वारा अपने उपास्य राम की मर्यादापुरुषोत्तमता को सम्हालने का प्रयत्न किया है। राम का उद्देश्य लक्ष्मण के माध्यम से ही, जहाँ भी कहीं आवश्यकता पड़ी है, महाकवि पूर्ण कराते दृष्टिगोचर होते हैं।

भ्राता, भक्त, स्नेहपूर्ण, संयमी, सन्यासी, भ्रातृस्नेह में आत्मविस्मृत और संसार–विस्मृत लक्ष्मण का स्नेह सर्वत्र मौन रूप से प्रकट हुआ है। अपने वाक्यों से उन्होंने उसे कहीं भी प्रकट नहीं किया है। ये राम की छाया के सदृश थे, राम के बिना इन्हें एक क्षण भी सुख नहीं था। इस सन्दर्भ में राम–वनवास का प्रसङ्ग द्रष्टव्य है। प्रश्न है लक्ष्मण में यह विकलता क्यों? ये तो सुख–दुःख की अनुभूति समान रूप से करते थे? ठीक है। यह विकलता वर्तमान या भावी विपत्ति के कारण से नहीं, अपितु भ्रातृ–सेवा से वञ्चित होने की आशङ्का से थी। रामलक्ष्मण ऐसे एक प्राण दो शरीर हो गये हैं कि सीता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा भरत के बिना राम की कल्पना हो सके तो हो, परन्तु लक्ष्मण विना राम की कल्पना ही नहीं। राम के समान ही लक्ष्मण के शील–स्वभाव का प्रायः समान चित्रण सभी रामकथाकारों ने किया है। लक्ष्मण जिस प्रकार आशुकोप थे, उसी प्रकार राम के सान्निध्य में आशुतोष भी थे। अनियन्त्रित लक्ष्मण के नियन्त्रक राम थे और उनके क्रोध की अपेक्षा राम के नियन्त्रण में बल अधिक था। इसीलिये, वे उनके दृढ़ आज्ञाकारी हैं। इस सन्दर्भ में पञ्चवटी में शूर्पणखा–प्रसङ्ग को देखा जा सकता है। यहाँ असंयम, अमर्यादा, असहिष्णुता आदि का आरोप लक्ष्मण पर न लगाना ही उचित होगा; क्योंकि मर्यादापुरुषोत्तम राम को जब कभी अनिवार्य रूप से मर्यादा–भङ्ग करने की स्थिति आयी है तब महाकवि ने लक्ष्मण का प्रयोग किया है, जहाँ मूलतः लक्ष्मण न बोलकर राम ही बोलते हैं।

सम्पूर्ण रामचरितमानस महाकाव्य में राम, सीता, एवं लक्ष्मण ही ऐसे पात्र हैं जो नर और नारी चरित्र का आदर्श मानदण्ड बनकर रामकथा में आये हैं। अतः इन तीनों चरित्रों को ही राम–कथा में प्रथम एवं प्रधान मान सकते हैं। तीनों का चरित्र मानवीय है, विषम परिस्थितियों में तीनों ही परस्पर एक दूसरे के सम्मुख आत्माभिव्यक्ति करते हैं। राज्याभिषेक के समय, सीताहरण के बाद, सीता–मिलन के पश्चात् या सीता को पुनः निर्वासित करते समय आदि महत्त्वपूर्ण प्रसङ्गों में उपास्य राम का अन्तर्द्वन्द्व दर्शनीय है एवं राम के इन अन्तर्द्वन्द्वों के मानवीय स्वरूप का उद्घाटन महाकवि ने लक्ष्मण से ही कराया है। ऐसे स्थलों पर राम के मानवीय पक्ष की अभिव्यक्ति हो सकी है। लक्ष्मण के कथन तीक्ष्ण और तीव्र रूप में प्रकट होते हैं और इन कथनों में राम का मानवीय पक्ष सामने आता है। यहाँ राम और लक्ष्मण दोनों के चरित्र में केवल मात्रा का भेद है, इस अन्तर को यदि स्पष्ट करना हो तो यों कहा जा सकता है कि सभी महत्त्वपूर्ण प्रसङ्गों में राम के मानवीय पक्ष का पूर्णरूपेण समर्थन करते हुए लक्ष्मण हमें दिखायी देते हैं। अपने पक्ष के समर्थन में प्रबल तर्क प्रस्तुत करते हैं तथा ये सब तर्क राम के व्यक्तित्व के वे भाग हैं जिसमें राम स्वयं परिस्थितियों से सङ्घर्ष करते हुए आदर्श मानव के रूप में सामने आते हैं। रामचरितमानस में लक्ष्मण को महान् मर्यादापालक, धर्मधुरीण और राम के चरण–सेवक के रूप में निरूपित किया गया है। जिनका चरित्र एक पूर्ण मानव का चरित्र है जो पूर्णता की कसौटी पर पूर्णरूप से खरा (परिशुद्ध) उतरता है। जिनका वैराग्य, जिनकी तपस्या अद्वितीय है, जिनका निर्मल चरित्र यश चन्द्र के सदृश हृदय के समस्त पापतापों का शमन करने वाला और असमर्थ से असमर्थ के लिये भी आशा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का उज्ज्वल सन्देश देने वाला है, जिनकी यशःप्रभा से समस्त मानस प्रकाशित हो रहा है तथा जिनके हृदय की भक्ति, ज्ञान और कर्म की समन्वयात्मक त्रिवेणी में अवगाहन कर महामुनियों ने भी अपने को कृतार्थ अनुभव किया है। लक्ष्मण में चातक का सा अनन्य प्रेम सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है, जहाँ न कोई धर्म है न ज्ञान। राम की गरिमामयी गुण–गाथा को जिससे मानस का कण कण ओतप्रोत है, उस कीर्ति–पताका को ऊँचा करने वाले लक्ष्मण हैं। इस महाप्रेमी ने राम के यश को ऊँचा उठाया है, जिसे सूक्ष्मद्रष्टा कवि ने वन्दना–प्रसङ्ग में दण्ड की उपमा से उपमित किया है—

"रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयऊ जस जाका।"

इस महाप्रेमी ने अपने यश का बलिदान कर राम की कीर्ति–पताका को उठाये रखना अपना अनन्य कर्त्तव्य समझा है। इस त्याग के कारण राम की यशश्चन्द्रिका चौगुनी चमक उठी है। लक्ष्मण के जीवन का एकमात्र लक्ष्य राम की विरुद–रक्षा ही रहा है, अपनी यशोरक्षा नहीं। तभी गोस्वामी जी ने लक्ष्मण में गुणशीलता देखी है—

बंदौ लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता।।

महाव्रती लक्ष्मण और उनका बलिदानमय जीवन सतत स्मरणीय है एवं सम्पूर्ण मानव समाज के लिये एक प्रेरणाप्रद आदर्श है। उनकी असहिष्णुता, उनकी वक्रता, उनका आवेग, उनके नाट्यकौशल के ही सूचक हैं एवं सच्चे प्रेमी के लिये दूषण नहीं भूषण हैं। सच्चा प्रेमी प्रदर्शन चाहता ही कब है! इस प्रकार "रघुबर बाल पतङ्ग" की तुलना में भृगुकुल पतङ्ग के लिये लक्ष्मण अस्ताचल सिद्ध हुए और रामयश, प्रतिद्वन्द्वितारहित सूर्य की तरह, चमकता ही रहा। एक वाक्य में लक्ष्मण अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री (पूर्णता) शत्रु–मित्र दोनों के मन में अपने प्रति नहीं, अपितु अपने उपास्य राम के प्रति महान् आदर और श्रद्धा का भाव भरने में ही समझते हैं। सत्य तो यह है कि राम–कीर्ति–पताका को ऊँचा फहराने का श्रेय इस दृढ़ और उन्नत दण्ड को ही है एवं लक्ष्मण के अनन्त सक्रिय सहयोग द्वारा ही राम अपने कर्मक्षेत्र में कृतकार्य हो सके हैं। संक्षेप में लक्ष्मण एक तेजःपुञ्ज वीर हैं एवं लक्ष्मण के चरित्र की सारी विशेषताएँ राम के प्रति उनके अनन्य सेवाव्रत तथा उत्कट अनुराग से अनुप्रेरित हैं। लक्ष्मण का बाह्य सौन्दर्य केवल कनक की भाँति कान्तिमान् नहीं उसमें स्वर्ण–सुगन्धि–संयोग भी है। मर्यादापालन, धर्मधुरीणता के साथ–साथ यशःप्रभा से आलोकित चरित्र किसी भी प्रकार भी कम नहीं है। लक्ष्मण के हृदय में भक्ति, ज्ञान और कर्म समन्वय की त्रिवेणी निरन्तर प्रवाहित होती दृष्टिगत होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निष्कर्ष रूप में, लक्ष्मण का चरित्र रामकथा का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। रामकथा के ये ही एक ऐसे पात्र हैं जो आदि से अन्त तक राम के साथ रहे हैं। अतः राम के बाद रामकथा का सर्वाधिक प्रमुख पात्र लक्ष्मण ही हैं। यदि यह कहा जाय कि रामचरितमानस में लक्ष्मण ही एक ऐसे चरित्र हैं, जिनकी धुरी पर महाकवि तुलसी का "मानस" महाकाव्य, उपास्य नायक राम के नरत्व की अभिव्यक्ति, राम का मानवीय आदर्श तथा व्यावहारिक स्वरूप की प्रतिष्ठापनां एवं गोस्वामी जी के राम–अवतारवाद का प्रयोजन तथा महाकाव्य–रचना का उद्देश्य टिका हुआ है तो अनुचित नहीं होगा। साथ ही यह कहने में भी कोई आपत्ति न होगी कि गोस्वामी का यह रामचरितमानस महाकाव्य वास्तव में मनुष्य के चूड़ान्त आदर्श की स्थापना का एक विराट् मानवीय प्रयत्न है। महाकवि का अपना मानसिक धरातल इस "मानस" महाकाव्य में इतना विस्तीर्ण एवं गम्भीर हो गया है कि वह सामाजिक आदर्श के मूल्याङ्कन में, पात्रों की सदसत् प्रवृत्तियों के सूक्ष्म विश्लेषण तथा मनुष्य–चरित्र के सम्पूर्ण आन्तरिक एवं बाह्य पक्षों को झाँक कर देखने की अपनी विलक्षणता में, अपने युग को अपनी जाज्वल्यमान प्रतिभा से आक्रान्त किये हुए हैं।

यही कारण है कि गोस्वामीजी द्वारा प्रणीत "रामचरितमानस" हिन्दू संस्कृति का विश्वकोष है तथा धर्मग्रन्थ एवं अपूर्व नीतिग्रन्थ है। यह भारतीय संस्कृति की आत्मा माना जाता है। इसके पात्र पूजनीय, उपयोगी एवं अनुकरणीय हैं, जो हमारे पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जीवन के लिये चिरन्तन आदर्श प्रस्तुत करते दृष्टिगत होते हैं।

किमधिकम्, गोस्वामी तुलसीदासजी लक्ष्मण के चारित्रिक वैशिष्ट्य को समष्टिरूप में "विनयपत्रिका" में इस प्रकार निवेदित करते हैं–

लाल लाड़िले लषन हितु हौ जन के।
सुमिरे संकटहारी, सकल सुमंगलकारी, पालक कृपालु आपने पन के।।
धरनी–धरनहार भंजन–भुवनभार, अवतार साहसी सहसफन के।।
सत्य–संध, सत्यब्रत, परमधरमरत, निरमल करम बचन अरु मन के।।
रूप के निधान, धनुबान पानि, तूनकटि, महाबीर–बिदित, जितैया बड़े रन के।।
सेवक–सुखदायक, सबल, सब लायक, गायक जानकीनाथ–गुनगन के।।
भावते भरत के, सुमित्रा सीता के दुलारे; चातक चतुर राम–स्यामघन के।।
बल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेहबस, धनी धनु तुलसी से निरधन के।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सन्दर्भ-सूची

[इस ग्रन्थ में आये हुए महत्त्वपूर्ण सन्दर्भों की सूची प्रबुद्ध पाठकों के अध्ययन के सुविधार्थ प्रस्तुत है। सन्दर्भित ग्रन्थों के नाम क्रमसंख्याओं से युक्त हैं। ग्रन्थ के नाम के अधीन 'पृष्ठ' शीर्षक के अन्तर्गत वर्तमान ग्रन्थ की पृष्ठसंख्या का उल्लेख है। 'सन्दर्भ' शीर्षक के अधीन सन्दर्भित ग्रन्थों के उन स्थलों का संकेत दिया गया है, जिनका सम्बन्ध वर्तमान ग्रन्थ में वर्णित प्रसंगों से है। किसी पृष्ठ-विशेष पर यदि एक ही ग्रन्थ से सन्दर्भ कई बार आये हैं तो प्रथम सन्दर्भित स्थल/स्थलों के उल्लेख के आगे 'सेमीकोलन' (;) चिह्न मुद्रित है, जिसके बाद द्वितीय सन्दर्भित स्थल/स्थलों का उल्लेख है तथा उससे आगे भी इसी क्रम का अनुसरण किया गया है।]

१. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास

पृष्ठ–सन्दर्भ

४ १/३४/११; १/३५/३–५.
३२ १/३३/४–६; १/१४०/२; १/१९८;
३३ १/१९७/३, १/१६/६; २/६९/३, १/२६७/७; १/१६/८.
३८ २/२९/३, २/२२/३.
६२ ४/श्लो०१;
६३ १/१६/६. १/१६/५–८.
६६ २/६९/८–२/७०/७.
६७ २/९१/३–९३/१.
७२ १/१६/५–६.
७४ १/२९७/१.
७७ ६/७६/४.
७९ १/१८६/२; १/१८६/७; १/१६/७.
८० २/२२९.
८४ १/१६/७.
८६ १/१६/५; १/१६/७.
८७ १/१६/७; १/१६/८; १/१६/८; १/५२/२; १/९७/१.
८८ १/२१४/५.
१०६ १/१८९/२–४.
१०८ १/१२० (घ); १/२०५/५–६; १/१८६/१; ३/२२/३–४; ७/३१/४; ७/३२/२; १/२१५/३, ५.
१०९ ७/५/५, १/२००/७.
११० ४/२६.
१११ ३/९; ६/११३/६–७; ४/१; ७/२०/२.
११२ १/१८६/२; १/१६/७; ६/५४.
११४ १/१६/८.
११५ ७/१२२/६, १/१४२/४; १/१०८/३, ७/१०५/२; १/१८/२.
११६ १/३२४/छं० ४.
११८ १/७९; २/१०१/६; ४/१४/८; १/२०८/७; १/२७५/३, २/९८/८.
१२२ ५/श्लो०१; ४/१०/१–४; २/२५४/३.
१२३ ७/१०५/२; १/२८६; ७/५४/१–४, ७/८६/२-४; ७/११७सो०; १/११६/४, ७/११७/१–२; ४/१५ ख; ७/११५/७; ७/११९/१.
१२४ ३/१४/८.
१२५ १/२५०/३.
१२७ १/३६/१३; २/९४/४, २/९३/१; ३/१६/१; ७/४४/२; ३/३४/७; १/२१/४, ५; १/२/श्लो० १; २/२८८/६, २/२०७/४, २/१८३/२.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

१२८ ३/१०/४, ३/३६/४; १/३४१/५, २/१२९,२/२०४;७/१३०;७/९२/छं०, १/२९/२; २/१३७/१; ७/९२ख (सोरठा).
१३३ २/६७.
१४३ ३/३८/५.
१५४ २/६९/१; २/९५/४.
१६६ २/२९२/७; २/२९२/८; १/११५/७; ३/१०/६; १/१५४/५; १/१०१/३; ७/१०३/१; ७/१०३/७; ५/३८/४; ७/९७/१; ७/२०; २/३१५/१; ७/१२०/२२.
१६७ १/८३/१;७/११६ख/१३; २/२३२/१;७/२०/३; ३/१५/१; २/५२/५; २/३२२/८; २/३२४/२; ७/३०/७; ६/७९/११; १/३६/९; १/२१७/८; ७/२०१/ख; २/१८५/६; ७/५३/१; ७/५३/२.
१६८ २/९४/५;७/११६/१०;७/४०/१.
१७४ ७/९७–७/१०२; ७/११/७–७/३१.
१७६ १/१४२/१; २/२२८.
१७८ २/४/५, २/२४३/२, २/७५/७, २/१४९/३; १/१८८/२–३,१/२९३, २/२, २/८५; २/२३४/६.
१७९ ६/३८/५; ४/१८/६; २/३४/२–३; ६/४०/२–३; ६/३८/४–६; ७/७/७–८; ५/३४/८; ६/३८/४.
१८० ६/६७–६८; ६/५१/१–४; ६/३९/७–८, ५/३४/९; ६/६४/७–९; ६/५६–५७; ६/४५/१०–११, ६/४६, ६/७२/१–४, ६/१००छंद; ६/४५/६, ६/७९; ६/४०/२–३, ६/३८/१०; ६/३८/६–८; ६/४०/७, ६/३८/८.
१८२ २/७०/६.
१९२ २/९२/७–८, २/९३. १/२०८/१; १/२१५/३; १/२१९/२–३.
१९३ २/२३१/६, १/३३४/७; १/३५८/२; १/३५८/४; ३/१८/३–४; ३/१७छं०.
१९४ १/२१७/६; १/२२४/६; १/२२५/१–२ व ६, १/२२६ व १/२६६/२०, १/२३६/१–२; १/२५३/६–७, २/७० व २/७०/१.
१९५ २/६०/४–८; २/६०/५; २/२४३/७–८ व ७/९/२; २/५१/५–६.
१९७ २/१८८/३–८; २/१९१/४; २/१९२ व २/१९४.
२०१ २/३२१/६–७.
२०२ १/२१४, १/२१६, १/२१६/६–८; १/३२०/१–२; १/२१४, १/२१४/१–२.
२०९ ६/१०३/४.
२१० ६/८२/८, ६/८२/छं०; ६/९३; ६/९७/१३–१४; ६/९५.
२१८ १/२२९/८.
२२६ २/६९–२/७२/२, ३/१७/१०–१२, ३/२६/८–९; ३/२९/८; ४/१३–४/१७१–३; ६/६०/९–१०; २/२२२/१२–१३.
२३१ १/३०६/४–५.
२३५ ६/५३–६/५४.
२५१ २/२४ छं०; २/२५१/६.
२५३ १/२७०–१/२७९; २/९५/४; १/२५२–१/२५३; ३/२७/५–६; ५/५०/२–४; ६/१०८/४–५; ७/२९/३१.
२५५ १/२१५/१–२–१/२१६/२–४; २/

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२२९-२/२३१.
२५६ १/२६७-१/ २८४; २/६९-२/७२.
२५७ २/९०-२/९३; २/९५/४; २/१३८-
२/१४१/२.
२६० ६/१०८-६/१०९.
२७३ १/१६/५.

२-श्रीमद्भगवद्गीता

पृष्ठ-सन्दर्भ

४ ४/१; ४/२-३.
१०७ ४/७-८.
१०८ ३/२१.
१०९ ४/९; ४/१४.
११० १४/२७.
११५ ८/३.
१२१ १८/१८ पर शा० भा०; ४/१ व ६/८
पर शा० भा०.
१२२ १३/२; १३/१, ५-६ एवं १३/२ पर
शा० भा०; १३/१२-१७.
१२४ २/५९.
१३० ७/१६.
१४१ ३/२७; ३/३०-३१.
१४२ २/१४,
१४४ २/६१; २/६९.
१४५ ६/४७; ७/१५.
१६८ ३/२०.
१७९ २/२६.

३-संस्कृत साहित्य का इतिहास,

बलदेव उपाध्याय

पृष्ठ-सन्दर्भ

५ पृ० २७१.
७ पृ० ६११
११ पृ० ५७०

४-संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास

कृष्ण चैतन्य,

अनु० विनयकुमार राय

पृष्ठ-सन्दर्भ

६ पृ० १८४; पृ० १८४.
७ पृ० २१७.
१३ पृ० २७३.
१४ पृ० ३१५.
१७ पृ० ३७६.
१९ पृ० ३७८.

५-वाल्मीकि रामायण

पृष्ठ-सन्दर्भ

६ १/१८/३०.
८० २/४५/११.
१०० १/१६/२७-२९; १/१८/१४;
१/१८/१३.
१०५ १/१६, १/१६/२६.
१११ १/१५/४; १/१५/१८, २०-२१;
१/१५/३०-३१.
१३१ ३/४२/५-८.
१३२ ३/६६/१-२०.
१३५ ३/१/११६; ३/१/१२३.
१५३ २/२१/३.
१५४ २/२१/२६-३०.
१५५ २/४०/९.
१५६ २/२१/१०-११
१५७ २/२१/१६-१७.
१५८ ३/४५/२१-२४; ३/४५/३०-३२.
१६९ २/५/३१.
१७५ ४/१८/४२; २/६७/३४; २/६७/३५;
४/१८/४२; २/६६/८-२/६६/१४
एवं २/६६/३६; २/१८/१४.
१७९ ६/८०/३९.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१८४ ५/५२/५.
१८८ ४/३४/७-१७.
२५५ १/५०/१७-२०.
२५७ २/५१/९, १४, २६, २/५८/२६-३३; २/५५/१९, २०, २५, २८; २/९६/ १७-३०.
२५८ ३/१८/९-२१; १/२६/१८, ३/२१/ २१, ३/६९/१७; ३/४५/११-३३.
२६० ६/११६/१७-२१; ७/४५-४८.
२७४ १/१८/२९-३०.

६. तुलसीदास,
डॉ० माताप्रसाद गुप्त

पृष्ठ-सन्दर्भ
३० पृ० २३४.
३१ पृ० २३५.
३२ पृ० २३८.
३३ पृ० २४८.
३४ पृ० २५१.
३५ पृ० २२५.

७. तुलसीदास और उनकी कृतियाँ,
रामनरेश त्रिपाठी

पृष्ठ-सन्दर्भ
३० पृ० ३७९.
३२ पृ० २३७; पृ० ४०३.
३४ पृ० ४०५.
३५ पृ० ३६८.

८ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,
डॉ० रामकुमार वर्मा

पृष्ठ-सन्दर्भ
३० पृ० ३९४.
३२ पृ० ४०४.
१७३ पृ० ४८८.

९. विनयपत्रिका, गोस्वामी तुलसीदास

पृष्ठ-सन्दर्भ
३४ पद-३७; ३८.
७९ पद-३८.
८० पद-३८.
८६ पद-३८.
८७ पद-३७.
११३ पद-३७.
११४ पद-३८.
११५ पद-४७/६, ५४/४, ५७/४, ५७/६.
१२१ पद-३८.
१२२ पद-१८८, १२३/३-१०; १९७/२; १२३, १९७.
१२३ पद- १२१/४; १२३/५; ४७/२, ४; ७४/२; १३६/१, ११.
१२८ पद- २६९/१-२; १६४.
१३८ पद- १६८/१-२.
१३९ पद- ३८/७.
१४३ पद- १२०/३; १२१/३; १२२/२.
१४५ पद- १६७/२-५
१७१ पद- १७४; ३७.
२०९ पद-१७४.
२३३ पद-३७.
२५१ पद-१००.

१०. रामचन्द्रिका,
आचार्य केशवदास

पृष्ठ-सन्दर्भ
३७ ९/छं० २२.
३७ ९/छं० २९; १२/छं० १८.
३८ २०/छं० ४०, ४१; ३३/छं० ५१, ५२.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

११. संस्कृत हिन्दीकोश,
वामन शिवराम आप्टे
पृष्ठ–सन्दर्भ
४६ पृ० ३७४; ३७४.
४७ पृ० ३७९.
७३ पृ० ८६५.
७८ पृ० ३०.
७९ पृ० ३७.
८० पृ० ३६.

१२. शब्दकल्पद्रुम
पृष्ठ–सन्दर्भ
४६ भाग ४, पृष्ठ ४३५.
४६ भाग ४, पृ० ४३६.
७१ भाग ४, पृ० १९६.
७८ भाग १, पृ० ४१.
७९ भाग १, पृ० ४८.
८१ भाग ४, पृ० ४७१.

१३. हिन्दी मानक कोश,
सम्पा० रामचन्द्र वर्मा
पृष्ठ–सन्दर्भ
४६ पृ० २१५; २१४.

१४. हिन्दी साहित्य कोश,
प्रधान सम्पादक : डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
पृष्ठ–सन्दर्भ
४८ पृ० ३९३.
५३ पृ० २८६.

१५. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप और विकास,
डॉ० शम्भुनाथ सिंह
पृष्ठ–सन्दर्भ
४८ पृ० ११२.
४९ पृ० ११५.
५८ पृ० ५३७.

१६. डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेरी टर्कस,
टी. शिप्ले
पृष्ठ–सन्दर्भ
४९ पृ० ५१–५२.

१७. वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित-मानस का तुलनात्मक अध्ययन,
डॉ० विद्या मिश्र
पृष्ठ–सन्दर्भ
५८ पृ० ४१८.
६४ पृ० ४४६.
६६ पृ० ४४८.
६८ पृ० ४५९.
११५ पृ० २३५.
२२१ पृ० ४८६.

१८. गोस्वामी तुलसीदास,
रामचन्द्र शुक्ल
पृष्ठ–सन्दर्भ
५८ शील निरूपण, चरित्र चित्रणवाला अध्याय।
६१ पृ० ११३.
१९३ पृष्ठ ४७.

१९. तुलसी साहित्य की भूमिका,
डॉ० रामरतन भटनागर
पृष्ठ–सन्दर्भ
५९ पृष्ठ ५३–५४.
१७४ पृष्ठ ३१०–३११.

२०. तुलसी ग्रन्थावली,
सम्पा० रामचन्द्र शुक्ल
पृष्ठ–सन्दर्भ
५९ तीसरा भाग, पृष्ठ ११.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२१. हिन्दी महाकाव्य और महाकाव्यकार, डॉ० रामचरण महेन्द्र
पृष्ठ–सन्दर्भ
६० पृ० ४०–४१.

२२. वाचस्पत्यम्, श्री तारानाथ भट्टाचार्य
पृष्ठ–सन्दर्भ
७१ भाग–६, पृष्ठ ४८१९.

२३. अध्यात्म रामायण
पृष्ठ–सन्दर्भ
७२ १/३/४५.
८२ ७/५/२.
१०१ १/३/१०.
१११ २/२/२४. ६/१५/५३; १/१/१; ३/१०/१३.
११२ १/२/२४; १/२/२७; १/४/१७; ४/७/१७–१८; ६/८/८७; ६/८/६८; ६/६/९; ६/६/११–१२.
१३१ ३/७/९.
१३९ ४/४/१०.
१४१ २/६/४–६.
३५६ २/४०/५०–५२; २/६/१–१५.
२५८ ३/५/१५, १६, १९; ३/७/२९–३६.
२५९ ४/५/५३.
२६० ६/१२/७७–७९.

२४. विलसन फिलॉलॉजिकल लेक्चर्स ऑन पालि एण्ड अदर डायलेक्ट्स, डॉ० भण्डारकर
पृष्ठ–सन्दर्भ
७४ पृ० ३१–७०.

२५. हिन्दी काव्यधारा, राहुल सांकृत्यायन
पृष्ठ–सन्दर्भ
७४ पृ० ४/छं० २; पृष्ठ ८; पृष्ठ १०; पृष्ठ १२–८८, पृष्ठ २६.

२६. आनन्दरामायण
पृष्ठ–सन्दर्भ
१०१ १/१/१०३; १/१/१०८; १२/६; १/२/७; १/२/१०.
११२ १/२/४–७.
२५८ १/७/५१–५६; १/७/९६–१००.
२५९ १/८/८५–८७.
२६० १/१२/६–१०.

२७. श्रीमद्भागवत
पृष्ठ–सन्दर्भ
१०२ ९/१०/२.
१०८ १०/१४/२०–२१.
११० १०/५०/९–१०.
१२९ ७/५/२३.
१४३ ११/२८/१३, १४.
१६० ११/५/४१.

२८. नृसिंहपुराण
पृष्ठ–सन्दर्भ
१०२ ९/४७/३६; ९/४७/३७; ९/४७/३७; ९/४७/३८.
१०३ ९/४७/३८, ३९; ९/४७/४१.

२९. अग्निपुराण
पृष्ठ–सन्दर्भ
१०३ ५/५; ५/४; ५/४–५; ५/४–५.

३०. पद्मपुराण
पृष्ठ–सन्दर्भ
१०३ उत्तरखण्ड–२४२/५२; २४२/५६; २४२/५७; २४२/५९.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१०४ उत्तरखण्ड- २४२/६०; २४२/६१;
२४२/९४-९६.

३१. तुलसी-दर्शन-मीमांसा,
डॉ० उदयभानु सिंह
पृष्ठ-सन्दर्भ
१२२ पृ० २३०-३१.
१२६ पृ० २६५.
१२८ पृ० २७१.

३२. तुलसी-दर्शन,
डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र
पृष्ठ-सन्दर्भ
१२८ पृष्ठ २५४.

३३. चिन्तामणि,
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
पृष्ठ-सन्दर्भ
१६५ भाग-२, पृ० १६८.

३४. मनु का राजधर्म,
डॉ० श्यामलाल पाण्डेय
पृष्ठ-सन्दर्भ
१६५ पृ० २०.

३५. भीष्म का राजधर्म,
डॉ० श्यामलाल पाण्डेय
पृष्ठ-सन्दर्भ
१७५ पृ० ३१.
१७८ पृ० १३४.
१७९ पृ० १३८.

३६. शुक्रनीति की राजनीति,
डॉ० श्यामलाल पाण्डेय
पृष्ठ-सन्दर्भ
१७७ पृ० ५८
१७९ पृ० २०३
१७९ पृ० २१७.
१८० पृ० २१४.

३७. कौटिल्य की राजव्यवस्था,
डॉ० श्यामलाल पाण्डेय
पृष्ठ-सन्दर्भ
१७८ पृ० ३१

३८. प्राचीन भारत की दण्डनीति,
योगेन्द्रनाथ शर्मा
पृष्ठ-सन्दर्भ
१८४ पृ० ८४.
१८५ पृ० ९८.

३९. रामकथा के पात्र,
डॉ० भ० ह० राजूरकर
पृष्ठ-सन्दर्भ
१९९ पृ० २०५
२१७ पृ० ३२२.

४०. हनुमन्नाटक
पृष्ठ-सन्दर्भ
२५६ अङ्क १, पृष्ठ ५३-५७; अङ्क १,
पृष्ठ ६०.
२५८ अङ्क ३, पृष्ठ २१५.

४१. महाभारत
पृष्ठ-सन्दर्भ
२५८ वनपर्व-२७८/२९-३०.
२५९ वनपर्व-२८२/२१.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी के ग्रन्थ

१. कल्याण, श्रीरामाङ्क, वर्ष ४६, अङ्क १, गीताप्रेस, गोरखपुर।
२. कल्याण, नरसिंह पुराणाङ्क, वर्ष ४५, अङ्क १, गीताप्रेस, गोरखपुर।
३. क्रान्तिकारी तुलसी, नारायण सिंह, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९४८ ई०।
४. कृष्ण–गीतावली, गीताप्रेस, गोरखपुर।
५. गीतावली, तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, चतुर्थ संस्करण, सं० २००४।
६. गोस्वामी तुलसीदास, शिवनन्दन सहाय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सं० २०१७।
७. गोस्वामी तुलसीदास, रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१७।
८. गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि में नारी और नारी जीवन में उसका महत्त्व, डॉ० ज्ञानवती त्रिवेदी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, सन् १९६७ ई०।
९. गोस्वामी तुलसीदास का सामाजिक आदर्श, सुधा रानी शुक्ला, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ।
१०. गोस्वामी तुलसीदास, डॉ० श्याम सुन्दरदास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, सन् १९५२ ई०।
११. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना, राजेन्द्रसिंह, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, १९६९–७०।
१२. चिन्तामणि, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भाग १, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन), प्राइवेट लि०, प्रयाग।
१३. तुलसी और उनका काव्य, रामनरेश त्रिपाठी, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् १९५८ ई०।
१४. तुलसी का कथा–शिल्प, डॉ० रांगेय राघव, मध्यप्रदेश साहित्य प्रकाशन, बिलासपुर, सन् १९५०ई०।
१५. तुलसी की विचारधारा, नारायणप्रसाद वाजपेयी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् १९७० ई०।
१६. तुलसी के चार दल, सद्गुरुशरण अवस्थी, इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग, सन् १९३५ ई०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१७. तुलसी–ग्रन्थावली, भाग १, २, ३, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
१८. तुलसी–दर्शन, बलदेवप्रसाद मिश्र
१९. तुलसी–दर्शन–मीमांसा, डा० उदयभानुसिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ, सं० २०१८।
२०. तुलसीदास, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद विश्वविद्यालय, प्रयाग, तृतीय संस्करण, सन् १९५३ ई०।
२१. तुलसीदास, चन्द्रबली पाण्डेय, शक्ति कार्यालय, ७६३, दारागंज, प्रयाग, सं० २००५ वि०।
२२. तुलसीदास और उनका युग, डॉ० राजपति दीक्षित, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, सं० २००९।
२३. तुलसीपूर्व राम–साहित्य, डॉ० अमरपालसिंह, रचनाप्रकाशन, इलाहाबाद, सन् १९६८ ई०।
२४. तुलसी साहित्य रत्नाकर, रामचन्द्र द्विवेदी, ज्ञानमण्डल, काशी।
२५. गोसाईं तुलसीदास, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, वाणी–वितान प्रकाशन, वाराणसी।
२६. तुलसी–सौरभ, किरणकुमारी गुप्ता, कानपुर साहित्य निकेतन।
२७. दर्शन–दिग्दर्शन, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, १९४४ ई०।
२८. प्रज्ञा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका, अङ्क १३, भाग–२।
२९. प्रगतिरहस्य, श्रीकान्तशरण, गीताप्रेस, गोरखपुर।
३०. प्राचीन भारत की दण्डनीति, योगेन्द्रनाथ बागची, हिन्दी अनुवाद, अनुवादक, दुर्गादत्त त्रिपाठी शास्त्री, कलकत्ता, सन् १९६१ ई०।
३१. भक्ति का विकास, डॉ० मुंशीराम शर्मा, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी. सन् १९५८ई०।
३२. मानस–अनुसन्धान, महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ, सन् १९७०।
३३. मानस की रामकथा, पं० परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९५३ ई०।
३४. मानस–पीयूष, संपा० अञ्जनीनन्दनशरण, अयोध्या, सं०२०१३ वि०।
३५. मानसप्रसङ्ग, पं० विजयानन्द त्रिपाठी, रामबन, सतना।
३६. मानसमाधुरी, डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र, साहित्यरत्न भण्डार, आगरा, सन् १९५८ ई०।
३७. मानसमीमांसा, रजनीकांत शर्मा।
३८. मानस–रहस्य, जयरामदास 'दीन,' गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २०२६।
३९. मानस–शब्दसागर, [illegible]दास अग्रवाल, कलकत्ता, सन् १९५५ ई०।
RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४०. मार्क्सवाद और रामराज्य, स्वामी करपात्री जी महाराज, गीताप्रेस, गोरखपुर, तृतीय संस्करणं, सं०२०२३ वि०।

४१. युगकवि तुलसीदास, सत्यकाम वर्मा, भारतीय प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् १९६४ई०।

४२. रामकथा, कामिल बुल्के।

४३. रामकथा के पात्र, डॉ० म०ह०राजूरकर, ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर, १९७२ई०।

४४. रामगीता, मा० रा० विजयानन्द त्रिपाठी, रामवन, सतना।

४५. रामचन्द्रिका, सम्पादक, लाला भगवानदीन, रामनारायणलाल, इलाहाबाद, सं० १९९२ वि०।

४६. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० २०२८वि०।

४७. रामचरितमानस, सम्पादक, पं० विजयानन्द त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास, सं० २०११ वि०।

४८. रामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, डॉ० राज कुमार पाण्डेय, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, सन् १९६३ ई०।

४९. रामचरितमानस का साहित्यिक मूल्याङ्कन,

५०. रामचरितमानस में वेदान्तदर्शन, हीरालाल वर्मा, मानस संघ, सतना।

५१. रामभक्तिशाखा, डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय, नवहिन्द पब्लिकेशन्स, हैदराबाद, सन् १९६० ई०।

५२. वाल्मीकि और तुलसी, साहित्यिक मूल्यांङ्कन, रामप्रकाश अग्रवाल, मेरठ, सन् १९६६ ई०।

५३. वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ० विद्या मिश्र, विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ, सन् १९६३ ई०।

५४. विनयपत्रिका, गीता प्रेस, गोरखपुर, चौबीसवां संस्करण, सं० २०३१ वि०।

५५. वैराग्य संदीपनी, गीताप्रेस, गोरखपुर।

५६. सतपंच चौपाई, विजयानन्द त्रिपाठी, रामवन, सतना।

५७. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, वाराणसी।

५८. संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास, कृष्ण चैतन्य, अनुवादक, विनयकुमार राय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, सन् १९६५ ई०।

५९. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, झाँसी, सं० २०१८वि०।

६०. हिन्दी पद परम्परा और तुलसीदास, डॉ० रामचन्द्र मिश्र, हिन्दी साहित्य संसार, पटना, सन् १९६२ ई०।

६१. हिन्दी महाकाव्य और महाकाव्यकार, रामचरण महेन्द्र।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

६२. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप और विकास, डॉ० शम्भुनाथसिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।
६३. हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग १, २, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी, सं० २०२२ ई०।
६४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, इलाहाबाद।
६५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१२ वि०।
६६. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।
६७. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, पं हजारीप्रसाद द्विवेदी, दिल्ली।
६८. हिन्दी काव्यधारा, राहुल सांकृत्यायन।
६९. कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा, शिवप्रसाद सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।
७०. सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, शिवप्रसाद सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।
७१. कम्ब रामायण, अनु० श्री न० वी० राजगोपालन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, (प्र० सं०) –ईसवी १९६३.।

संस्कृत ग्रन्थ

१. अग्निपुराण, कलकत्ता, सं० २०१५।
२. अध्यात्मरामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २०२७ वि०।
३. अनर्घराघव, मुरारि कवि, पाण्डुरंग जावजी, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९३७ई०।
४. अभिषेक, भास कवि, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, सन् १९३० ई०।
५. आनन्दरामायण, गोपाल आणि कम्पनी, कालबा देवी रोड, बम्बई, सन्१९६३ई०।
६. आश्चर्यचूडामणि, शक्तिभद्र, बालमनोरमा प्रेस, मद्रास, सन् १९३६ ई०।
७. आंत्मबोध, शंङ्कराचार्य, प्रकरण पञ्चक में सङ्कलित।
८. उत्तररामचरितम्, भवभूति, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९२२ ई०।
९. उपनिषदें–१०८ उपनिषद्–श्रीराम शर्मा, संस्कृत संस्थान, बरेली,१९६७ ई०।
१०. उन्मत्तराघव, पाण्डुरंग जावजी, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९२५ ई०।
११. गरुड़पुराण, मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सं० २०१५ वि०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१२. दसरथजातक।

१३. नारदभक्तिसूत्र, गीताप्रेस, गोरखपुर सं० २००६।

१४. नारदपुराण, मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सं० २०१५।

१५. नृसिंहपुराण, मनसुखराय मोर, कलकत्ता सं० २०१५ वि०।

१६. पउमचरिउ, विमलसूरि।

१७. पद्मपुराण, मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सं० २०१५ वि०।

१८. प्रबोधचन्द्रोदय, कृष्ण मिश्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९०४ ई०।

१९. प्रतिमानाटक, भास, अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थावली, १९१५ ई०।

२०. प्रपत्तिरहस्य, श्रीकांतशरण, महात्मा सद्गुरु कुटी, गोलाघाट, अयोध्या, सन् १९५० ई०।

२१. प्रसन्नराघव, जयदेव कवि, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९२२ ई०।

२२. ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन), गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २००९ वि०।

२३. भागवतपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर।

२४. भक्तिरसायन, मधुसूदन सरस्वती, साङ्गवेद विद्यालय, काशी, सन् १९५० ई०।

२५. मनुस्मृति, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९४६ ई०।

२६. महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर, द्वितीय संस्करण, सं० २००१ वि०

२७. महावीरचरितम्, भवभूति, पाण्डुरङ्ग जावजी, बम्बई, १९३६ ई०।

२८. रघुवंश, कालिदास, कलकत्ता, १८८३ ई०।

२९. वाल्मीकिरामायण, गीताप्रेस गोरखपुर, प्र० सं०, सं० २०१७।

३०. वायुपुराण, मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सं० २००८ वि०।

३१. विवेकचूड़ामणि, शङ्कराचार्य, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २००८ वि०।

३२. विष्णुपुराण, मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सं० २०१५।

३३. सर्वतन्त्रसिद्धान्तपदार्थलक्षणसंग्रह, सं० गौरीशङ्कर भिक्षु, हिसार।

३४. सांख्यकारिका, सम्पादक हरदत्त शर्मा, द ओरियेण्टल बुक एजेंसी, पूना, सन् १९३३ ई०।

३५. शाण्डिल्य भक्तिसूत्र, गीताप्रेस, गोरखपुर।

३६. हनुमन्नाटक, सम्पादक कालिपद तर्काचार्य, संस्कृत बुक डिपो, कलकत्ता, सन् १९४५ ई०।

३७. हरिभक्तिरसामृतसिंधु, श्रीरामकृष्णाश्रम, मैसूर, १९४८ ई०।

३८. श्रीमद्भागवत, गीताप्रेस, गोरखपुर, पंचदश संस्करण, सं० २०२४ वि०।

३९. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोश

१. **अमरकोश**, अमरसिंह, मेडिकल हाल प्रेस, बनारस, सन् १८८३ ई०।

२. **उपनिषद्वाक्यमहाकोश**, शास्त्री गजानन शम्भु सघाले, द० गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई. १९४१ ई०।

३. **तुलसी शब्दसागर**, हरगोविन्द तिवारी, संपादक भोलानाथ तिवारी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५४ ई०।

४. **पौराणिक कथा–कोश**, डाह्याभाई पीताम्बरदास देशहरी, गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी तरक्की, अहमदाबाद, सन् १९३२ ई०।

५. **बृहत् हिन्दी कोश**, कालिकाप्रसाद, ज्ञानमण्डल लि०, बनारस।

६. **भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र–कोश**, सिद्धेश्वर शास्त्री, भारतीय चरित कोश, मण्डल, पूना ४, १९६४ ई०।

७. **भारतवर्षीय मध्ययुगीन चरित्र–कोश**, सिद्धेश्वर शास्त्री, भारतीय चरित कोश मण्डल, पूना ४, १९३७ ई०।

८. **महाभाष्य शब्दकोश**, श्रीधरशास्त्री एवं सिद्धेश्वरशास्त्री, भारतीय प्राच्य विद्या संशोधन मन्दिर, पूना, सन् १९२७ ई०।

९. **मानक हिन्दीकोश**, सम्पादक, रानचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं० २०१९।

१०. **वाचस्पत्यम्**, श्रीतारानाथ भट्टाचार्य, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, सन् १९६२ ई०।

११. **वाल्मीकि रामायणकोश**, रामकुमार राय, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, सं० २०२१ वि०।

१२. **वैदिक पदानुक्रम–कोश**, विश्वबन्धु शास्त्री, लाहौर, सन् १९३५ ई०।

१३. **संस्कृत हिन्दी कोश**, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, सन् १९७३ ई०।

१४. **शब्दकल्पद्रुम**, राजा राधाकान्तदेव, मोतीलाल बनारसीदास, १९६१ ई०।

१५. **हिन्दीकथा–कोश**, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, सन् १९५४ ई०।

१६. **हिन्दी विश्वकोश**, नगेन्द्रनाथ बसु, विश्वकोश लेन, बाग बाजार, कलकत्ता, सन् १९७१ ई०।

१७. **हिन्दी साहित्य कोश**, संपादक, डॉ० धीरेन्द्र, ज्ञानमण्डल लि० वाराणसी, सं० २०२० वि०।

१८. **ज्ञानकोश**, डॉ० वी० वी० केतकर, भार्गव ब्रदर्स, बनारस, १९३४ ई०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ग्रन्थकार का परिचय

माँ शारदा के पुत्र डॉ० राधेश्याम रामायणी ने 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' के उद्घोष का स्मरण कर पिनाकपाणि भगवान् शङ्कर की नित्यलीलाभूमि इसी काशी में जो कबीर, तुलसी एवं मधुसूदन सरस्वती की पवित्र साधनास्थली रही है, उन्हीं की मर्यादा का अनुसरण करते हुए हमारी सांस्कृतिक रक्षा का गुरुतर कार्य, धैर्य के साथ, सम्पन्न करने का दृढ़ सङ्कल्प किया है।

आप तृतीय कक्षा पर्यन्त शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् द्वादश वर्ष की अवस्था में दृष्टिहीन हो गये। दृष्टिहीन होने के बाद आपने ब्रेललिपि के माध्यम से सन् १९५५ ई० में उच्चतम योग्यता प्राप्त की। इसके बाद, १९५९ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से साहित्यरत्न तथा १९७० ई० में हिन्दी विद्यापीठ, देवघर, विहार की साहित्यालङ्कार की परीक्षा में सर्वाधिक अङ्क प्राप्त करने पर आपको स्वर्णपदक से अलङ्कृत किया गया एवं इसी वर्ष आपने काशी विद्यापीठ से एम०ए० (हिन्दी) की परीक्षा में, प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होकर, द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

तत्पश्चात् १९७५ ई० में आप काशी विद्यापीठ के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० केशवप्रसादसिंह के निर्देशन में शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत कर पीएच० डी० की उपाधि से विभूषित हुए।

विद्यार्जन के साथ ही साथ आपका अध्यापन–जीवन भी चलता रहा। आप दुर्गाकुण्ड स्थित तुलसीमानस अन्धविद्यालय में प्रधानाचार्य पद पर रहे। आपने सीनियर फेलो के रूप में काशी विद्यापीठ, वाराणसी की एम०ए० अन्तिम वर्ष की कक्षा में भी अध्यापन किया है। विश्वज्योति महाविद्यालय, क्राइस्टनगर में प्राध्यापक पद पर रहकर आप "भारतीय संस्कृति, धर्म एवं दर्शन" विषयों पर शैक्षणिक कार्य भी करते रहे। सम्प्रति आप राजकीय क्वींस कॉलेज, वाराणसी में हिन्दी प्रवक्ता पद पर कार्यरत हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2.

रत्ना प्रिंटिंग वर्क्स, कमच्छा, वाराणसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.